१६१० आ वां भूषन् क्षितयो जन्म रोदस्योः प्रवाच्यं वृषणा दक्षसे महे ।
यदीमृताय भरथो यदर्वते प्र होत्रया शिम्या वीथो अध्वरम् ॥ ३ ॥
१६११ प्र सा क्षितिरसुर या महि प्रिय ऋतावानावृतमा घोषथो बृहत् ।
युवं दिवो बृहतो दक्षमाभुवं गां न धुर्युप युञ्जाथे अपः ॥ ४ ॥
१६१२ मही अत्र महिना वारमृण्वथो ऽरेणवस्तुज आ सद्मन् धेनवः
स्वरन्ति ता उपरतासति सूर्य मा निम्रुचं उषसस्तक्ववीरिव ॥ ५ ॥
१६१३ आ वामृताय केशिनीरनूषत मित्र यत्र वरुण गातुमर्चथः ।
अव त्मना सृजतं पिन्वतं धियो युवं विप्रस्य मन्मनामिरज्यथः ॥ ६ ॥

अर्थ— [१६१०] हे (वृषणा) बलवान् मित्रावरुण ! (वां रोदस्योः प्रवाच्यं जन्म) तुम दोनोंके द्यावा-पृथिवीसे प्रशंसनीय जन्मकी (क्षितयः) मनुष्य (महे दक्षसे) महान् बलकी प्राप्तिके लिए प्रशंसा करते हैं और तुम दोनोंको (आभूषन्) अलंकृत करते हैं । (यत् ऋताय ईं भरथः) क्योंकि तुम दोनों इस अपने सच्चे उपासकको बलसे भरपूर करते हो और (यत् अर्वते) पशुओंसे युक्त उपासकको भी बलसे परिपूर्ण करते हो । (होत्रया शिम्या अध्वरं वीथः) तुम पुकारने तथा कर्मोंसे आकृष्ट होकर लोगोंके यज्ञको जाते हो ॥ ३ ॥

[१६११] हे (असुरा) बलवान् मित्र वरुण ! (या महि प्रिया) जो तुम्हें अत्यन्त प्रिय है, (सा क्षितिः प्र) वह भूमि अत्यधिक विस्तृत हो, (ऋतावानौ) हे यज्ञके पालक देवो ! तुम दोनों (बृहत् ऋतं आ घोषथः) इस महान् सत्यकी घोषणा करो । (बृहतः दिवः) महान् देवोंके उपकारके लिए (युवं) तुम दोनों (दक्षं आभुवं अपः) बलकारी तथा हितदायक कर्ममें उसी तरह (उपर्युजाथे) जुड जावो, जिसप्रकार (धुरि गां न) जुएमें बैल जुडते हैं ॥ ४ ॥

१ बृहत् ऋतं आ घोषथः— जो सत्य हो, उसकी घोषणा करनी चाहिए।

[१६१२] हे मित्रावरुण ! तुम (मही अत्र) इस विशाल पृथ्वी पर (महिना) अपनी शक्तिसे (वारं ऋण्वथः) ग्रहण करनेयोग्य धनको देते हो, (अरेणवः तुजः धेनवः) पापरहित और दुधारु गायें (सद्मन् आ) घर आती हैं । (उपरतासति) आकाशके मेघसे युक्त होने पर (ताः) वे गायें (निम्रुचः उषसः) सभी उषःकालोंमें (सूर्यं स्वरन्ति) सूर्यके लिए उसी प्रकार चिल्लाती हैं, जिसतरह (तक्ववीः इव) मनुष्य चोरको देखकर चिल्लाते हैं ॥ ५ ॥

[१६१३] हे (मित्रवरुण) मित्र और वरुण ! (यत्र गातुं अर्चथः) जिस प्रदेशमें तुम्हारी स्तुति होती है, वहां (केशिनीः) अग्निकी ज्वालायें (ऋताय) यज्ञके लिए (वां अनूषत) तुम दोनोंकी सेवा करती हैं । तुम दोनों (त्मना अवसृजतं) स्वयं हमें शक्तिप्रदान करो, तथा (धियः पिन्वतं) हमारी बुद्धियोंको पुष्ट करो, (युवं) तुम दोनों (विप्रस्य मन्मनां) ज्ञानीके स्तोत्रोंके (इरज्यथः) स्वामी हो ॥ ६ ॥

भावार्थ— मित्र अर्थात् अग्नि और वरुण अर्थात् सूर्य इन दोनोंका जन्म पृथिवी और द्युलोकसे होता है । इनके उत्पन्न होते ही अन्धकार नष्ट होकर सर्वत्र प्रकाश छा जाता है, इसलिए सर्वत्र इनके जन्मकी प्रशंसा होती है। ये दोनों अपने सच्चे उपासकको बलसे युक्त करते हैं ॥ ३ ॥

ये दोनों मित्र और वरुण बहुत बलवान् हैं । इन्हें यज्ञकी भूमि अत्यन्त प्रिय है । यह हमेशा सत्यके मार्ग पर निर्भीक होकर चलते हैं और सत्यकी निर्भीकतासे घोषणा करते हैं । ये दोनों हितकारी काम ही करते हैं, क्योंकि हितकारी कामोंसे देवोंका उपकार होता है । मनुष्य सदा निर्भीक होकर सत्यके मार्ग पर चले तथा सत्य बात निर्भीक होकर कहे ॥ ४ ॥

जिसके घर गायें रहती हैं, उसके यहां सभी तरहके ऐश्वर्य निवास करते हैं, देवगण भी गौपालकको धन देते हैं। जिस समय आकाशमें मेघ आते हैं, उस समय गायें सूर्यकी प्रार्थना करती हैं, ताकि सूर्य बादलोंसे पानी बरसाये तथा उन गायोंको खूब घास प्राप्त हो ॥ ५ ॥

जहां पर भी ये मित्र और वरुण जाते हैं, वहां यज्ञमें इनकी स्तुति होती है । ये दोनों बुद्धियोंको पुष्ट करनेवाले हैं । इसलिए मनुष्य अपनी बुद्धियोंसे इन्हींकी स्तुति करते हैं ॥ ६ ॥

१६१४ यो वां यज्ञैः शशमानो ह दाशति कविर्होता यजति मन्मसाधनः ।
उपाह तं गच्छथो वीथो अध्वरमच्छा गिरः सुमतिं गन्तमस्मयू ॥ ७ ॥

१६१५ युवां यज्ञैः प्रथमा गोभिरञ्जत ऋतावाना मनसो न प्रयुक्तिषु ।
भरन्ति वां मन्मना संयता गिरो ऽदृप्यता मनसा रेवदाशाथे ॥ ८ ॥

१६१६ रेवद् वयो दधाथे रेवदाशाथे नरा मायाभिरितऊति माहिनम् ।
न वां द्यावोऽहभिर्नोत सिन्धवो न देवत्वं पणयो नानशुर्मघम् ॥ ९ ॥

अर्थ— [१६१४] (यः खलु) जो मनुष्य (यज्ञैः शशमानः) यज्ञके द्वारा स्तुति करता हुआ (वां) तुम दोनोंको (दाशति) हवि देता है, (मन्मसाधनः कविः होता) स्तुतिसे युक्त होकर ज्ञानी होता (यजति) यज्ञ करता है, हे मित्रावरुण ! तुम दोनों (अह) प्रतिदिन (तं उप गच्छथः) उस यज्ञकर्ताके समीप जाते हो, उसके (अध्वरं वीथः) यज्ञकी कामना करते हो। (अस्मयू) हमारे पास आनेकी इच्छा करनेवाले तुम दोनों (गिरः सुमतिं) हमारी स्तुति और उत्तम बुद्धिकी तरफ (अच्छ आ गन्तं) सीधे आते हो ॥ ७ ॥

[१६१५] हे (ऋतावाना) यज्ञ युक्त मित्रावरुण ! (प्रयोक्तिषु मनसः न) इन्द्रियोंमें जिसप्रकार मन मुख्य होता है, उसी प्रकार (प्रथमा युवां) देवोंमें मुख्य तुम दोनोंको यज्ञ करनेवाले (यज्ञैः गोभिः) यज्ञ और दूध घी आदि के द्वारा (अंजते) युक्त करते हैं। (संयता मन्मना) संयमित और मननशील बुद्धिके द्वारा (वां गिरः भरन्ति) तुम्हारी प्रशंसा करते हैं, तुम भी (अदृप्यता मनसा) अपना शक्तिशाली मनसे उन्हें (रेवत् आशाथे) धन प्रदान करते हो ॥ ८ ॥

[१६१६] हे मित्रावरुण ! (रेवत् वयः) ऐश्वर्ययुक्त अन्न (दधाथे) धारण करते हो, हे (नरा) नेताओ ! (मायाभि इतः ऊति) शक्तियोंसे हमारी रक्षा करते हुए (माहिनं रेवत् आशाथे) महत्वपूर्ण धनको देते हो। (वां देवत्वं मघं) तुम दोनोंके देवत्व और ऐश्वर्यको (द्यावः न आनशुः) द्युलोक नहीं प्राप्त कर सके, (उत अहभिः न) दिन रात भी नहीं पा सके, (सिन्धवः न) नदियां भी नहीं पा सकीं (पणयः न) और पणि भी नहीं पा सके ॥ ९ ॥

१ वां देवत्वं मघं द्यावः अहभिः सिन्धवः पणयः न आनशुः— इन मित्रावरुणके देवत्व और ऐश्वर्यको द्युलोक, दिन रात, नदियां और पणि भी नहीं पा सके।

भावार्थ— जो ज्ञानी और यज्ञ करनेवाला स्तोता यज्ञके द्वारा हवि प्रदान करता हुआ इन मित्र और वरुणकी स्तुति करता है, उसके यज्ञमें ये दोनों जाते हैं और उसके द्वारा की जानेवाली स्तुतिको बड़े ध्यानसे सुनते हैं ॥ ७ ॥

इन्द्रियोंमें मन सर्वश्रेष्ठ होता है क्योंकि मनसे प्रेरित होकर ही इन्द्रियां अपने अपने व्यापारमें प्रयुक्त होती हैं। उसी प्रकार देवोंमें ये मित्र और वरुण श्रेष्ठ हैं। इनकी सभी स्तुति करते हैं, तब ये प्रसन्न होकर स्तोताको अनेक तरहके ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥ ८ ॥

मित्र और वरुण दोनों अपनी शक्तियोंसे भक्तोंकी रक्षा करते हैं और उन्हें ऐश्वर्य प्रदान करते हैं। ये दोनों देव इतने ऐश्वर्यवान् और दिव्य तेजसे युक्त हैं कि इनके ऐसे ऐश्वर्य और दिव्य तेजको द्युलोक, दिन, रात, नदियां और यहां तक कि पणि नामक असुरगण भी नहीं पा सके। देवगण अत्यन्त तेजस्वी होते हैं, अतः उनके तेजका पार पाना असंभव है ॥ ९ ॥

[१५२]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- मित्रावरुणौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१६१७ युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे युवोरच्छिद्रा मन्तवो ह सर्गाः ।
अवातिरतमनृतानि विश्वा ऋतेन मित्रावरुणा सचेथे ॥ १ ॥

१६१८ एतच्चन त्वो वि चिकेतदेषां सत्यो मन्त्रः कविशस्त ऋघावान् ।
त्रिरश्रिं हन्ति चतुरश्रिरुग्रो देवनिदो ह प्रथमा अजूर्यन् ॥ २ ॥

१६१९ अपादेति प्रथमा पद्वतीनां कस्तद् वां मित्रावरुणा चिकेत ।
गर्भो भारं भरत्या चिदस्य ऋतं पिपर्त्यनृतं नि तारीत् ॥ ३ ॥

---

[१५२]

अर्थ-- [१६१७] हे (मित्रावरुणा) मित्रावरुण ! (युवं) तुम दोनों (पीवसा) पुष्ट होकर (वस्त्राणि वसाथे) वस्त्रोंको धारते हो, (युवोः सर्गाः) तुम दोनोंके द्वारा उत्पन्न किए गए पदार्थ (अच्छिद्राः मन्तवः) दोष रहित और मनन करनेयोग्य हैं, तुम दोनों (विश्वा अनृतानि अव अतिरतम्) सम्पूर्ण असत्योंको नष्ट करते हो और (ऋतेन सचेथे) मनुष्यको सत्यसे संयुक्त करते हो ॥ १ ॥

१ विश्वा अनृतानि अव अतिरतं, ऋतेन सचेथे— ये मित्र और वरुण असत्यभाषण करनेवालोंको नष्ट करके मनुष्योंको सत्यसे संयुक्त करते हैं ।

[१६१८] (एषां) इन दोनों मित्र और वरुणमें (त्वः चन) एक ही (सत्यः मंत्रः कविशस्तः ऋघावान्) सत्यशील, बुद्धिमान्, ज्ञानियों द्वारा प्रशंसनीय और सामर्थ्यशाली है, (एतत् वि चिकेतत्) वह इस बातको अच्छी तरह जानता है । वह (उग्रः) वीर (त्रिरश्रिं चतुरश्रिः हन्ति) तीन धारवाले तथा चार धारवाले हथियारोंको धारण करनेवाले शत्रुओंको मार देता है (देवनिदः प्रथमाः अजूर्यन्) देवोंकी निन्दा करनेवाले प्रथम शक्तिशाली होते हुए भी बादमें क्षीणशक्तिवाले हो जाते हैं ॥ २ ॥

१ देवनिदः प्रथमा अजूर्यन्— देवोंकी निन्दा करनेवाले प्रथम शक्तिशाली होते हुए भी बादमें शक्तिहीन हो जाते हैं ।

[१६१९] हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण ! (पद्वतीनां प्रथमा) पैरोंसे युक्त प्राणियोंसे भी पहले जागृत होनेवाली उषा (अ-पात्) पैरोंसे रहित होनेपर भी (एति) सर्वत्र संचार करती है (वां तत् कः चिकेत) तुम दोनोंके उस सामर्थ्यको कौन जानता है । (गर्भः) तुम दोनोंका गर्भ अर्थात् बच्चा सूर्य (अस्य भारं भरति) संसारके पालनपोषणरूप भारको ढोता है, (ऋतं पिपर्ति) सत्यको परिपूर्ण करता है और (अनृतं नि तारीत्) असत्यका नाश करता है ॥ ३ ॥

१ पद्वतीनां प्रथमा अपात् एति— मनुष्योंमें प्रथम जागृत होनेवाली उषा पैरोंसे रहित होने पर भी सब जगह संचार करती है

२ गर्भः अस्य भारं भरति— गर्भ रूप सूर्य इस जगत्का पालन पोषण करता है ।

३ मित्र-वरुण-दिन रात " अहोरात्रे वै मित्रावरुणौ " (तै. सं. २।४।१०।१)

भावार्थ-- ये दोनों मित्रावरुण अत्यन्त पुष्ट हैं और सदा उत्तमोत्तम वस्त्र पहनते हैं । ये दोनों सदा सत्यको प्रोत्साहन देते हैं और असत्य या अनृतका नाश करते हैं । इसी प्रकार मनुष्य भी हृष्टपुष्ट होकर उत्तमोत्तम वस्त्र पहनें और सदा सत्यके मार्ग पर चलते हुए असत्यवादियोंका नाश करें ॥ १ ॥

मित्र और वरुण इन दोनोंमेंसे अकेला देव भी बहुत बुद्धिमान् और वीर है, वह सभी शस्त्रोंको धारण करनेवाले शत्रुओंको भी आसानीसे मार देता है । जब अकेला देव ही इतना शक्तिशाली है, तो दोनों जब मिल जाते हैं, तब तो उनकी शक्तिका अन्दाजा भी लगाना कठिन हो जाता है । ऐसे शक्तिशाली इन दोनों देवोंकी जो निंदा करता है, वह भले ही पहले कितना भी सामर्थ्यवान् हो, बादमें जाकर शक्तिहीन होकर नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

१६२० प्रयन्तमित् परि जारं कनीनां पश्यामसि नोपनिपद्यमानम् ।
अनवपृग्णा वितता वसानं प्रियं मित्रस्य वरुणस्य धाम ॥ ४ ॥
१६२१ अनश्वो जातो अनभीशुरर्वा कनिक्रदत् पतयदूर्ध्वसानुः ।
अचित्तं ब्रह्म जुजुषुर्युवानः प्र मित्रे धाम वरुणे गृणन्तः ॥ ५ ॥
१६२२ आ धेनवो मामतेयमवन्तीर्ब्रह्मप्रियं पीपयन् त्सस्मिन्नूधन् ।
पित्वो भिक्षेत वयुनानि विद्वान्नासाविवासन्नदितिमुरुष्येत् ॥ ६ ॥

अर्थ— [१६२०] (अनवपृग्णा विततता वसानं) चारों ओर फैलनेवाले अत्यन्त विस्तृत तेजोंको धारण करनेवाले, (मित्रस्य वरुणस्य प्रियं धाम) मित्र और वरुणके प्रिय स्थान (कनीनां जारं) सुन्दर रूपवाली उषाओंको नष्ट करनेवाले सूर्यको (परि प्रयन्तं इत् पश्यामसि) चारों तरफ सदा चलते हुए ही देखते हैं, (न उपनिपद्यमानं) उसे कभी बैठा हुआ नहीं देखते ॥ ४ ॥

[१६२१] (अनश्वः अनभीशुः) घोडे और लगाम आदिसे रहित होनेपर भी यह सूर्य (अर्वा) शीघ्र गतिसे जाता है । (जातः) उदय होनेके बाद (कनिक्रदत्) गर्जना करता हुआ (ऊर्ध्वसानुः पतयत्) सभी उच्च शिखरोंपर अपनी किरणें फेंकता है । (मित्रे वरुणे धाम गृणन्तः) मित्र और वरुणके तेजकी प्रशंसा करते हुए (युवानः) तरुण पासक इस सूर्यके लिए (अचित्तं ब्रह्म जुजुषुः) अत्यन्त गंभीर स्तोत्रोंको करते हैं ॥ ५ ॥

[१६२२] (ब्रह्मप्रियं) उपासना प्रिय (मामतेयं) अत्यधिक ममतावाले मनुष्यको (धेनवः) गायें (अवन्तीः) सबकी रक्षा करती हुईं (सस्मिन् ऊधन्) अपने सभी थनोंसे (आ पीपयन्) पुष्ट करें । (वयुनानि विद्वान्) सभी मार्गोंको जाननेवाला ज्ञानी (आसा पित्वः भिक्षेत) अपने मुंहसे तुमसे खाने पीनेके पदार्थ मांगे । (आ विवासन् अदितिं उरुष्येत्) तुम्हारी उपासना करते हुए मनुष्य मृत्युको दूर करे ॥ ६ ॥

१ मामतेयं धेनवः अस्मिन् ऊधन् आ पीपयन्— गायोंसे अत्यधिक ममता या प्रेम रखनेवालेको गायें अपने सभी थनोंसे दूध देकर पुष्ट करती हैं ।

२ आ विवासन् अदितिं उरुष्येत्— मित्रावरुणकी उपासना करते हुए मनुष्य मृत्युको दूर कर सकता है ।

भावार्थ— मित्र और वरुण ये क्रमशः दिन और रात हैं । इन्हींके सामर्थ्यसे उषा सर्वप्रथम आती है और पैरोंसे रहित होकर भी सब जगह घूमती है । यह सब दिन और रातका सामर्थ्य है । पर इस तथ्यको सब नहीं जान पाते । इन्हींका गर्भरूप अर्थात् दिन और रातके संयोगसे उत्पन्न हुआ हुआ शिशुरूप सूर्य जगत्का पालनपोषण करता है । सूर्य इस जगत्की आत्मा है । उसीके आधार पर वनस्पतियां उत्पन्न होती हैं और उससे जगत्का पोषण होता है । वह सूर्य असत्यरूप अन्धकारका नाश करके सत्यरूप प्रकाशको फैलाता है ॥ ३ ॥

सूर्य सुन्दर रूपवाली उषाओंका जार है अर्थात् सूर्यके उदय होते ही उषायें नष्ट हो जाती हैं, ऐसा यह तेजस्वी सूर्य सदा चलता रहता है, कभी बैठता नहीं । यह सूर्य चूंकि सदा पुरुषार्थ करता रहता है, अतः वह सदा तेजसे युक्त रहता है और उसका तेज चारों ओर फैला हुआ होता है । इसी तरह जो मनुष्य सदा पुरुषार्थ करेगा, कभी आलसी होकर बैठेगा नहीं, वह तेजस्वी होगा और उसका यश चारों ओर फैलेगा ॥ ४ ॥

इस सूर्यके पास न घोडे हैं, और न उनको नियंत्रणमें रखनेके लिए उसके पास लगाम ही हैं, पर फिर भी अपने प्रयत्नसे वह सर्वत्र संचार तीव्रगतिसे करता है, इसीलिए वह सर्वत्र प्रशंसित होता है । इसी तरह जो मनुष्य साधनोंकी भी परवाह न करते हुए उनके अभावमें भी अपने प्रयत्नोंके द्वारा अपने लक्ष्यकी तरफ बढता चला जाता है, वह सर्वत्र प्रशंसित होता है ॥ ५ ॥

१६२३ आ वां मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं नमसा देवाववसा ववृत्याम् ।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु सह्या अस्माकं वृष्टिर्दिव्या सुपारा ॥ ७ ॥

[१५३]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- मित्रावरुणौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१६२४ यजामहे वां महः सजोषा हव्येभिर्मित्रावरुणा नमोभिः ।
घृतैर्घृतस्नू अध यद् वामस्मे अध्वर्यवो न धीतिभिर्भरन्ति ॥ १ ॥

१६२५ प्रस्तुतिर्वां धाम न प्रयुक्तिरयामि मित्रावरुणा सुवृक्तिः ।
अनक्ति यद् वां विदथेषु होता सुम्नं वां सूरिर्वृषणावियक्षन् ॥ २ ॥

अर्थ— [१६२३] हे (देवौ मित्रावरुणा) तेजस्वी मित्र और वरुण ! मैं (नमसा अवसा) नमस्कारों एवं स्तोत्रोंसे (वां) तुम दोनोंको (ववृत्यां) अपनी ओर झुकाता हूँ । (अस्माकं हव्यजुष्टिं ब्रह्म) हमारे हविसे युक्त स्तोत्र (पृतनासु सह्या) युद्धोंमें हमें विजय प्राप्त करावें । (दिव्या वृष्टिः अस्माकं सुपारा) दिव्य बरसात हमें अकाल और दारिद्र्यसे पार करे ॥ ७ ॥

[१५३]

[१६२४] (घृतस्नू सजोषा मित्रावरुणौ) अत्यन्त तेजस्वी एवं परस्पर प्रीतिसे रहनेवाले मित्र और वरुण देवो ! (यत्) चूंकि (वां) तुम्हारे लिए (अस्मे अध्वर्यवः) हमारे अध्वर्यु (धीतिभिः भरन्ति) स्तोत्र कहते हैं, (अध) इसलिए हम भी (महः वां) महान् तुम दोनोंकी (हव्येभिः नमोभिः) प्रशंसनीय स्तोत्रोंके द्वारा (यजामहे) पूजा करते हैं ॥ १ ॥

[१६२५] हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण ! मैं (वां प्रस्तुतिः) तुम दोनोंकी स्तुति करता हूँ, (सुवृक्तिः) बोलनेमें प्रवीण मैं (धाम न) घरके समान (प्रयुक्तिः अयामि) तुम्हारा ध्यान करता हूँ । (वृषणा) हे बलवान् मित्र वरुण ! (इयक्षन् सूरिः होता) यज्ञ करनेकी इच्छा करनेवाला विद्वान् होता, (यत् वां विदथेषु अनक्ति) चूंकि तुम दोनोंकी यज्ञोंमें स्तुति करता है, इसलिए (वां सुम्नं) वह तुम दोनोंसे सुख मांगता है ॥ २ ॥

भावार्थ— जो मनुष्य अपनी गायोंसे अत्यधिक प्रेम करता है, उसे गायें भी अपने दूधसे पुष्ट करती हैं । गायोंमें भी प्रेमकी भावना होती है । दूध दुहनेके समय यदि गायसे प्रेमपूर्वक व्यवहार किया जाए, तो वह ज्यादा दूध देती है । देवोंकी उपासना एक उत्तम साधन है । इनकी उपासना द्वारा मृत्युको भी दूर किया जा सकता है ॥ ६ ॥

हमारे विनम्र भावसे किए गए स्तोत्रोंको सुनकर ये मित्र और वरुण हमारे पास आवें । तथा हमारी प्रार्थनाओंसे प्रेरित होकर हमें संकटोंसे बचावें, तथा पानी बरसाकर हमें अकाल एवं दारिद्र्यसे पार करें ॥ ७ ॥

मित्र और वरुण ये दोनों देव अत्यन्त तेजस्वी और परस्पर प्रेमसे रहते हैं । इसलिए सब इनकी पूजा करते हैं ॥ १ ॥

जिस तरह गृहस्वामी अपने घरकी देखभाल बड़े ही ध्यानसे करता है, उसी प्रकार विद्वान् मनुष्य मित्र और वरुणकी स्तुति बड़े ध्यानसे करता है । इस मित्र और वरुणका तेज बड़ा ही सुखकारक है ॥ २ ॥

१६२६ पीपाय धेनुरदितिर्ऋताय जनाय मित्रावरुणा हविर्दे ।
हिनोति यद् वां विदथे सपर्यन् त्स रातहव्यो मानुषो न होता ॥ ३ ॥
१६२७ उत वां विक्षु मद्यास्वन्धो गाव आपश्च पीपयन्त देवीः ।
उतो नो अस्य पूर्व्यः पतिर्दन् वीतं पातं पयस उस्रियायाः ॥ ४ ॥

[१५४]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- विष्णुः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१६२८ विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥ १ ॥

अर्थ— [१६२६] (यत्) जब (रातहव्यः मानुषः होता) हविको देनेवाला मननशील होता (सपर्यन्) तुम्हारी पूजा करता हुआ (विदथे वां हिनोति) यज्ञमें तुम्हें आहुति देता है, तब हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण ! उस (ऋताय हविर्दे जनाय) सत्य मार्गपर चलनेवाले तथा हविप्रदान करनेवाले मनुष्यको (अदितिः धेनुः पीपाय) न काटे जाने योग्य गाय तृप्त करे ॥ ३ ॥

१ ऋताय हविर्दे जनाय अदितिः धेनुः पीपाय— सत्यमार्गपर चलनेवाले तथा हवि देनेवाले मनुष्यको न काटे जाने योग्य गायें तृप्त करती हैं ।

[१६२७] हे मित्र वरुण ! (वां) तुम दोनों (अन्धः देवीः गावः आपः च) अन्न, दिव्य गायें और जल । सभी (मद्यासु विक्षु) आनन्दित प्रजाओंमें सबको (पीपयन्त) तृप्त करें, (उत) और (नः अस्य पूर्व्यः पतिः) हमारे इस यज्ञका प्राचीन स्वामी (दन्) हमें ऐश्वर्य प्रदान करे । तुम दोनों (वीतं) यज्ञीय अन्नका भक्षण करो, (उस्रियायाः पयसः पातं) गायका दूध पीओ ॥ ४ ॥

[१५४]

[१६२८] (यः पार्थिवानि रजांसि वि ममे) जिसने पृथ्वीके लोकोंको बनाया, तथा (उरुगायः यः) बहुतोंसे प्रशंसित जिस देवने (त्रेधा चक्रमाणः) तीन प्रकारसे चलते हुए (उत्तरं सधस्थं) अत्यन्त विस्तृत द्युलोकको (अस्कभायत्) थाम रखा है, उस (विष्णोः) व्यापक देवके (वीर्याणि कं प्रवोचं) पराक्रमोंका मैं वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥

भावार्थ— जब हविको देनेवाला मननशील मनुष्य इन मित्र और वरुणको यज्ञमें हवि प्रदान करता है, तब सत्यशील और हवि प्रदान करनेवालेको गायें हर तरहका सुख प्रदान करती हैं । अर्थात् यज्ञ करनेवालेके पास अनेकों गायें रहती हैं, जो उसे अपने दूध आदि देकर हर तरहसे तृप्त करती हैं ॥ ३ ॥

ये मित्र वरुण, गायें, अन्न और जल ये सभी मनुष्योंका हित और कल्याण करें, उन्हें आनन्दित करें । अग्नि भी ऐश्वर्य प्रदान करे । फिर सभी यज्ञशील मनुष्य ऐश्वर्यशाली होकर देवोंको हवि प्रदान करें ॥ ४ ॥

विष्णु यह सूर्य देव है । यही सूर्य इस पृथ्वीपरके अनेक लोकोंको बनाता है, प्रकट करता है । इसी सूर्यके कारण द्युलोक इतना विस्तृत होनेपर भी स्थिर है । सारे लोक इसी विष्णुपर आधारित हैं और इसीके कारण टिके हुए हैं । ऐसे पराक्रमोंसे युक्त यह विष्णु है । इसके पराक्रमोंका वर्णन एवं उनका अनुकरण करना चाहिए ॥ १ ॥

×

१६२९ प्र तद् विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥ २ ॥

१६३० प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे ।
य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित् पदेभिः ॥ ३ ॥

१६३१ यस्य त्री पूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति ।
य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा ॥ ४ ॥

अर्थ—[१३२९] (यस्य उरुषु त्रिषु विक्रमणेषु) जिसके अत्यन्त विस्तृत तीन कदमोंमें (विश्वा भुवनानि अधिक्षियन्ति) सारे भुवन रहते हैं, (तत् विष्णुः) वह व्यापक देव (वीर्येण) अपने पराक्रमके कारण (कुचरः गिरिष्ठाः भीमः मृगः न) हिंसादि बुरे कर्म करनेवाले, गुफाओंमें रहनेवाले भयंकर सिंहके समान (प्रस्तुषते) सब जगह स्तुत होता है ॥ २ ॥

१ यस्य विक्रमणेषु विश्वा भुवनानि अधिक्षियन्ति, तत् विष्णुः वीर्येण स्तवते— जिसके आधार पर सारे भुवन रहते हैं, वह विष्णु अपने पराक्रमके कारण सर्वत्र प्रशंसित होता है ।

[१६३०] (यः एकः) जिसने अकेले ही (त्रिभिः पदेभिः इत्) केवल तीन कदमोंसे (इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थं) इस लम्बे और चौडे द्युलोकको (विममे) नापा, उस (गिरिक्षिते उरुगायाय वृष्णे विष्णवे) मेरुमें रहनेवाले, बहुतोंसे प्रशंसित, जल बरसानेवाले विष्णुके पास (शूषं मन्म एतु) हमारे बलसे युक्त स्तोत्र पहुंचे ॥ ३ ॥

१ एकः इत् इदं दीर्घं आयतं सधस्थं वि ममे— यह विष्णु अकेला ही इस लम्बे और चौडे द्युलोकको नाप लेता है ॥ ३ ॥

[१६३१] (यस्य) जिस विष्णुके (मधुना पूर्णा त्री पदानि) अमृतसे भरपूर तीन कदम (अक्षीयमाणा कभी नष्ट न होते हुए (स्वधया मदन्ति) अपनी धारण शक्तिसे युक्त होकर आनन्दित होते हैं, (यः) जो (त्रिधातु तीन धातुओं, (पृथिवीं उत द्यां) पृथिवी और द्युलोक तथा (विश्वा भुवनानि एकः दाधार) सम्पूर्ण भुवनोंको अकेला ही धारण करता है ॥ ४ ॥

१ मधुना पूर्णा पदानि अक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति— इस विष्णुके अमृतसे भरपूर कदम कभी नष्ट न होते हुए अपनी धारणशक्तिसे हर्षित होते हैं ।

भावार्थ—यह व्यापक देव अपने तीन कदमोंसे सारे भुवनोंको व्याप लेता है । उदयके समय वामन रूप विष्णु भगवान् अर्थात् सूर्य अपनी किरणोंसे द्यु, अन्तरिक्ष और पृथिवी इन तीनों लोकोंको व्याप लेता है अर्थात् प्रकाशित कर देता है। इसी सूर्यके आधार पर सारा विश्व रहता है। सारा विश्व सूर्यसे ही प्राणशक्ति प्राप्त करता है, इसलिए सूर्यको विश्वका आत्मा कहा है । यह अपने पराक्रमके कारण सर्वत्र इसी प्रकार प्रशंसित होता है, जिस प्रकार गुफाओंमें रहनेवाला भयंकर सिंह ॥ २ ॥

उदय होते ही सूर्य इस लम्बे चौडे द्युलोकको अपने कदमोंसे नाप देता है अर्थात् अपनी किरणोंसे द्युलोकको प्रकाशित कर देता है । यह सूर्य बादलोंमें रह कर बादलोंमें छिपे हुए पानीको बरसाता है । इसलिए सब इस सूर्यकी प्रशंसा करते हैं ॥ ३ ॥

प्रातः, मध्यान्ह और सायं ये सूर्यके तीन कदम हैं । इन कदमोंसे वह सर्वत्र संचार करता है । उसकी प्रातःकालीन, मध्यान्हकालीन और सायंकालीन किरणें अमृतसे भरपूर होती हैं । वह अपनी किरणोंसे मानों अमृत लुटाता चलता है । वह सूर्य सत्त्व, रज और तमो रूप तीन धातुओं, पृथिवी द्यु आदि लोकों और सारे विश्वोंको धारण करता है । सूर्यकी ये किरणें अपनी शक्तिसे सर्वत्र प्रसन्नता फैलाती हैं ॥ ४ ॥

१६३२ तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।
उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः ॥ ५ ॥

१६३३ ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः ।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमव भाति भूरि ॥ ६ ॥

अर्थ—[१६३२] (देवयवः नराः यत्र मदन्ति) देवोंके उपासक मनुष्य जहां जाकर आनन्दित होते हैं, ऐसे (अस्य) इस विष्णुके (तत् प्रियं पाथः अश्यां) उस प्रिय स्थानको प्राप्त करें। (इत्था) ऐसा यह विष्णु (उरुक्रमस्य बन्धूः) बहुत पराक्रम करनेवालेका भाई होता है, (विष्णोः परमे पदे) विष्णुके उस उत्तम स्थानमें (मध्वः उत्सः) अमृतका झरना बहता है ॥ ५ ॥

१ देवयवः नराः यत्र मदन्ति, अस्य तत् प्रियं पाथः अश्यां— देवत्वको प्राप्त करनेवाले मनुष्य जहां आनन्द करते हैं, विष्णुके उस प्रिय स्थानको हम भी प्राप्त करें ।

२ उरुक्रमस्य बन्धुः— यह विष्णु पराक्रम करनेवाले उद्योगियोंका भाई अर्थात् सहायक होता है ।

३ विष्णोः परमे पदे मध्वः उत्सः— विष्णुके उस उत्तम स्थानमें अमृतका झरना बहता है ।

[१६३३] हे दम्पती ! (वां) तुम दोनोंके (गमध्यै) चलने फिरने या निवासके लिए हम (ता वास्तूनि उश्मसि) ऐसे घर चाहते हैं, (यत्र भूरिशृंगाः गावः अयासः) जहां अत्यन्त तीक्ष्ण सूर्य किरणें जा सकें । क्योंकि (अत्र अह) ऐसे ही घरोंमें (उरुगायस्य वृष्णः) अनेकों उपासकोंद्वारा प्रशंसित बलवान् विष्णुका (तत् परमं पदं) वह उत्तम स्थान (भूरि अवभाति) बहुत प्रकाशित होता है ॥ ६ ॥

१ वां गमध्यै ता वास्तूनि, यत्र भूरिशृंगाः गावः अयासः— हे दम्पती ! तुम्हारे निवासके लिए घर ऐसे हों, जहां अत्यन्त तीक्ष्ण सूर्य किरणें प्रविष्ट हो सकें अथवा घर ऐसे हों जहां उत्तम सींगोंवाली गायें रह सकें ।

२ अत्र अह वृष्णः परमं पदं अवभाति— ऐसे ही उत्तम घरोंमें बलवान् विष्णुका वह श्रेष्ठ स्थान प्रकाशित होता है ।

भावार्थ— दो लोक होते हैं सूर्यलोक और चन्द्रलोक । सूर्यलोकमें केवल वही जा सकते हैं जो देवत्वको पा लेते हैं। इसी लोकको मोक्ष कहते हैं । इस लोकको प्राप्त होनेवाला व्यक्ति मोक्षानन्द या ब्रह्मानन्दको प्राप्त करता है । चन्द्रलोक साधारण लोग जाते हैं और समय पर वे फिर संसारमें सुख दुःख भोगते हैं । अतः मनुष्योंको चाहिए कि वे प्रयत्न करके सूर्यलोकके मार्ग पर ही चलें, चन्द्रलोकके नहीं । जो इस प्रकार उद्योग करता है, उसकी सहायता विष्णु अर्थात् व्यापक देव स्वयं करते हैं । विष्णुलोकमें अमृतका कोष है, अतः ईश्वरकी कृपा और अपने उद्योगोंसे जो विष्णु लोकको प्राप्त कर लेता है, वह अमर हो जाता है । वह मुक्त हो जाता है ॥ ५ ॥

मनुष्योंके रहनेके घर ऐसे विस्तृत और खुले हुए हों कि जहां सूर्यकी किरणें स्वच्छन्दतासे आ सकें । जहां सूर्यकी किरणें प्रविष्ट होती हैं, उस घरमें रहनेवालोंका स्वास्थ्य उत्तम रहता है, क्योंकि सूर्यकिरणोंमें रोग जन्तुओंको नष्ट कर स्वास्थ्यप्रदान करनेकी शक्ति रहती है। घरोंमें गायोंके रहनेका प्रबन्ध भी उत्तम हो । जिस घरमें गायें रहती हैं, उस घरके निवासी गोदुग्धघृत आदिके कारण हृष्टपुष्ट और स्वस्थ रहते हैं । इस प्रकार जिन घरोंमें सूर्यकी किरणें आ जा सकती हैं और गायें रहती हैं, वहांके लोग स्वस्थ एवं हृष्टपुष्ट होते हैं और प्रयत्नशील और उद्योगी होते हैं । ऐसी ही जगह व्यापक देव विराजते हैं ॥ ६ ॥

[१५५]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- विष्णुः, १-३ इन्द्राविष्णू । छन्दः- जगती ।)

१६३४ प्र वः पान्तमन्धसो धियायते महे शूराय विष्णवे चार्चत ।
या सानुनि पर्वतानामदाभ्या महस्तस्थतुरर्वतेव साधुना ॥ १ ॥

१६३५ त्वेषमित्था समरणं शिमीवतो रिन्द्राविष्णू सुतपा वामुरुष्यति ।
या मर्त्याय प्रतिधीयमानमित् कृशानोरस्तुरसनामुरुष्यथः ॥ २ ॥

१६३६ ता ईं वर्धन्ति मह्यस्य पौंस्यं नि मातरा नयति रेतसे भुजे ।
दधाति पुत्रोऽवरं परं पितुर्नाम तृतीयमधि रोचने दिवः ॥ ३ ॥

---

[१५५]

अर्थ— [१६३४] (या) जो (अ-दाभ्या महः) शत्रुओंसे कभी न हारनेवाले तथा महान् इन्द्र और विष्णु (साधुना अर्वता इव) उत्तम घोडेके समान (पर्वतानां सानुनि तस्थतुः) पहाडोंकी चोटी पर रहते हैं । उनमें (धियायते महे शूराय विष्णवे) बुद्धियोंके तृप्त करनेवाले महान् शूरवीर विष्णुकी (वः) तुम (पान्तं अन्धसः अर्चत) पीने योग्य अन्नसे पूजा करो ॥ १ ॥

[१६३५] हे (इन्द्राविष्णू) इन्द्र और विष्णु ! (अस्तुः कृशानोः) शत्रुओंके विनाशक अग्निकी (प्रतिधीयमानं असनां इत्) धारण करने योग्य ज्वालाको और अधिक (उरुष्यथः) विस्तृत करते हो, उन (शिमीवतोः वां) शक्तिशाली तुम दोनोंके (समरणं त्वेषं) सब जगह फैलनेवाले तेजको (सुतपा उरुष्यति) सोमरस पीनेवाला विस्तृत करता है ॥ २ ॥

[१६३६] (ताः) वे स्तुतियां (अस्य) इस विष्णुके (महि पौंस्यं वर्धन्ति) महान् सामर्थ्यको और ज्यादा बढाती हैं, तब वह विष्णु अपने सामर्थ्यको (रेतसे भुजे) शक्ति और भोगके लिए (मातरा नि नयति) द्यु और पृथ्वी रूप दो माताओंके बीचमें स्थापित करता है । जैसे (पुत्रः) पुत्र (पितुः परं अवरं तृतीयं नाम) अपने पिताके श्रेष्ठ, अधम और मध्यम गुणोंको धारण करता है, उसी तरह यह विष्णु अपने सभी तरहके सामर्थ्योंको (दिवः रोचने दधाति) द्युलोकके मण्डलमें स्थापित करता है ॥ ३ ॥

भावार्थ— विष्णु- सूर्य और इन्द्र- बिजली ये दोनों अत्यन्त शक्तिशाली हैं । उत्तम घोडा जिस प्रकार पर्वतकी चोटीपर आसानीसे चढ जाता है, उसी प्रकार ये दोनों पर्वतकी चोटियोंपर आसानीसे चढ जाते हैं । सूर्योदय होनेके साथ ही सूर्यकी किरणें बहुत ऊंचे होनेके कारण पर्वतोंपर सबसे प्रथम पडती हैं और वर्षाकालमें बिजली भी पहाडोंपर अधिकतर गिरती है । इन दोनोंमें सूर्य अधिक तेजस्वी और शक्तिशाली है ॥ १ ॥

इन्द्र और विष्णु दोनों देव अग्निके तेजको और अधिक तीव्र करते हैं । सूर्य और बिजली इन दोनोंमें अग्नितत्व प्रकृष्ट-रूपमें है । इसलिए सूर्य और बिजलीके रूपमें मानों अग्नि ही अपने रूपका विस्तार करता है । सोम यज्ञ करनेवाले मनुष्य यज्ञके द्वारा इन्द्र और विष्णुके तेजको बढाते हैं ॥ २ ॥

स्तुतियां जब सूर्यके पास पहुंचती हैं, तब इसका सामर्थ्य और भी बढ जाता है, तब यह अपने सामर्थ्यसे जल बरसाता है । जलसे अन्नादि उत्पन्न होते हैं, जिन्हें खाकर प्रजायें शक्तिशाली और प्रजोत्पादनमें समर्थ होती हैं । जिस तरह एक पुत्र अपने पिताके उत्तम, मध्यम और अधम अर्थात् सभी तरहके गुणोंको धारण करता है, उसी तरह द्युलोक भी इस विष्णुके सभी तरहके गुणोंको धारण करता है ॥ ३ ॥

१६३७ तत्तदितदिदस्य पौंस्यं गृणीमसी—नस्यं त्रातुरवृकस्य मीळ्हुषः ।
यः पार्थिवानि त्रिभिरिद् विगामभि—रुरु क्रमिष्टोरुगायाय जीवसे ॥ ४ ॥
१६३८ द्वे इदस्य क्रमणे स्वर्दृशो ऽभिख्याय मर्त्यो भुरण्यति ।
तृतीयमस्य नकिरा दधर्षति वयश्चन पतयन्तः पतत्रिणः ॥ ५ ॥
१६३९ चतुर्भिः साकं नवतिं च नामभि—श्चक्रं न वृत्तं व्यतीँरवीविपत् ।
बृहच्छरीरो विमिमान ऋक्वभि—र्युवाकुमारः प्रत्येत्याहवम् ॥ ६ ॥

अर्थ—[१६३७] (यः) जिस विष्णुने (उरुगायाय जीवसे) अपने मार्गको विस्तृत करनेके लिए तथा प्राणशक्ति प्रदान करनेके लिए (उरु पार्थिवानि) सभी विस्तीर्ण लोकोंको (त्रिभिः विगामिभिः इत्) तीन ही कदमोंसे (क्रमिष्ट) नाप दिया, ऐसे (त्रातुः अवृकस्य मीळ्हुषः इनस्य अस्य) संरक्षण करनेवाले, शत्रुओंसे रहित एवं सुख देनेवाले तथा सबके स्वामी इस विष्णुके (तत् तत् पौंस्यं गृणीमासि) उस उस पराक्रमका वर्णन करते हैं ॥ ४ ॥

[१६३८] (मर्त्यः) मनुष्य (स्वर्दृशः अस्य द्वे इत् क्रमणे) तेजस्वी दृष्टिवाले इस विष्णुके दो पैरोंकी ही (अभिख्याय) चारों ओर प्रशंसा करके उसका (भुरण्यति) ज्ञान प्राप्त कर सकता है । पर (अस्य तृतीयं) इसके तीसरे कदमको (न किः आ दधर्षति) कोई भी हरा नहीं सकता, यहांतक कि (पतयन्तः पतत्रिणः वयः चन) आकाशमें उडनेवाले सुदृढ पंखोंवाले पक्षी भी नहीं हरा सकते ॥ ५ ॥

[१६३९] यह विष्णु (व्यतीन् चतुर्भिः साकं नवतिं च) बीतनेवाले चार सहित नब्बे अर्थात् चौरानवे कालके अवयवोंको (नामभिः) अपनी प्रेरणासे (वृत्तं चक्रं न) गोल चक्रके समान (अर्वीविपत्) घुमाता है । तब (बृहत् शरीरः) बडे शरीरवाला (युवा अकुमारः) सदा तरुण होनेके कारण कभी भी कुमार न होनेवाला यह विष्णु (विमिमानः) कालको नापता हुआ (ऋक्वभिः) स्तुतियोंसे आकर्षित होकर (आहवं प्रति एति) यज्ञकी तरफ आता है ॥ ६ ॥

भावार्थ— यह विष्णु सबका रक्षक है, शत्रुसे रहित है और सब पदार्थोंका स्वामी है तथा सबको सुख देनेवाला है । यह उदय होते ही अपनी किरणोंसे सब लोकोंको नाप देता है अर्थात् प्रकाशित कर देता है । ऐसे विष्णुकी प्रशंसा सब करते हैं ॥ ४ ॥

इस विष्णु- सूर्यके तीन कदम हैं, जो क्रमशः द्युलोक, अन्तरिक्षलोक और पृथिवीलोकमें रहते हैं । मनुष्य उनमें पृथ्वी और अन्तरिक्षलोकमें रहनेवाले कदमोंका तो वर्णन कर सकता है अर्थात् पृथ्वी और अन्तरिक्षमें रहनेवाले प्रकाशका तो थोडा बहुत वर्णन कर सकता है, पर द्युलोकमें रहनेवाले प्रकाशके विषयमें वह कुछ नहीं जानता । द्युलोकमें सूर्य इतना तेजस्वी है कि उसके तेजके अन्तका पता लगाना मनुष्यके लिए असंभव है । यहां तक कि सुदृढ पंखवाले पक्षी भी उसको जान नहीं सकते ॥ ५ ॥

कालके चौरानवे (९४) अवयव होते हैं, जो इस प्रकार हैं- १ संवत्सर, २ अयन (उत्तरायण- दक्षिणायन) ५ ऋतु, १२ मास, २४ पक्ष (शुक्ल एवं कृष्ण), ३० दिनरात, ८ याम, १२ मेषसंक्रमादि राशियां = ९४ । इन सभी अवयवोंको सूर्य घुमाता है । जिस प्रकार गोल चक्र घूमता रहता है, उसी तरह सूर्यकी प्रेरणासे ये सभी कालावयव स्वयं घूमते रहते हैं । इसप्रकार यह सूर्य कालका नियामक है । यह सूर्य सदा तरुण रहता है, यद्यपि यह समयका नियन्ता है, पर समयका प्रभाव इसपर कभी नहीं पडता । इसलिए इसकी शक्ति न कभी क्षीण हुई थी और न होगी । ऐसा यह सूर्य ऋचाओं द्वारा स्तुत होकर यज्ञको प्रेरित करता है ॥ ६ ॥

[१५६]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- विष्णुः । छन्दः- जगती ।)

१६४० भवा मित्रो न शेव्यो घृतासुति—र्विभूतद्युम्न एवया उ सप्रथाः ।
अधा ते विष्णो विदुषा चिदर्ध्यः स्तोमो यज्ञश्च राध्यो हविष्मता ॥ १ ॥

१६४१ यः पूर्व्याय वेधसे नवीयसे सुमज्जानये विष्णवे ददाशति ।
यो जातमस्य महतो महि ब्रवत् सेदु श्रवोभिर्युज्यं चिदभ्यसत् ॥ २ ॥

१६४२ तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथा विद ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन ।
आस्य जानन्तो नाम चिद् विवक्तन महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे ॥ ३ ॥

---

[१५६]

अर्थ— [१६४०] (विष्णो) हे विष्णो ! (घृतासुतिः) जल उत्पन्न करनेवाला, (विभूतद्युम्नः) अत्यन्त तेजस्वी (एवयाः सप्रथाः) सर्वत्र गति करनेवाला तथा अत्यन्त विस्तृत तू (मित्रः न) मित्रके समान (शेव्यः भव) हमें सुख देनेवाला हो। हे विष्णो! (अध) इसके बाद (विदुषा ते स्तोमः अर्ध्यः) विद्वान् मनुष्यके द्वारा की गई तेरी स्तुति प्रशंसनीय है। (हविष्मता यज्ञश्च राध्यः) हविसे युक्त मनुष्यके द्वारा किया गया यज्ञ भी प्रशंसनीय है ॥ १ ॥

[१६४१] (यः) जो मनुष्य (पूर्व्याय) अत्यन्त प्राचीन (वेधसे) ज्ञानी (नवीयसे) स्तुतिके योग्य (सुमत् जानये) उत्तम बुद्धिको उत्पन्न करनेवाले (विष्णवे) विष्णुके लिए (यः ददाशति) जो हवि देना चाहता है (यः) जो (महतः अस्य) महान् इस विष्णुके (महि जातं) प्रशंसनीय जन्मका (ब्रवत्) वर्णन करता है, (सः इत्) वही (श्रवोभिः युज्यं चित् अभि असत्) यशसे परिपूर्ण उस स्थानको प्राप्त करता है ॥ २ ॥

[१६४२] हे (स्तोतारः) स्तुति करनेवालो ! (ऋतस्य गर्भं) यज्ञके केन्द्र (पूर्व्यं) अत्यन्त प्राचीन (तं) उस विष्णुको (यथा विदे) जैसा भी तुम जानते हो, उसी रीतिसे (जनुषा पिपर्तन) स्तुतियोंसे तृप्त करो। (अस्य नाम जानन्तः चित्) इसके यश या पराक्रमको जानते हुए तुम (विवक्तन) उसका वर्णन करो। हे (विष्णो) व्यापक देव ! (महः ते) महान् तुम्हारी (सुमतिं भजामहे) उत्तम बुद्धिको हम प्राप्त करें ॥ ३ ॥

भावार्थ— यह सूर्य जलको उत्पन्न करनेवाला है। पृथ्वीपरके जलोंको सूर्य अपनी किरणोंसे भाप बनाकर उनको बादलके रूपमें बदल देता है, इसप्रकार बादल बरसकर फिर पानी बन जाते हैं। इसीलिए सूर्यको जलको उत्पन्न करनेवाला कहा है। वह सूर्य मित्र है, क्योंकि वह लोगोंका हित करता है। अतः वह हमारे लिए सुख देनेवाला हो ॥ १ ॥

यह सूर्य अनन्तकालसे इसी प्रकार जगको प्रकाश देता आ रहा है, पर फिर भी सदा तरुण जैसा नवीन रहता है। इतने समयके पश्चात् भी वह वृद्ध नहीं होता। यह उत्तम बुद्धिको प्राप्त कराता है। जो इस सूर्यका निरन्तर ध्यान करता है, वह यशस्वी होकर उत्तम स्थानको प्राप्त होता है ॥ २ ॥

हे स्तोताओ ! तुम जो कुछ भी इस सूर्यके बारेमें जानते हो, उतना सब वर्णन इस सूर्यका तुम करो। इसने जो भी पराक्रम आजतक किए हैं, उनका भी वर्णन तुम करो। हे व्यापक देव ! हम तुम्हारी उत्तम बुद्धिको प्राप्त करें ॥ ३ ॥

१६४३ तमस्य राजा वरुणस्तमश्विना क्रतुं सचन्त मारुतस्य वेधसः ।
दाधार दक्षमुत्तममहर्विदं व्रजं च विष्णुः सखिवाँ अपार्णुते ॥ ४ ॥

१६४४ आ यो विवाय सचथाय दैव्य इन्द्राय विष्णुः सुकृते सुकृत्तरः ।
वेधा अजिन्वत् त्रिषधस्थ आर्यमृतस्य भागे यजमानमाभजत् ॥ ५ ॥

[१५७]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- जगती; ५-६ त्रिष्टुप् ।)

१६४५ अबोध्यग्निर्जम उदेति सूर्यो व्युषाश्चन्द्रा मह्यावो अर्चिषा ।
आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीद् देवः सविता जगत् पृथक् ॥ १ ॥

अर्थ— [१६४३] (मारुतस्य वेधसः अस्य) देवोंके साथ रहनेवाले तथा ज्ञानयुक्त इस विष्णुके (तं क्रतुं) उस कर्मके अनुसार (राजा वरुणः) तेजस्वी वरुण और (अश्विना सचन्ते) अश्विनी देव चलते हैं । (सखिवान् विष्णुः) मित्रोंसे युक्त विष्णु (अहर्विदं उत्तमं दक्षं) दिनको प्रकट करनेवाले उत्तम बलको (दाधार) धारण करता है, (व्रजं च अप ऊर्णुते) और मेघोंके आवरणको छिन्न भिन्न कर देता है ॥ ४ ॥

[१६४४] (यः दैव्यः) जो द्युलोकमें रहनेवाला तेजस्वी (सुकृत्तरः) उत्तम कर्म करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ (विष्णुः) विष्णु (सुकृते इन्द्राय सचथाय) उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्रकी सहायता करनेके लिए (आ विवाय) आगे आता है । (त्रिषधस्थः वेधाः) तीनों लोकोंमें रहनेवाला बुद्धिमान् यह विष्णु (आर्यं अजिन्वत्) श्रेष्ठ पुरुषको तृप्त करता है और (ऋतस्य भागे यजमानं आ भजत्) यज्ञके समय पर यज्ञ करनेवालेके पास आता है ॥ ५ ॥

१ वेधाः आर्यं अजिन्वत्— बुद्धिमान् विष्णु श्रेष्ठ पुरुषको हर तरहसे उत्तम बनाता है।

[१५७]

[१६४५] (अग्निः जमः अबोधि) अग्नि भूमिपर जागृत हो चुका है, (सूर्यः उदेति) सूर्य उदय हो चुका है । (मही उषाः) बडी उषा (अर्चिषा चन्द्रा वि आवः) अपने तेजसे लोगोंको आल्हाद देनेवाली होकर फैल चुकी है, इस समय अश्विदेवोंने (यातवे) यात्रा करनेके लिए अपने (रथं आयुक्षातां) रथको तैयार किया है तब (सविता देवः) सूर्य देवने (जगत् पृथक्) संसारको अलग अलग ढंगसे (प्र असावीत्) उत्पन्न किया है । अर्थात् सब संसारको जाग्रत करके कर्मोंमें लगाया है ॥ १ ॥

भावार्थ— तेजस्वी वरुण और अश्विनौ आदि सभी देव इस विष्णुके द्वारा बताये गए मार्गसे चलते और उसके बतायेके अनुसार कर्म करते हैं अर्थात् सभी देव इसी विष्णुके अधीन होकर अपना अपना कार्य करते हैं। यह विष्णु अपनी शक्तिसे दिनको प्रकट करता है और मेघोंको छिन्न भिन्न करके पानी बरसाता है ॥ ४ ॥

द्युलोकमें रहनेवाला यह तेजस्वी सूर्य वर्षाके समय बिजलीकी सहायता करता है । यह सूर्य ही बिजलीको प्रेरित करके पानी बरसाता है । यह सूर्य पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यु तीनों लोकोंमें रहकर प्रकाशित करता है । वह विष्णु श्रेष्ठ पुरुषकी और यज्ञ करनेवाले पुरुषकी हर तरहसे सहायता और रक्षा करता है ॥ ५ ॥

अग्नि प्रज्वलित हुई है, उषा अपने तेजके साथ फैल गयी है, अश्विदेवोंने अपना रथ तैयार किया है, सूर्यने उदय होकर सब लोगोंको अपने अपने कार्योंमें लगा दिया है । रात्रीके समय अग्निको जलाते रखना चाहिए, उषःकालमें उजाला होगा, अश्विदेव उदित होंगे, पश्चात् सूर्य उदय होगा तब सभी लोगोंको अपने कार्योंमें लगना चाहिए ॥ १ ॥

१६४६ यद् युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतम् ।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं वयं धना शूरसाता भजेमहि ॥ २ ॥
१६४७ अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः ।
त्रिवन्धुरो मघवा विश्वसौभगः शं न आ वक्षद् द्विपदे चतुष्पदे ॥ ३ ॥
१६४८ आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवं मधुमत्या नः कशया मिमिक्षतम् ।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ॥ ४ ॥
१६४९ युवं ह गर्भं जगतीषु धत्थो युवं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः ।
युवमग्निं च वृषणावपश्च वनस्पतीँरश्विनाविरयेथाम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [१६४६] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (यत् वृषणं रथं युञ्जाथे) चूँकि तुम दोनों अपने बलवान् रथको तैयार कर रहे हो, इसलिए हम तुमसे विनती करते हैं कि, (मधुना घृतेन) मीठे शहदसे तथा घीसे (नः क्षत्रं उक्षतं) हमारी क्षात्रसेनाको पुष्ट करो, तथा (पृतनासु अस्माकं ब्रह्म जिन्वतं) युद्धोंमें हमारे ज्ञानको यशसे युक्त करो (शूरसाता वयं) जहां शूर लोग धनके लिए युद्ध करते हैं उस युद्धमें हम (धना भजेमहि) धनोंको प्राप्त करें ॥ २ ॥

[१६४७] (त्रिचक्रः) तीन पहियोंसे युक्त (जीराश्वः सुष्टुतः) वेगवान् घोड़ोंसे युक्त, भलीभाँति प्रशंसित (अश्विनोः रथः) अश्विदेवोंका रथ (मधुवाहनः अर्वाङ् यातु) मिठाससे पूर्ण अन्नको ढोता हुआ हमारे पास आवे, (त्रिवन्धुरः विश्वसौभगः) वह तीन बैठकोंसे युक्त और सभी सौंदर्योंसे युक्त (मघवा) ऐश्वर्यसम्पन्न रथ (नः द्विपदे चतुष्पदे) हमारे मानवों तथा चौपायोंको (शं आवक्षत्) सुख पहुँचाये ॥ ३ ॥

[१६४८] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (युवं नः ऊर्जं आवहतं) तुम दोनों हमारे लिए अन्न ले आओ, (नः मधुमत्या कशया मिमिक्षतं) हमें शहदसे पूर्ण पात्रमें संयुक्त करो; (आयुः प्रतारिष्टं) हमारी आयुको सुदीर्घ बनाओ, (रपांसि नि मृक्षतं) दोषोंको पूर्णतया मिटा दो, (द्वेषः सेधतं) द्वेषको हटा दो और (सचाभुवा भवतं) हमारे सहायक बनो ॥ ४ ॥

[१६४९] हे (वृषणौ) बलवान् अश्विदेवो ! (जगतीषु युवं ह) जगतियोंमें, या गौओंमें तुम दोनोंही (गर्भं धत्थः) गर्भको रख देते हो तथा (विश्वेषु भुवनेषु अन्तः) सारे प्राणियोंके भीतर (युवं) तुम दोनों गर्भ स्थापित करते हो, (अग्निं च अपः च) अग्निको तथा जलोंको और (वनस्पतीन्) वनस्पतियोंको (युवं ऐरयेथां) तुम दोनों प्रेरित करते हो ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे अश्विदेवो ! तुमने बाहर जानेके लिये अपना बलवान् रथ जोड़ कर रखा है, इसलिए हमारी प्रार्थना है कि शहद और घीसे हमारे क्षात्रियोंको बलवान् बनाओ, युद्धोंमें हमारा ज्ञान यशस्वी हो और जहां शूर ही लड़ते हैं, उस युद्धमें हमें विजय प्राप्त हो। क्षत्रियोंको शहद और घी पर्याप्त मात्रामें मिले, उसके सेवनसे वे पुष्ट और बलिष्ठ बनें, वे युद्धोंमें विजयी हों और बहुत धन प्राप्त करें ॥ २ ॥

तीन पहियोंसे युक्त, वेगवान् घोड़ोंसे जोता हुआ, अश्विदेवोंका रथ शहद लेकर हमारे पास आवे। तीन आसनोंवाला अतिसुन्दर तथा ऐश्वर्यवान् रथ हमारे द्विपाद और चतुष्पादोंको सुख देवे ॥ ३ ॥

हे अश्विदेवो ! हमें विपुल अन्न दो, शहदसे भरे पात्र हमें दो, हमारी आयु दीर्घ करो, हमारे दोष दूर करो, द्वेषभाव-को दूर करो और सदा हमारे सहायक बनो। विपुल अन्न तथा शहद सेवन करके आयुको बढ़ाना चाहिए, दोषोंको दूर करके द्वेषभावको मिटाकर परस्परकी सहायता करनी चाहिए ॥ ४ ॥

गौओंमें तथा सब प्राणियोंकी स्त्रियोंमें गर्भका पालन पोषण करना अश्विदेवोंका कार्य है। अग्नि, जल और वनस्पतियों-को मनुष्योंके लिये ही अश्विदेव प्रेरित करते हैं ॥ ५ ॥

१६५० यु॒वं ह॑ स्थो भि॒षजा॑ भेष॒जेभि॒ रथो॑ ह स्थो र॒थ्या॒३॒॑ राथ्ये॑भिः ।
अथो॑ ह क्ष॒त्रमधि॑ धत्थ उग्रा यो वां॑ ह॒विष्मा॒न् मन॑सा द॒दाश॑ ॥ ६ ॥

[१५८]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप्, ६ अनुष्टुप् ।)

१६५१ वसू॑ रु॒द्रा पु॑रु॒मन्तू॑ वृ॒धन्ता॑ दश॒स्यतं॑ नो वृषणाव॒भिष्टौ॑ ।
दस्रा॑ ह॒ यद् रेक्ण॑ औच॒थ्यो वां॒ प्र यत् स॒स्राथे॒ अक॑वाभिरू॒ती ॥ १ ॥

१६५२ को वां॑ दाशत् सुम॒तये॑ चिद॒स्यै वसू॒ यद् धेथे॒ नम॑सा प॒दे गोः ।
जि॒गृ॒तम॒स्मे॒ रे॒वतीः॒ पुरं॑धीः काम॒प्रेणे॑व॒ मन॑सा॒ चर॑न्ता ॥ २ ॥

अर्थ— [१६५०] (भेषजेभिः युवं) औषधियोंको साथ रखनेके कारण तुम दोनों ही (भिषजा ह स्थः) निश्चय पूर्वक वैद्य हो, (अथ) उसी प्रकार (राथ्येभिः) रथको जोतनेयोग्य घोडोंके कारण (रथ्याः ह स्थः) रथी भी हो, (अथ) और तुम स्वयं हे (उग्रा) उग्रस्वरूपवाले अश्विदेवो! (यः) जो (हविष्मान्) हवि आदि चीजें (मनसा वां ददाश) मनःपूर्वक तुम दोनोंको अर्पण करता है, उसे तुम (क्षत्रं अधि धत्थः) क्षत्रियोचित वीरता देते हो ॥ ६ ॥

[१५८]

[१६५१] हे (वृषणौ दस्रा) बलवान् शत्रुविनाशक अश्विदेवो ! (वसू रुद्रा) तुम दोनों बसानेवाले, शत्रुओंको रुलानेहारे, (पुरुमन्तू वृधन्ता) बहुत ज्ञानवाले, बढते हुए और (अभिष्टौ) वाञ्छनीय दान (नः दशस्यतं) हमें दो, (यत्) क्योंकि (औचथ्यः रेक्णः वां) उचथ्यका पुत्र धनके लिए तुम दोनोंसे जब प्रार्थना करता है, (यत्) तब (अकवाभिः ऊती) अनिन्दनीय संरक्षणकी आयोजनाओंके साथ (प्र सस्राथे ह) तुम दोनों दौडते हुए आते हो ॥ १ ॥

[१६५२] हे (वसू) बसानेहारे अश्विदेवो ! (यत्) चूँकि (गोः पदे) इस भूमिपर (नमसा) नमस्कार करनेपर (धेथे) तुम दोनों दान देते हो, (अस्यै वां सुमतये चित्) इस तुम्हारी अच्छी बुद्धिको प्रसन्न करनेके लिए (कः दाशत्) कौन और क्या देनेमें समर्थ होगा ? (कामप्रेण इव मनसा चरन्ता) इच्छा पूर्ण करनेकी अभिलाषा मनमें रख कर संचार करनेवाले तुम दोनों (अस्मे) हमें (रेवतीः पुरन्धीः) धनके साथ गौवें (जिगृतं) दे दो ॥ २ ॥

भावार्थ— हे अश्विदेवो ! तुम दोनों अपने पास उत्तम औषधियां रखनेके कारण उत्तम वैद्य हो, उत्तम घोडे अपने रथको जोतनेके कारण उत्तम रथी हो, तुम स्वयं उग्रवीर हो, अतः क्षत्रियोचित सहायता करते हो, जो तुम्हें मनःपूर्वक हवि अर्पण करता है उसकी तुम सहायता करते हो। अपने पास उत्तम औषधियाँ रखकर वैद्य रोगियोंकी उत्तम चिकित्सा करें। वीरता प्राप्त करके अन्योंकी रक्षा करनी चाहिए। अपने अनुयायियोंकी सहायता करनी चाहिए ॥ ६ ॥

अश्विदेव बलवान्, शत्रुका नाश करनेवाले, सबको यथायोग्य बसानेवाले, दुष्टोंको रुलानेवाले, ज्ञानी और बडे हैं। वे हमें यथेष्ट दान दें। उचथ्यके पुत्र दीर्घतमाने जब धनके लिये उनसे प्रार्थना की तब वे दौडते हुए आये थे ॥ १ ॥

हे सबको ठीक तरह बसानेवाले अश्विदेवो ! इस भूमिपर जो तुम्हें नमन करता है उसको तुम दान देते हो, ऐसी तुम्हारी उत्तम बुद्धि है। इस तुम्हारी सुबुद्धिको और अधिक प्रसन्न करनेके लिये भला कौन और अधिक क्या कर सकता है ? तुम तो सबकी इच्छा पूर्ण करनेके लिए ही सर्वत्र संचार करते हो, इसलिए हमें धनके साथ पोषक दुधारू गौवें दो ॥ २ ॥

१६५३ युक्तो ह यद् वां तौग्र्याय पेरु—र्वि मध्ये अर्णसो धायि पज्रः ।
उप वामवः शरणं गमेयं शूरो नाज्म पतयद्भिरेवैः ॥ ३ ॥

१६५४ उपस्तुतिरौचथ्यमुरुष्ये—न्मा मामिमे पतत्रिणी वि दुग्धाम् ।
मा मामधो दशतयश्चितो धाक् प्र यद् वां बद्धस्त्मनि स्वादति क्षाम् ॥ ४ ॥

१६५५ न मा गरन् नद्यो मातृतमा दासा यदीं सुसमुब्धमवाधुः ।
शिरो यदस्य त्रैतनो वितक्षत् स्वयं दास उरो अंसावपि ग्ध ॥ ५ ॥

अर्थ— [१६५३] (वां पेरुः) तुम दोनोंका वह पार ले चलनेवाला रथ (यत्) जब (तौग्र्याय युक्तः ह) तुम्हारे पुत्रको बचानेके लिए तैयार हो चुका तब उसे (अर्णसः मध्ये) समुद्रके मध्य (पज्रः वि धायि) बलसे तुमने खड़ा रखा; (पतयद्भिः एवैः) वेगपूर्वक जानेवाले गति साधनोंसे (शूरः अज्म न) वीर पुरुष जैसे युद्धमें प्रवेश करता है उसी प्रकार (वां उप) तुम दोनोंके समीप (अवः शरणं गमेयं) संरक्षण तथा आश्रयके लिए मैं भी जाऊँ ॥ ३ ॥

[१६५४] (औचथ्यं) उचथके पुत्रको अर्थात् मुझको (उपस्तुतिः उरुष्येत्) तुम दोनोंके समीप जाकर की गई स्तुति सुरक्षित रखे, (इमे पतत्रिणी) सूर्यसे बने दिन तथा रात (मां) मुझको (मा वि दुग्धां) निस्सार न बना डाले; (दशतयः चितः एधः) दश गुनी समिधाएँ डालकर प्रदीप्त की गई यह अग्नि (मां मा [illegible]क्) मुझे न जला डाले (यत्) जिसने (वां बद्धः) तुम दोनोंके भक्तको बांधा था (त्मनि क्षां खादति) वही अब भूमिपर धूल खाता पड़ा है ॥ ४ ॥

[१६५५] (यत् ईं) जब इस मुझ उचथ्य पुत्र दीर्घतमाको (सुसमुब्धं) भली भाँति जकड़कर और बांध कर (दासाः अव अधुः) दासोंने नीचे मुख करके फेंक दिया, तब भी (मातृतमाः नद्यः) मातृतुल्य उन नदियोंने (मा) मुझ (न गरन्) नहीं डुबोया (यत् अस्य शिरः) जब मेरा सिर (त्रैतनः दासः) त्रैतन नामक दास (स्वयं वि तक्षत्) स्वयं काटने लगा और (उरः अंसौ अपि ग्ध) छाती तथा कंधोंको तोड़ने लगा । तब भी आपकी कृपासे बच गया ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे अश्विनौ ! तुम्हारा रथ संकटोंसे बचानेवाला है । तुम्हारे पुत्र भुज्युको बचानेके लिए तुमने उस रथको समुद्रमें वेगवान् गतिसाधनोंसे, शूर जैसे युद्धमें जाता है, वैसे चलाया था । अब मैं भी तुम्हारे पास अपनी सुरक्षाके लिए आया हूँ ॥ ३ ॥

उचथ्यका पुत्र दीर्घतमा कहता है कि— हे अश्विदेवो ! तुम्हारी स्तुति मेरी रक्षा करे, आकाशमें पक्षीके समान जानेवाले सूर्यसे निर्माण हुए दिन रात मुझे निःसार न बनावें, दशगुनी लकड़ियां डाल कर प्रदीप्त हुई यह अग्नि मुझे न जला दे । जिसने तुम्हारे इस भक्तको, मुझ उचथ्यको, बांधकर जलमें फेंक दिया था, वही अब यहां भूमिपर पड़ा धूल खाता है, यह आपके सामर्थ्यका प्रभाव है ॥ ४ ॥

उचथ्य पुत्र दीर्घतमाको दासोंने बांधकर नदीमें फेंक दिया और त्रैतन नामक दासने तो उसका सिर, छाती और कंधे काटनेका यत्न किया, पर ऐसा हुआ कि ऋषि तो बच गया और दासके ही अवयव कट गये ! यह अश्विदेवोंकी ही कृपा है । दूसरेको नदीमें डुबाना, उसका सिर तथा कंधोंको काटना आदि करनेका परिणाम यही हुआ कि अपकार कर्ताका ही नाश हुआ । दूसरेका नाश करनेके लिये यत्न करनेपर अपना ही नाश होता है ॥ ५ ॥

१६५६ दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान् दशमे युगे ।
अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः ॥ ६ ॥

[१५९]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- द्यावापृथिवी । छन्दः- जगती ।)

१६५७ प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी ऋतावृधा मही स्तुषे विदथेषु प्रचेतसा ।
देवेभिर्ये देवपुत्रे सुदंससेत्था धिया वार्याणि प्रभूषतः ॥ १ ॥

१६५८ उत मन्ये पितुरद्रुहो मनो मातुर्महि स्वतवस्तद्वचीमभिः ।
सुरेतसा पितरा भूम चक्रतुरुरु प्रजाया अमृतं वरीमभिः ॥ २ ॥

अर्थ— [१६५६] (मामतेयः दीर्घतमाः) ममताका पुत्र दीर्घतमा नामक ऋषि (दशमे युगे) दसवें युगमें (जुजुर्वान्) वृद्ध होने लगा, (यतीनां अपां अर्थं) संयमसे किये जानेवाले कर्मोंसे प्राप्तव्य अर्थके लिए वह (ब्रह्मा सारथिः भवति) ब्रह्मा ज्ञानी पुरुष बनकर सबको चलानेवाला सारथि बनता है ॥ ६ ॥

[१५९]

[१६५७] (ये देवपुत्रे) जो देवोंकी पुत्रियां द्यावापृथ्वी (देवेभिः) देवोंके साथ मिलकर (सुदंससा धिया) उत्तम कर्म और बुद्धिसे (इत्था वार्याणि प्रभूषतः) इसप्रकार ऐश्वर्योंसे अलंकृत करती हैं, ऐसे (ऋतावृधा) यज्ञोंको बढानेवाले (मही) बडे (विदथेषु प्रचेतसा) यज्ञोंमें ज्ञान प्रदान करनेवाले (द्यावापृथिवी) द्यु और पृथिवीकी (यज्ञैः स्तुषे) स्तोत्रोंसे स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

[१६५८] मैं (अद्रुहः पितुः मातुः) द्रोह न करनेवाले पिता और माताके (स्वतवः महि तत् मनः) शक्तिसे पूर्ण तथा महान् उस मनको (हवीमभिः उत मन्ये) अपनी स्तुतियोंसे मैं प्रसन्न करता हूँ । (सुरेतसा पितरा) उत्तम वीर्यवान् माता पिताओंने (प्रजायाः) प्रजाकी (वरीमभिः) रक्षणोंके द्वारा (चक्रतुः) उन्नति की, यह उनका (अमृतं) सर्वश्रेष्ठ काम (भूम उरु) बहुत विस्तृत है ॥ २ ॥

१ अद्रुहः पितुः मातुः मनः हविर्भिः मन्ये— द्रोह न करनेवाले माता पिताका मन अपनी स्तुतियोंसे प्रसन्न करना चाहिए ।

भावार्थ— ममताका पुत्र दीर्घतमा ऋषि दशम युगमें अर्थात् १११ वें वर्षके अनंतर वृद्ध होने लगा । उसने जो संयमपूर्वक उत्तम कर्म किये थे, उनसे प्राप्त होनेवाले धर्म-अर्थ-काम मोक्षरूपी पुरुषार्थको प्राप्त करके, वह ब्रह्मज्ञानी हुआ, सबका संचालन करनेवाले सारथीके समान सुयोग्य संचालक वह बन गया । १२० वर्षोंकी पूर्ण आयुतक मनुष्य जीवित रहे, ११० वर्षोंके पश्चात् वृद्ध बने, इस तरह अपना जीवन व्यतीत करे, अकालमें अपमृत्युसे न मरे, संयमपूर्वक सब कर्म करे, उनके फल प्राप्त करे, ज्ञानी बने और सारथीके समान सबको उत्तम रीतिसे चलावे । अर्थात् स्वयं समर्थ बने और दूसरोंका मार्गदर्शक बने ॥ ६ ॥

ये द्युलोक और पृथिवीलोक दोनों देवोंकी रक्षा करनेके कारण उनकी पुत्रियोंके समान हैं । ये दोनों अपने कर्मों और बुद्धियोंसे सबको उत्तमोत्तम ऐश्वर्योंसे भूषित करती हैं ॥ १ ॥

पुत्रका कर्तव्य है कि वह अपने माता पिताके मनको अपने उत्तम आचरणोंसे हमेशा प्रसन्न रखे । और माता पिताको भी चाहिए कि वे अपने पुत्रसे द्रोह न करें । अपनी रक्षणशक्तियों द्वारा प्रजाकी उन्नति करनी चाहिए और उन्हें हर प्रकारसे बढाना चाहिए ॥ २ ॥

१६५९ ते सूनवः स्वपसः सुदंससो मही जज्ञुर्मातरा पूर्वचित्तये ।
स्थातुश्च सत्यं जगतश्च धर्मणि पुत्रस्य पाथः पदमद्वयाविनः ॥ ३ ॥
१६६० ते मायिनो ममिरे सुप्रचेतसो जामी सयोनी मिथुना समोकसा ।
नव्यंनव्यं तन्तुमा तन्वते दिवि संमुद्रे अन्तः कवयः सुदीतयः ॥ ४ ॥
१६६१ तद् राधो अद्य सवितुर्वरेण्यं वयं देवस्य प्रसवे मनामहे ।
अस्मभ्यं द्यावापृथिवी सुचेतुना रयिं धत्तं वसुमन्तं शतग्विनम् ॥ ५ ॥

[१६०]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- द्यावापृथिवी । छन्दः- जगती ।)

१६६२ ते हि द्यावापृथिवी विश्वशंभुव ऋतावरी रजसो धारयत्कवी ।
सुजन्मनी धिषणे अन्तरीयते देवो देवी धर्मणा सूर्यः शुचिः ॥ १ ॥

अर्थ—[१६५९] (सु अपसः सुदंससः ते सूनवः) उत्तम कर्म करनेवाले तथा दर्शनीय वे पुत्र (पूर्वचित्तये) प्रथम ज्ञान प्राप्त करनेके लिए (मही मातरा जज्ञुः) इन दोनों बड़ी माताओंको जानते हैं । (स्थातुः च जगतः च) स्थावर और जंगमरूप (अद्वयाविनः पुत्रस्य) कुटिलता रहित पुत्रके (धर्मणि) रक्षणके लिए (सत्यं पदं पाथः) सच्चा पद प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

[१६६०] (दिवि समुद्रे अन्तः) द्युलोकरूपी समुद्रके अन्दर स्थित सूर्यकी (कवयः सुदीतयः) ज्ञानसे युक्त तथा अत्यन्त तेजस्वी किरणें (नव्यं नव्यं तन्तुं) प्रशंसनीय तानेबानेको (तन्वते) बुनती हैं, ये (सुप्रचेतसः मायिनः) उत्तम ज्ञानी और शक्तिशाली किरणें (जामी सयोनी मिथुना सं ओकसः) बहिनके रूपमें एक स्थानसे उत्पन्न, सदा एक साथ रहनेवाली तथा एक ही घरमें रहनेवाली इन द्यावापृथिवीको (ममिरे) मापती हैं ॥ ४ ॥

[१६६१] (वयं अद्यः) हम आज (प्रसवे) उत्तम कर्मोंको करनेके लिए (सवितुः देवस्य) सब जगत्को उत्पन्न करनेवाले उस देवसे (तत् वरेण्यं राधः मनामहे) उस श्रेष्ठ ऐश्वर्यको मांगते हैं । (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथ्वीलोक (सुचेतुना) अपनी उत्तम बुद्धिसे (अस्मभ्यं) हमारे लिए (वसुमन्तं शतग्विनं) निवास करानेवाले तथा अनेकों पशुओंसे युक्त (रयिं धत्तं) ऐश्वर्यको प्रदान करें ॥ ५ ॥

[१६०]

[१६६२] (विश्वशंभुवा) संसारको सुख देनेवाली (ऋतावरी) यज्ञोंको सम्पन्न करनेवाली (रजसः) पानी बरसानेवाली (धारयत् कवी) ज्ञानियोंकी रक्षा करनेवाली (सु जन्मनी) उत्तम जन्मवाली (धिषणे) बुद्धिसे युक्त (देवी द्यावापृथिवी) तेजस्वी द्यावापृथिवीके (अन्तः) बीचमें (शुचिः देवः सूर्यः) पवित्र करनेवाला तेजस्वी सूर्य (धर्मणा ईयते) अपनी धारणशक्तिसे युक्त होकर चलता है ॥ १ ॥

भावार्थ— उत्तम कर्म करनेवाले गुणवान् पुत्र अपने माता पिताको हर तरहसे प्रसन्न रखनेका प्रयत्न करते हैं । ये द्युलोक एवं पृथ्वीलोक स्थावर और जंगमरूप अपने सभी पुत्रोंका हर तरहसे पालन पोषण और रक्षण करते हैं ॥ ३ ॥

द्युलोकमें बैठा हुआ सूर्य मानों एक जुलाहा है, जो अपनी किरणरूपी ताने बानेसे प्रकाशरूपी वस्त्र बुनता रहता है । इस वस्त्रसे वह द्युलोक और पृथ्वी लोक दोनोंको ढंक देता है ये दोनों द्यावापृथिवी पृथक् पृथक् होते हुए भी एक स्थानपर सगी बहिनोंके समान रहती हैं । इसी प्रकार सभी स्त्रियां परस्पर मिलजुलकर रहें ॥ ४ ॥

भगवान् सवितासे हम जो धन प्राप्त करें, उसका उपयोग हम उत्तम कामोंमें ही करें । देवोंसे प्राप्त किए गए धनका उपयोग हम कभी भी बुरे कामोंमें न करें । सभी देव हमें प्रसन्न होकर धन दें, ताकि उस उत्तम धनसे हम अपना जीवन सुचारु रूपसे चला सकें ॥ ५ ॥

ये द्यावापृथिवी दोनों संसारको सुख देनेवाली, जल बरसानेवाली, ज्ञानियोंको धारण करनेवाली हैं । इन दोनोंके बीच-में से सूर्य चलता है । यह सूर्य सबको पवित्र करता है और संसारको धारण करता है ॥ १ ॥

१६६३ उरुव्यचसा महिनी असश्चता पिता माता च भुवनानि रक्षतः ।
सुधृष्टमे वपुष्ये न रोदसी पिता यत् सीमभि रूपैरवासयत् ॥ २ ॥
१६६४ स बर्हिः पुत्रः पित्रोः पवित्रवान् पुनाति धीरो भुवनानि मायया ।
धेनुं च पृश्निं वृषभं सुरेतसं विश्वाहा शुक्रं पयो अस्य दुक्षत ॥ ३ ॥
१६६५ अयं देवानामपसामपस्तमो यो जजान रोदसी विश्वशंभुवा ।
वि यो ममे रजसी सुक्रतूयया ऽजरेभिः स्कम्भनेभिः समानृचे ॥ ४ ॥
१६६६ ते नो गृणाने महिनी महि श्रवः क्षत्रं द्यावापृथिवी धासथो बृहत् ।
येनाभि कृष्टीस्ततनाम विश्वहा पनाय्यमोजो अस्मे समिन्वतम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [१६६३] (यत् पिता) क्योंकि पितारूपी द्यु अर्थात् सूर्य (रूपैः) अपने प्रकाशोंसे मनुष्योंको (सीं अभि अवासयत्) चारों ओरसे वास कराता है, इसलिए (सुधृष्टमे रोदसी) अत्यन्त शक्तिशाली ये द्यावापृथिवी (वपुष्ये न) पुष्टिकारक हैं । (उरुव्यचसा) अत्यन्त विस्तीर्ण (महिनी असश्चता पिता माता च) महान् और पृथक् पृथक् रूपवाले सूर्य और पृथ्वी (भुवनानि रक्षतः) लोकोंकी रक्षा करते हैं ॥ २ ॥

[१६६४] (पित्रोः पुत्रः) मातापितारूप द्युलोक और पृथ्वीलोकका पुत्र (बर्हिः) हविका वाहक (पवित्रवान्) पवित्र करनेहारा (धीरः) बुद्धिमान् (सः) वह सूर्य (मायया) अपनी शक्तिसे (भुवनानि पुनाति) सभी लोकोंको पवित्र करता है । वह (अस्य) अपनी शक्तिसे (विश्वाहा) सब दिन (पृश्निं धेनुं सुरेतसं वृषभं) दुधारू गायों और वीर्यवान् बैलोंको पुष्ट करनेके लिए (शुक्रं पयः दुक्षतः) शुद्ध जल दुहता है ॥ ३ ॥

[१६६५] (यः विश्वशंभुवा रोदसी जजान) जिस देवने विश्वको सुख पहुंचानेवाले द्यावापृथिवीको उत्पन्न किया, (यः) जिसने (सुक्रतूयया) उत्तम कर्म करनेकी इच्छासे (रजसी वि ममे) दोनों द्यावापृथिवीको मापा, तथा (अजरेभिः स्कंभनेभिः सं आनृचे) मजबूत आधारोंसे दोनों लोकोंको दृढ कर दिया, ऐसा (अयं) यह देव (अपसां देवानां अपस्तमः) उत्तम कर्म करनेवाले देवोंके बीचमें सर्वश्रेष्ठ कर्म करनेवाला है ॥ ४ ॥

[१६६६] (नः गृणाने) हमसे प्रशंसित हुई हुई (ते महिनी द्यावापृथिवी) वे विशाल द्यावापृथिवी हमारे लिए (महि श्रवः बृहत् क्षत्रं धासथः) बहुत सा अन्न और बहुत सारी शक्ति प्रदान करें, (येन) जिससे हम (कृष्टिः अभि ततनाम) प्रजाओंका विस्तार करें । वे दोनों (विश्वहा) प्रतिदिन (अस्मे) हमारे अन्दर (पनाय्यं ओजः सं इन्वतं) प्रशंसनीय बलको प्रेरित करें ॥ ५ ॥

भावार्थ सूर्यके अन्दर जीवनशक्ति है, उससे जीवनशक्ति लेकर प्राणी जीवित रहते हैं, यदि सूर्य न हो तो सारे संसारका विनाश हो जाए । इसी प्रकार पृथ्वी सबको आधार देकर अन्नादि देकर उनको पुष्ट करती है । इस प्रकार ये दोनों सब संसारको बसानेवाले हैं । इन दोनोंका विस्तार अत्यधिक है. अर्थात् इनका अन्त कहीं नहीं है ॥ २ ॥

द्यावापृथिवीके मध्यमें यह सूर्य संचार करता है, अतः यह इन दोनोंका पुत्रस्थानीय है । यह अपनी किरणोंसे सब लोकोंको पवित्र करता हुआ चलता है, तथा आकाशसे पानी बरसा कर गायों बैलों अर्थात् प्राणिमात्रको पुष्ट करता है ॥३॥

इस सूर्यने द्यावापृथिवीको उत्पन्न किया, उनको सुदृढ किया । इसीलिए उत्तम कर्म करनेवाले देवोंके बीचमें यह अग्रगण्य है और सर्वश्रेष्ठ कर्मका करनेवाला है ॥ ४ ॥

ये दोनों द्यावापृथिवी हमसे स्तुत होकर हमें शक्ति प्रदान करें, ताकि हम [illegible]ना विस्तारके कार्यमें समर्थ हों, अर्थात् हम मनुष्योंको उन्नत करनेके कार्यमें समर्थ हों । इस उत्तम कर्मके लिए हम [illegible]दिन उत्तम प्रेरणा मिलती रहे ॥ ५ ॥

[१६१]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- ऋभवः । छन्दः- जगती: १४ त्रिष्टुप् ।)

१६६७ किमु श्रेष्ठः किं यविष्ठो न आजगन् किमीयते दूत्यं कद् यदूचिम ।
न निन्दिम चमसं यो महाकुलो ऽग्नेर्भ्रातर्द्रुण इद् भूतिमूदिम ॥ १ ॥

१६६८ एकं चमसं चतुरः कृणोतन तद् वो देवा अब्रुवन् तद् व आगमम् ।
सौधन्वना यद्येवा करिष्यथ साकं देवैर्यज्ञियासो भविष्यथ ॥ २ ॥

१६६९ अग्निं दूतं प्रति यदब्रवीतनाश्वः कर्त्वो रथ उतेह कर्त्वः ।
धेनुः कर्त्वा युवशा कर्त्वा द्वा तानि भ्रातरनु वः कृत्व्येमसि ॥ ३ ॥

[१६१]

अर्थ—[१६६७] (नः आजगन्) जो हमारे पास आया है, वह (किं उ श्रेष्ठः) क्या श्रेष्ठ है (किं यविष्ठः) अथवा छोटा है, (किं दूत्यं इयते) यह किसका दूत होकर आया है, (कत् यत् ऊचिम) हम किसका वर्णन करें । हे (भ्रातः अग्ने) भरणपोषण करनेहारे अग्ने ! (यः महाकुलः) जो अच्छे कुलमें उत्पन्न हुआ है, ऐसे (चमसं न निन्दिम) चावल आदिकी निन्दा नहीं करते, अपितु (द्रुणः भूतिं इत् ऊदिम) शत्रुओंको झुकानेवाले इस अन्नके ऐश्वर्यका ही वर्णन करते हैं ॥ १ ॥

१- महाकुलं चमसं न निन्दिम, भूतिं इत् ऊदिम— उत्तम जमीनपर होनेवाले अन्नकी निन्दा नहीं करनी चाहिए, अपितु उसकी प्रशंसा ही करनी चाहिए ।

[१६६८] हे (सौधन्वनाः) हे सुधन्वाके पुत्रो ! तुम (एकं चमसं चतुरः कृणोतन) एक अन्नके चार भाग करो, (तत् वः देवाः अब्रुवन्) ऐसा तुमसे देवोंने कहा है, (तत् वः आगमं) उसीको तुमसे कहनेके लिए मैं आया हूँ । (यदि एवा करिष्यथ) यदि तुम ऐसा करोगे, तो (देवैः साकं यज्ञियासः भविष्यथ) देवोंके साथ ही तुम भी पूजनीय हो जाओगे ॥ २ ॥

[१६६९] हे ऋभुओ ! तुमने (दूतं अग्निं प्रति) दूतका कर्म करनेवाले अग्निसे (यत् अब्रवीतन) जो यह कहा कि (अश्वः कर्त्वः) घोडेको हृष्टपुष्ट बनाना है, (उत इह रथः कर्त्वः) और यहां रथ भी तैयार करना है, (धेनुः कर्त्वा) गायको हृष्टपुष्ट करना है, (द्वा युवशा कर्त्वा) दोनों वृद्धोंको तरुण बनाना है, (तानि कृत्व्या) उन सब कामोंको करके हे (भ्रातः) भाई अग्ने ! (वः अनु एमसि) हम तुम्हारे पीछे आते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— घरमें कोई अतिथि आवे तो प्रथम यह देखना चाहिए कि वह बडा है या छोटा । ताकि उससे यथायोग्य व्यवहार किया जा सके । फिर उससे प्रेमपूर्वक पूछना चाहिए कि तुम कहांसे आये हो, किसीका सन्देश लेकर आए हो, इत्यादि । इसके बाद उसे अन्न देवे । अतिथि भी गृहस्थ द्वारा दिए गए अन्नकी कभी निन्दा न करे । अन्न एक देव है जिसकी कभी निन्दा नहीं करनी चाहिए, अपितु सदा प्रसन्न मनसे उसकी प्रशंसा करते हुए उसे खाना चाहिए ॥ १ ॥

गृहस्थियोंको चाहिए कि वे अपने अन्नके चार भाग करें, (१) घरवालोंके लिए, (२) अतिथियोंके लिए, (३) नौकर चाकरोंके लिए, (४) पशु पक्षियोंके लिए इसप्रकार चार भाग करें । यह देवोंकी आज्ञा है । जो इसप्रकार करता है, उसकी सभी प्रशंसा करते हैं ॥ २ ॥

घोडोंको और गायोंको हृष्टपुष्ट बनाना चाहिए, रथोंको भी उत्तम रीतिसे तैय्यार करना चाहिए । गायोंके हृष्टपुष्ट होनेसे, जो वृद्ध होंगे, वे भी उनका दूध घी खाकर तरुणके समान शक्तिशाली और उत्साहपूर्ण हो सकेंगे ॥ ३ ॥

१६७० चक्रुवांसं ऋभवस्तदपृच्छत क्वेदभूद् यः स्य दूतो न आजगन् ।
यदावाख्यच्चमसाञ्चतुरः कृता नादित् त्वष्टा गास्वन्तर्न्यानजे ॥ ४ ॥

१६७१ हनामैनाँ इति त्वष्टा यदब्रवी च्चमसं ये देवपानमनिन्दिषुः ।
अन्या नामानि कृण्वते सुते सचाँ अन्यैरेनान् कन्याः नामभिः स्परत् ॥ ५ ॥

१६७२ इन्द्रो हरी युयुजे अश्विना रथं बृहस्पतिर्विश्वरूपामुपाजत ।
ऋभुर्विभ्वा वाजो देवाँ अगच्छत स्वपसो यज्ञियं भागमैतन ॥ ६ ॥

अर्थ— [१६७०] (चक्रुवांसः ऋभवः तत् अपृच्छत) प्रयत्नशील ज्ञानियोंने यह पूछा कि (यः दूतः स्य नः आजगन्) जो दूत होकर हमारे पास आया, वह (क्व इत् अभूत्) वह कहाँ उत्पन्न हुआ था ? (यदा) जब (त्वष्टा) त्वष्टाने (चतुरः कृतान् चमसान्) चार तरहसे किए गए अन्नोंको (अव अख्यत्) प्रकाशित किया, (आत् इत्) उसके बाद ही वह दूत (गनासु अन्तः नि आनजे) आने योग्य भूमियोंमें सर्वत्र संचार करने लगा ॥ ४ ॥

[१६७१] (त्वष्टा अब्रवीत् यत्) त्वष्टाने कहा है कि (ये देवपानं चमसं अनिन्दिषुः) जो देवोंके द्वारा खाने योग्य अन्नकी निन्दा करते हैं, (एनान् हनाम) उन्हें हम मारें । (सचा सुते) परस्पर मिलकर सोम निचोडने पर इसके (अन्या नामानि कृण्वते) दूसरे भी अनेक नाम होते हैं, तब (कन्या) सुन्दर स्त्रियां (एनान् अन्यैः नामभिः स्परत्) इन्हें दूसरे नामोंसे सम्बोधित करती हैं ॥ ५ ॥

१ ये देवपानं अनिन्दिषुः एनान् हनाम, त्वष्टा अब्रवीत्— जो देवोंके द्वारा भक्षण करने योग्य अन्नकी निन्दा करते हैं, उन्हें हम मारें, ऐसा त्वष्टाने कहा ।

[१६७२] (इन्द्रः हरी युयुजे) इन्द्रने घोडोंको जोड दिया है, (अश्विना रथं) अश्विनौने रथको तैय्यार कर दिया है, (बृहस्पतिः विश्वरूपां उप आजत) बृहस्पतिने अनेकरूपोंवाली वाणीका बोलना शुरु कर दिया है, अतः हे (ऋभुः विभ्वा वाजः) ऋभु विभ्वा और वाज ! तुम (देवान् अगच्छत) देवोंके पास जाओ और (सु-अपसः यज्ञियं भागं ऐतन) उत्तम कर्म करनेवाले होकर तुम सब यज्ञके भागको प्राप्त होओ ॥ ६ ॥

१ सु-अपसः यज्ञियं भागं ऐतन— उत्तम कर्म करनेवाले ही यज्ञके भागको प्राप्त कर सकते हैं ।
२ ऋभुः विभ्वा वाजः देवान् अगच्छत— ज्ञानी, तेजस्वी और बलवान् ही देवत्व प्राप्त कर सकते हैं ।

भावार्थ— दूत देशका सम्मान्य प्रतिनिधि होता है, अतः उसका अपमान देशका अपमान माना जाता है । इसीलिए दूतका हर तरहसे सम्मान करना चाहिए । जब वह आवे तब हरतरहके अन्नोंसे उसको आनन्दित करना चाहिए, ताकि वह भूमिपर सर्वत्र सुखपूर्वक संचार कर सके ॥ ४ ॥

जो देवोंके द्वारा खाने योग्य अन्नकी निन्दा करते हैं, जो देवोंकी, हवियोंकी, यज्ञोंकी और अन्नकी निन्दा करते हैं, या उनका अपमान करते हैं, उनको मारना चाहिए । जो अन्नको मारते हैं, उन्हें अन्न मार देता है, अतः अन्नकी निन्दा कभी नहीं करनी चाहिए । सोम जब तैय्यार हो जाता है, तब उसके नाम भी अनेक हो जाते हैं और तब वह अनेक नामोंसे संबोधित होता है ॥ ५ ॥

इन्द्र अपने घोडे जोडकर, अश्विनौ अपने रथ तैयार करके यज्ञको जानेके लिए तैयार हो गए हैं, बृहस्पतिने भी स्तोत्रोंका गान शुरु कर दिया है । पर ऐसे देवोंके पास वही जा सकते हैं, जो ज्ञानी, तेजस्वी और शक्तिशाली होते हैं । और उत्तम कर्म करनेवाले ही यज्ञके भागको प्राप्त कर सकते हैं ॥ ६ ॥

१६७३ निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभि॒र्या जरन्ता युवशा ताकृणोतन ।
सौधन्वना अश्वादश्वमतक्षत युक्त्वा रथमुप देवाँ अयातन ॥ ७ ॥

१६७४ इदमुदकं पिबतेत्यब्रवीतने॒दं वा घा पिबता मुञ्जनेजनम् ।
सौधन्वना यदि तन्नेव हर्यथ तृतीये धा सवने मादयाध्वै ॥ ८ ॥

१६७५ आपो भूयिष्ठा इत्येको अब्रवी॒दग्निर्भूयिष्ठ इत्यन्यो अब्रवीत् ।
वधर्यन्तीं बहुभ्यः प्रैको अब्रवी॒दृता वदन्तश्चमसाँ अपिंशत ॥ ९ ॥

अर्थ— [१६७३] हे (सौधन्वनाः) सुधन्वाके पुत्रो ! तुमने (धीतिभिः) अपने प्रयत्नोंसे (निश्चर्मणः गां अरिणीत) चर्मसे रहित गायको भी पुष्ट किया । (या जरन्ता) जो बूढे हो गए थे (ता) उन माता पिताको (युवशा अकृणोतन) फिरसे तरुण बनाया । (अश्वात् अश्वं अतक्षत) एक घोडेसे दूसरा घोडा पैदा किया, फिर (रथं युक्त्वा) उन घोडोंको अपने रथमें जोडकर (देवान् उप अयातन) देवोंके पास गए ॥ ७ ॥

१ निश्चर्मणः गां अरिणीत— चर्मसे भी रहित अर्थात् अत्यन्त कमजोर गायको हृष्टपुष्ट किया ।

[१६७४] हे (सौधन्वनाः) सुधन्वाके पुत्रो ! (इदं उदकं पिबत) इस पानीको पीओ (इदं मुंजनेजनं पिबत) इस मौञ्जवान् पर्वतसे लाए गए सोमरसको पीओ (इति अब्रवीतन) ऐसा तुमने कहा था । (यदि तत् न एव हर्यथ) यदि उसको पीनेकी तुम्हारी इच्छा नहीं है, तो (तृतीये सवने घ मादयाध्वै) तीसरे समय तो निश्चयसे उसे पीकर आनन्दित होओ ॥ ८ ॥

[१६७५] (आपः भूयिष्ठाः) जल सर्वश्रेष्ठ है, (इति एकः अब्रवीत्) ऐसा एकने कहा, (अग्निः भूयिष्ठः इति अन्यः अब्रवीत्) अग्नि श्रेष्ठ है, ऐसा दूसरेने कहा, (एकः वधर्यन्तीं बहुभ्यः प्र अब्रवीत्) तीसरेने भूमिको सर्वश्रेष्ठ बतलाया, इसप्रकार (ऋता वदन्तः) सत्य बोलते हुए सभीने (चमसान् अपिंशत) ऐश्वर्यका विभाग किया ॥ ९ ॥

वधर्यन्ती– " भूमि वधं आत्मनः इच्छन्तीं भूमिं " (सायणः)

भावार्थ— राष्ट्रमें ऐसी विद्याका प्रचार हो जिसके द्वारा कमजोरको हृष्टपुष्ट और वृद्धोंको तरुण बनाया जा सके । सुधन्वाके पुत्रोंने जिसके शरीरपर केवल चमडी ही रह गई थी, ऐसी कमजोर गायको भी फिरसे हृष्टपुष्ट बनाया और वृद्धोंको फिरसे तरुण बनाया ॥ ७ ॥

यदि कोई वीर पुरुष अतिथिके रूपमें आवे, तो उससे प्रेमपूर्वक कहना चाहिए कि ' आप पानी पीयें अथवा सोमरस ही पीयें अथवा यदि आपको इस समय पीना अच्छा न लगता हो तो शामको तो अवश्य पीकर आप आनन्दित हों । ' तात्पर्य यह कि घरमें आया हुआ अतिथि अप्रसन्न होकर न जाए । गृहस्वामी अतिथिको खुश करनेका भरसक प्रयत्न करे । अतिथिका अप्रसन्न होकर घरसे जाना गृहस्वामीके लिए पापका कारण बनता है ॥ ८ ॥

कहीं जलको सर्वश्रेष्ठ बताया है, कहीं अग्निको सर्वश्रेष्ठ कहा है, तो कहीं भूमिको सर्वश्रेष्ठ बताया है । ये बातें यद्यपि ऊपरसे विरुद्ध प्रतीत होती हैं, पर हैं ये सभी सत्य ही, क्योंकि परमात्माने इन सभी तत्त्वोंमें ऐश्वर्यका विभाग किया है । यदि जल न हो तो जीवन न हो, अग्नि न हो तो शरीर न रहे और यदि भूमि न हो तो सब आधारहीन होकर नष्ट हो जाए, अतः इन सभी तत्त्वोंमें ऐश्वर्य विद्यमान है । जलमें जीवनतत्त्वोंको पुष्ट करनेवाला ऐश्वर्य है । अग्निमें शरीरमें उष्णता पैदा करके उसे उत्साहपूर्ण बनानेका ऐश्वर्य है और भूमिमें सभी तरहके ऐश्वर्य हैं । इस तरह इन तीनों तत्त्वोंमें ऐश्वर्य भरपूर है, इसलिए ये तीनों ही श्रेष्ठ हैं ॥ ९ ॥

१६७६ श्रोणामेकः उदकं गामवाजति मांसमेकः पिंशति सूनयाभृतम् ।
आ निम्रुचः शकृदेको अपाभरत् किं स्वित् पुत्रेभ्यः पितरा उपावतुः ॥ १० ॥
१६७७ उद्वत्स्वस्मा अकृणोतना तृणं निवत्स्वपः स्वपस्यया नरः ।
अगोह्यस्य यदसस्तना गृहे तदुद्येदमृभवो नानु गच्छथ ॥ ११ ॥
१६७८ संमील्य यद् भुवना पर्यसर्पत कं स्वित् तात्या पितरा व आसतुः ।
अशपत यः करस्नं व आददे यः प्राब्रवीत् प्र तस्मा अब्रवीतन ॥ १२ ॥

अर्थ—[१६७६] (एकः) एक पुत्र (श्रोणां गां उदकं अव अजति) पुष्ट गायको पानीकी तरफ ले जाता है, (एकः सूनया आभृतं मांसं पिंशति) दूसरा पुत्र उत्तम रीतिसे लाए गए चारेको खिलाकर गायके शरीरको मांसयुक्त बनाकर उसे रूपवान् बनाता है, (एकः) तीसरा पुत्र (निम्रुचः) सूर्यास्तके समय (शकृत् अप अभरत्) गायके गोबरको उठा कर फेंकता है, ऐसे उत्तम (पुत्रेभ्यः) पुत्रोंसे (पितरा किंस्वित् उप अवतुः) माता पिता और किस बातकी अपेक्षा रखें ? ॥ १० ॥

[१६७७] (ऋभवः नरः) हे तेजस्वी मनुष्यो ! (सु अपस्यया) अपने उत्तम कर्मोंसे (उत् वत्सु अस्मै तृणं अकृणोतन) ऊंचे प्रदेशोंमें इस गाय आदि पशुके लिए घास आदि पैदा करो, तथा (निवत्सु अपः) निचले प्रदेशोंमें पानीको सुरक्षित रखो । (यत्) जबतक तुम (अगोह्यस्य गृहे असस्तन) गायके रहने न योग्य घरमें रहोगे, (तत् अद्य) तबतक तुम (इदं न अनुगच्छथ) इस ऐश्वर्यको नहीं पा सकते ॥ ११ ॥

१ यत् अ-गोह्यस्य गृहे असस्तन तत् इदं न अनु गच्छथ— जबतक मनुष्य गायके न रहने योग्य घरमें रहेंगे, तबतक वे ऐश्वर्यको नहीं पा सकते ।

[१६७८] हे ऋभुओं—सूर्यकिरणो ! तुम (यत्) जब (तात्या भुवना संमील्य परि असर्पत) मेघोंसे लोकोंको आच्छादित करके चारों ओर विचरते हो, तब (यः पितरा क्व स्वित् आसतुः) तुम्हारे मातापितारूप सूर्य चन्द्र कहां रहते हैं ? (यः वः करस्नं आददे) जो तुम्हारे हाथोंको रोकता है, उसे (अशपत) शाप दो, (यः प्र अब्रवीत्) जो तुम्हारी स्तुति करता है, (तस्मै प्र अब्रवीतन) उसके लिए तुम आशीर्वाद दो ॥ १२ ॥

१ ऋभुः-सूर्य किरण " आदित्यरश्मयोऽप्यृभव उच्यन्ते " (निरु. ११।१६)

भावार्थ—सूर्यास्तके समय जब गाय वनसे लौटती है, तब गृहस्वामीका एक पुत्र उसे पानी पिलाता है, दूसरा उत्तम चारा आदि खिलाकर उसे मांसल एवं रूपवान् बनाता है, तीसरा उसके गोबरको उठाकर दूर फेंकता है और गायके रहनेके स्थानको साफ रखता है, ऐसे उत्तम गौसेवी जिसके पुत्र हों, उन्हें और किस बातकी कमी है, अर्थात् जिस घरमें सौभाग्यकी प्रतीक गायकी ऐसी उत्तम सेवा होती है, वह घर हमेशा ऐश्वर्यसे भरापूरा रहता है ॥ १० ॥

हे मनुष्यो ! जो ऊंचे प्रदेश हों अर्थात् जहां पानी न रह सकता हो, वहां गाय आदि पशुके लिए घास आदि उत्पन्न करो और जो नीचे प्रदेश हों, अर्थात् जहां पानी रह सकता हो, वहां गायोंके पीनेके लिए पानी इकट्ठा करो । गाय ऐश्वर्यको देनेवाली है, इसमें सब ऐश्वर्य बसते हैं, अतः जिस घरमें गाय नहीं रहती, वह घर ऐश्वर्यहीन होता है । अतः जबतक मनुष्य ऐसे घरमें रहेंगे कि जिसमें गायें नहीं रह सकतीं, तबतक वे ऐश्वर्यहीन ही रहेंगे ॥ ११ ॥

जब आकाशमें बादल छा जाते हैं, तब किरणोंके पालक सूर्य चन्द्र छिप जाते हैं । उनको लोग देख नहीं पाते । जो मनुष्य इन किरणोंको रोकना चाहता है अर्थात् सूर्यकिरणोंको अपने घरमें आने नहीं देता और स्वयं भी सूर्यकिरणोंमें विचरता नहीं, वह अनेक रोगोंसे ग्रस्त होकर विनष्ट हो जाता है । सूर्यकिरणोंमें रोग जन्तुओंको नष्ट करनेका गुण है । अतः जो इन किरणोंका उपयोग करता है, उनसे भरपूर लाभ उठाता है, उसे यह किरणें स्वस्थ बनाती हैं ॥ १२ ॥

×

१६७९ सुषुप्वांस ऋभवस्तदपृच्छता गोह्य क इदं नो अबूबुधत् ।
श्वानं वस्तो बोधयितारमब्रवीत् संवत्सर इदमद्या व्यख्यत ॥ १३ ॥

१६८० दिवा यान्ति मरुतो भूम्याऽग्नि रयं वातो अन्तरिक्षेण याति ।
अद्भिर्याति वरुणः समुद्रै र्युष्माँ इच्छन्तः शवसो नपातः ॥ १४ ॥

[१६२]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- अश्वः । छन्दः- त्रिष्टुप्, ३, ६ जगती ।)

१६८१ मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायु रिन्द्र ऋभुक्षा मरुतः परि ख्यन् ।
यद् वाजिनो देवजातस्य सप्तेः प्रवक्ष्यामो विदथे वीर्याणि ॥ १ ॥

१६८२ यस्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति ।
सुप्राङजो मेम्यद् विश्वरूप इन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येति पाथः ॥ २ ॥

अर्थ—[१६७९] हे (ऋभवः) सूर्यकिरणो ! (सुषुप्वांसः) सोते हुए तुमने सूर्यसे (तत् इदं अपृच्छत) इस सब बातको पूछा कि हे (अगोह्य) न छिपनेवाले सूर्य ! (नः कः अबूबुधत्) हमें किसने जगाया है, (वस्तः) सबको निवास करानेवाले सूर्यने (बोधयितारं) तुम्हें जगानेवाला (श्वानं अब्रवीत्) वायु बताया । तुमने (संवत्सरे अद्य इदं आ व्यख्यत) एक वर्षके बाद आज इस जगत्को प्रकाशित किया है ॥ १३ ॥

[१६८०] हे (शवसः नपातः) बलको न गिरने देनेवाले ऋभुओ । (युष्मान् इच्छन्तः) तुम्हें पानेकी इच्छा करते हुए (मरुतः दिवा यान्ति) मरुद्गण द्युलोकसे जाते हैं, (भूम्या अग्निः) भूमिसे अग्नि जाता है, (अयं वातः अन्तरिक्षेण याति) यह वायु अन्तरिक्षसे जाता है । तथा (समुद्रैः अद्भिः वरुणः याति) बहनेवाले जलप्रवाहोंसे वरुण जाता है ॥ १४ ॥

[१६२]

[१६८१] (यत्) जो हम (देवजातस्य वाजिनः सप्तेः) देवोंसे उत्पन्न हुए बलशाली घोडेके (विदथे) संग्राममें किए गए (वीर्याणि) पराक्रमोंका (प्रवक्ष्यामः) वर्णन करते हैं, इसलिए (मित्रः वरुणः अर्यमा आयुः ऋभुक्षा मरुतः) मित्र, वरुण, अर्यमा, वायु, ऋभुक्षा और मरुत् (नः मा परि ख्यन्) हमारी निन्दा न करें ॥ १ ॥

[१६८२] (यत्) जब वीर (निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य) रूप और धनसे भरपूर घोडेके (मुखतः) शक्तिसे (गृभीतां रातिं नयन्ति) प्राप्त किए गए ऐश्वर्यको पाते हैं, तब (विश्वरूपः अजः) अनेकों रूपोंवाला नेता घोडा (सुप्राक् मेम्यत्) सेनाके आगे रहकर शत्रुओंको मारता हुआ (इन्द्रापूष्णोः प्रियं पाथः अपि एति) इन्द्र और पूषाके स्नेहको प्राप्त करता है ॥ २ ॥

भावार्थ— वर्षाकालमें आकाशमें चारों ओर बादल छा जाते हैं, इसलिए सूर्यकी किरणें छिप जाती हैं, तब वे मानों सो जाती हैं । पर जब बहुत जोरकी हवा चलती है तब सारे बादल छट जाते हैं अर्थात् उड जाते हैं, तब किरणें फिर फैल जाती हैं, यही मानों उनका जगना है । वर्षाकालमें बहुत समयके बाद सूर्यका दर्शन होता है ॥ १३ ॥

इन सूर्यकी किरणोंसे प्रेरित होकर द्युलोकमें मरुत् चलते हैं । भूमिपर अग्नि अपना काम करती है, हवा अन्तरिक्षमें चलती है और जलप्रवाह चलते हैं । सारे देव उसीकी प्रेरणासे कार्य करते हैं ॥ १४ ॥

कोई भी जीव हो, यदि वह उत्तम कर्म करे, तो उसकी प्रशंसा अवश्य करनी चाहिए । घोडेको सिखाकर उसे कुशल और युद्धके लिए निपुण बनाना चाहिए ॥ १ ॥

ये ही वीर संग्राममें ऐश्वर्य प्राप्त कर सकते हैं, जिनके घोडे बहुत हृष्टपुष्ट और शक्तिशाली होते हैं । ये घोडे सेनाके आगे रहकर संग्राममें शत्रुओंको मारते काटते आगे बढते हैं, तब ये घोडे इन्द्र और पूषाके प्रेमको प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥

१६८३ एष च्छागः पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः ।
अभिप्रियं यत् पुरोळाशमर्वता त्वष्टेदेनं सौश्रवसाय जिन्वति ॥ ३ ॥

१६८४ यद्धविष्यमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति ।
अत्रा पूष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः ॥ ४ ॥

१६८५ होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ उत शंस्ता सुविप्रः ।
तेन यज्ञेन स्वरंकृतेन स्विष्टेन वक्षणा आ पृणध्वम् ॥ ५ ॥

अर्थ—[१६८३] (पूष्णः भागः) पूषाका भाग (विश्वदेव्यः) सब गुणोंसे युक्त (एषः छागः) यह निष्क्रिय घोडा (वाजिना अश्वेन पुरः) बलवान् घोडेके साथ आगे आगे (नीयते) ले जाया जाता है, तब (त्वष्टा) त्वष्टा (अर्वता) बलवान् घोडेके साथ रहनेवाले (एनं अभिप्रियं पुरोडाशं) इस प्रिय और आगे रहनेवाले घोडेको (सौश्रवसाय) उत्तम यशकी प्राप्तिके लिए (जिन्वति) तृप्त करता है ॥ ३ ॥

छागः- निष्क्रिय घोडा— " यश्छिन्नगमनोऽश्वः स छागः । छिदेर्गमेश्च छागशब्दः प्रसिद्धः "
(ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य १।८।३१)

[१६८४] (मानुषाः) मनुष्य (यत्) जब (हविष्यं देवयानं) हविके योग्य और देवोंके पास पहुंचानेवाले (अश्वं) अश्वको (ऋतुशः) ऋतुओंके अनुसार (त्रिः परि नयन्ति) तीन बार चारों ओर घुमाते हैं, (अत्र) तब (पूष्णः भागः) पूषाका भाग तथा (अजः) नेतारूप यह घोडा (देवेभ्यः यज्ञं प्रतिवेदयन्) देवोंको यज्ञका ज्ञान कराता हुआ (प्रथमः एति) सबसे पहले जाता है ॥ ४ ॥

[१६८५] (ग्रावग्राभः) सोमकूटनेके पत्थरोंकी स्तुति करनेवाला (शंस्ता) स्तोत्र बनानेवाला तथा (सुविप्रः) उत्तम ज्ञानी (होता) देवोंको बुलानेवाला तथा (आवया) श्रद्धापूर्वक हवि देनेवाला (अध्वर्युः) अध्वर्यु (अग्निं इन्धः) अग्निको प्रज्ज्वलित करता है। हे मनुष्यो ! तुम सब (तेन स्वरंकृतेन स्विष्टेन यज्ञेन) उस अलंकृत और उत्तम प्रकारसे आहुतिसे युक्त यज्ञके द्वारा (वक्षणाः आ पृणध्वं) नदियोंको भर दो ॥ ५ ॥

भावार्थ— एक निष्क्रिय घोडेको जब युद्धादि कला सिखानी होती है, तब उसे एक बलशाली घोडेसे संयुक्त करते हैं, इस प्रकार वह घोडा उस निष्क्रिय घोडेको भी युद्धकला सिखा देता है। तब वह निष्क्रिय घोडा भी राजाका स्नेहपात्र बन जाता है और वह राजा उस घोडेको यश प्राप्त करनेकी इच्छासे पुष्ट बनाता है ॥ ३ ॥

अश्वमेधके अवसर पर ऋत्विग्गण यज्ञके पशु घोडेको अग्निके चारों ओर तीनबार घुमाते हैं, तीनबार अग्निकी परिक्रमा करानेसे वह यज्ञीय हो जाता है और तब वह देवत्वको प्राप्त करानेवाला होता है। वह पोषण करनेवाले राजाका मुख्य भाग होता है अर्थात् उस अश्वकी सेवा राजाको भी करनी पडती है। तब वह यज्ञका ज्ञान कराता हुआ भूमि पर सर्वत्र विचरता है। वह सबसे आगे रहता है और पीछे उसकी संरक्षक सेना रहती है। जिधर जिधर घोडा जाता है, उधर उधर सेनाको भी जाना पडता है ॥ ४ ॥

हे मनुष्यो ! उत्तम ज्ञानी यह होता अध्वर्यु यज्ञको प्रज्ज्वलित करता है, और तुम सब इस यज्ञमें उत्तम उत्तम आहुतियां देकर नदियोंको भर दो। यज्ञमें आहुति देनेसे यज्ञके धुंएसे बादलोंका निर्माण होता है। उसका नाम " पर्जन्येष्टि " है। इस पर्जन्येष्टिसे बादलोंका निर्माण होकर पानी बरसता है और तब सारी नदियां भर जाती हैं ॥ ५ ॥

१६८६ यूपव्रस्का उत ये यूपवाहा—श्चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति ।
ये चार्वते पचनं संभरं—न्त्युतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥ ६ ॥

१६८७ उप प्रागात् सुमन्मेऽधायि मन्म देवानामाशा उप वीतपृष्ठः ।
अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चकृमा सुबन्धुम् ॥ ७ ॥

१६८८ यद् वाजिनो दाम संदानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य ।
यद् वास्य प्रभृतमास्ये३ तृणं सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ८ ॥

१६८९ यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश यद् वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति ।
यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ९ ॥

अर्थ— [१६८६] (ये यूपव्रस्काः) जो यूपके लिए वृक्षको काटते हैं (उत) और (यूपवाहाः) जो यूपके लिए लकडीको ढोकर लाते हैं, (ये अश्वयूपाय चषालं तक्षति) जो घोडेको बांधनेके खम्भोंके अग्रभागको तेज करते हैं, (उत) और (ये अर्वते पचनं संभरन्ति) जो घोडेके लिए घास आदि अन्न लाते हैं, (तेषां अभिगूर्तिः नः इन्वतु) उनके उत्तम विचार हमें प्राप्त हों ॥ ६ ॥

[१६८७] (मे सुमत् मन्म अधायि) मैंने उत्तम बुद्धियोंसे बनाये गए स्तोत्रको धारण किया है, इसलिए (वीतपृष्ठः) सुन्दर पीठवाला यह घोडा (देवानां आशाः) देवताओंकी आशाओंको पूरा करनेके लिए (उप प्र अगात्) पास आवे । (एनं सुबन्धुं) इस उत्तम प्रकारसे बंधे हुए घोडेको (देवानां पुष्टे) देवोंके पोषणके लिए (चकृम) पुष्ट करते हैं । (विप्राः ऋषयः) ज्ञानी ऋषि भी (अनु मदन्ति) इसे हर्षित करें ॥ ७ ॥

[१६८८] (वाजिनः यत् संदानं दाम) इस बलशाली घोडेको जो पैरोंमें बांधनेवाली रस्सी है, (या शीर्षण्या रज्जुः) जो सिरमें बांधनेवाली रस्सी, (अस्य अर्वतः रशना) और इस घोडेके जो लगाम हैं, (वा) अथवा (अस्य आस्ये यत् प्रभृतं तृणं) इसके मुंहमें बहुत सारी जो घास है, हे अश्व ! (ते ता सर्वा) तेरे वे सभी पदार्थ (देवेषु अस्तु) देवोंके लिए समर्पित हो ॥ ८ ॥

[१६८९] (क्रविषः अश्वस्य) शत्रुओंपर आक्रमण करनेवाले यज्ञीय घोडेको (मक्षिका आश) मक्खी खाती हो, (वा) अथवा (स्वरौ स्वधितौ) शत्रुओंको सन्ताप देनेवाले तथा उत्तम-शक्तिको धारण करनेवाले इस घोडेमें (यत् रिप्तं अस्ति) जो मैल आदि लिपटा हुआ हो, (शमितुः हस्तयोः यत्) यज्ञ करनेवालेके हाथमें जो मैल हो, (नखेषु यत्) उसके नाखूनोंमें जो मैल हो, (ता सर्वा अपि) वे सब (देवेषु) देवोंके यज्ञमें (अस्तु) शुद्ध किए जाएं ॥ ९ ॥

भावार्थ— यज्ञीय अश्वको बांधनेके लिए जो स्तंभ तैयार किया जाता है, उसके लिए जो लकडी काटता है, जो उस लकडीको ढोकर यज्ञ स्थानतक लाता है और जो उस स्तम्भको उत्तम रीतिसे तैय्यार करता है, तथा जो उस अश्वके लिए उत्तम घास आदि लाता है, ऐसे श्रेष्ठ मनुष्योंके उत्तम विचार हमें प्राप्त हों ॥ ६ ॥

सुन्दर पीठवाला और अनेक तरहसे सजाया गया अश्वमेधका घोडा देवोंकी आशाओंको पूर्ण करनेवाला है अर्थात् यज्ञ में आकर देवगण हवियोंसे तृप्त होते हैं, इसलिए यह घोडा ही मानों उनकी आशाओंको तृप्त करता है । इस यज्ञीय पशु अश्वको सब तरहसे पुष्ट करना चाहिए ॥ ७ ॥

अश्वमेधके लिए चुना हुआ घोडा यज्ञयूपपर लाकर बांध दिए जाने तथा सभी संस्कारोंसे संस्कृत हो जानेपर साधारण अश्व न रहकर एक उत्कृष्ट देव बन जाता है, अतः उस समय उसे जो भी पदार्थ दिए जाते हैं, वे मानों देवको ही दिए जाते हैं, अतः उस यज्ञीय पशुको जो भी पदार्थ दिए जाएं, वे उत्तम ही हों ॥ ८ ॥

यज्ञका घोडा उत्तम और हृष्टपुष्ट हो । उसे हर प्रकारसे साफ रखा जाए, ताकि उसके शरीरपर मक्खियां न बैठें । यज्ञ करनेवालोंके हाथ और नाखून भी हर तरहसे साफ रहें । इस प्रकार हर तरहसे शुद्ध और पवित्र हाथोंसे ऋत्विग्गण यज्ञमें देवोंको हवि प्रदान करें ॥ ९ ॥

१६९० यद्वध्यमुदरस्यापवाति य आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति ।
सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तूत मेधं शृतपाकं पचन्तु ॥ १० ॥
१६९१ यत् ते गात्रादग्निना पच्यमानादभि शूलं निहतस्यावधावति ।
मा तद् भूम्यामा श्रिषन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु ॥ ११ ॥
१६९२ ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति ।
ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥ १२ ॥
१६९३ यन्नीक्षणं मांस्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि ।
ऊष्मण्यापिधाना चरूणामङ्काः सूनाः परि भूषन्त्यश्वम् ॥ १३ ॥

अर्थ— [१६९०] (क्रविषः उदरस्य) आक्रमणशील घोड़ेके पेटसे (यत् ऊवध्यं अपवाति) जो शौच बाहर गिरे और (आमस्य यः गन्धः अस्ति) उस अपक्व पदार्थका जो गंध फैले, (शमितारः तत् सुकृता कृण्वन्तु) यज्ञ करनेवाले उस सबको साफ करें, (उत) और (शृतपाकं मेधं पचन्तु) पके हुए यज्ञ पदार्थको और अच्छी तरह पकायें ॥ १० ॥

[१६९१] हे अश्व ! (निहतस्य ते) निरन्तर गति करनेवाले तेरे (अग्निना पच्यमानात् गात्रात्) क्रोधाग्निसे पकनेवाले शरीरसे निकला हुआ (यत् शूलं) जो शस्त्र (अवधावति) शत्रुकी तरफ दौड़ता है, (तत् भूम्यां मा आ श्रिषत्) वह भूमिपर न गिरे, (मा तृणेषु) घासोंमें न गिरे, अपितु (उशद्भ्यः देवेभ्यः रातं अस्तु) इच्छा करनेवाले दिव्य वीरोंको धन वह देनेवाला हो ॥ ११ ॥

[१६९२] (ये अर्वतः मांसभिक्षां उपासते) जो घोड़ेको मांसल बनानेके लिए उसकी सेवा करते हैं, (उत) और (ये इति आहुः) जो यह कहते हैं कि (ईं सुरभिः निर्हर) इस घोड़ेके लिए उत्तम गंधवाले अन्न ले आओ, और इस प्रकार (ये वाजिनं पक्वं परिपश्यन्ति) जो घोड़ेको हृष्टपुष्ट देखते हैं, (तेषां अभिगूर्तिः नः इन्वतु) उनकी उत्तम बुद्धि हमें प्राप्त हो ॥ १२ ॥

[१६९३] (मांस्पचन्याः उखायाः यत् नीक्षणं) फलोंके गूदेको पकानेवाले पात्रको देखनेका जो साधन और (यूष्णः आसेचनानि या पात्राणि) रसको परोसे जानेवाले जो पात्र हैं, (ऊष्मण्या अपिधाना) भापको रोके रखनेवाले ढक्कन (चरूणां अंकाः सूनाः) चरुओंको काटनेके साधन छुरी आदि (अश्वं परिभूषन्ति) घोड़ेको भूषित करते हैं ॥ १३ ॥

भावार्थ— यज्ञस्तूपमें बंधा हुआ यज्ञका पशु यज्ञस्थानमें शौचादि करके उस स्थानको गंदा करे तो यज्ञ करनेवाले उस स्थानको झाड़पोंछकर साफ रखें और यज्ञमें दी जानेवाली हविको अच्छी तरह पकायें। जहां पशु बंधा रहेगा, वहां गन्दगी और दुर्गन्धीका होना स्वाभाविक है। पर यज्ञ करनेवालोंको चाहिए कि वे उस स्थानको साफ करते हुए शुद्ध रखें ॥ १० ॥

वेगसे दौड़नेवाले उत्तम और हृष्टपुष्ट अश्वकी पीठपर बैठा हुआ वीर जब गुस्सेमें आकर शत्रुओंपर अपना शस्त्र फेंके, तो उसका वह शस्त्र भूमिपर अथवा घासपर गिरकर व्यर्थ न हो, अपितु वह शत्रुओंपर गिरकर उनका संहार करे और विजयकी इच्छा करनेवाले वीरोंको धन दो, अर्थात् वीरोंके हाथसे छूटे हुए शस्त्रास्त्र शत्रुओंका संहार करें और शत्रुओंका धन वीरोंको प्राप्त हो ॥ ११ ॥

जो उत्तम गंधसे युक्त घास आदि चारा देकर अश्वको हृष्टपुष्ट और मांसल बनाते हैं, उनकी उत्तम बुद्धि हमें प्राप्त हो अर्थात् पशुसेवा करनेकी उत्तम बुद्धि सभीको मिले, सभी पशुसेवा करें और उन्हें हृष्टपुष्ट बनावें ॥ १२ ॥

अश्वमेधके अवसर पर आनेवाले अतिथियोंको खिलानेके लिए शाकके गूदेको पकानेवाले बर्तन, रस आदि रखनेके लिए पात्र, ढक्कन तथा काटनेके लिए छुरी आदि साधन यज्ञस्थानमें होते हैं। ये सब साधन अश्वमेधके कारण ही एकत्रित किए जाते हैं, इसलिए मानों ये घोड़ेको ही भूषित करते हैं ॥ १३ ॥

१६९४ निक्रमणं निषदनं विवर्तनं यच्च पड्वीशमर्वतः ।
यच्च पपौ यच्च घासिं जघास सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ १४ ॥
१६९५ मा त्वाग्निर्ध्वनयीद् धूमगन्धि—र्मोखा भ्राजन्त्यभि विक्त जघ्रिः ।
इष्टं धीतमभिगूर्तं वषट्कृतं तं देवासः प्रति गृभ्णन्त्यश्वम् ॥ १५ ॥
१६९६ यदश्वाय वासं उपस्तृण—न्त्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मै ।
संदानमर्वन्तं पड्वीशं प्रिया देवेष्वा यामयन्ति ॥ १६ ॥
१६९७ यत् ते सादे महसा शूकृतस्य पार्ष्ण्या वा कशया वा तुतोद ।
स्रुचेव ता हविषो अध्वरेषु सर्वा ता ते ब्रह्मणा सूदयामि ॥ १७ ॥

अर्थ—[१६९४] (अश्वतः यत् निक्रमणं) यज्ञीय घोडेका चलना, (निषदनं) बैठना (विवर्तनं) तथा अन्य चेष्टायें करना, (च पड्वीशं) तथा पैरोंका बन्धन है, (यत् च पपौ) जो कुछ घोडेने पिया (यत् घासिं च जघास) जो कुछ आहार उसने खाया, हे अश्व ! (ते ता सर्वा) तेरी वे सब क्रियायें (देवेषु अस्तु) देवोंके लिए समर्पित हो ॥ १४ ॥

[१६९५] हे अश्व ! (धूमगन्धिः अग्निः) धुवेसे व्याप्त अग्नि (त्वा मा ध्वनयीत्) तुझसे शब्द न करवाये । (जघ्रिः भ्राजन्ती उखा) सुगंधसे भरी हुई तपती हुई थाली (मा अभिविक्त) तुझे भयभीत न करे । ऐसे (इष्टं धीतं अभिगूर्तं वषट्कृतं तं अश्वं) चाहनेयोग्य, सुन्दर, उद्यमी और संस्कारसे सम्पन्न उस घोडेको (देवासः प्रति गृभ्णन्ति) देवगण स्वीकार करते हैं ॥ १५ ॥

[१६९६] जो (अश्वाय) यज्ञीय अश्वके लिए (यत् अधीवासं) जो ओढनेके योग्य है, ऐसा (वासः उपस्तृणन्ति) कपडा उढाते हैं, जो (अस्मै) इसे (या हिरण्यानि) जो सोनेके अलंकार हैं, उन सजाते हैं, ये सब पदार्थ तथा (अर्वन्तं पड्वीशं संदानं) घोडेके पैरोंको बांधे जानेवाली रस्सी (प्रिया) ये सभी प्रिय साधन मनुष्यको देवेषु आ यामयन्ति) देवोंके पास पहुंचाते हैं ॥ १६ ॥

[१६९७] हे अश्व ! (यत्) जो (महसा शूकृतस्य) वेगसे दौडनेके कारण हांपनेवाले (ते सादे) तेरे बैठ जानेपर (पार्ष्ण्या वा कशया तुतोद) कीलसे अथवा चाबुकसे दुःखी किया हो, तो (अध्वरेषु) यज्ञोंमें (ते ता सर्वा) तेरे उन सभी दुःखोंको मैं (ब्रह्मणा सूदयामि) स्तोत्रोंसे उसी प्रकार दूर करता हूँ (हविषाः स्रुचा इव) जिस प्रकार हवियोंको स्रुवासे डाला जाता है ॥ १७ ॥

भावार्थ— यज्ञका अश्व एक देव है, अतः वह जो कुछ चेष्टायें करता है, वह एक देवकी चेष्टायें होती हैं । इसलिए उसे जो कुछ पीनेके लिए या खानेके लिए दिया जाता है, वह मानो एक देवके लिए ही समर्पित किया जाता है ॥ १४ ॥

अश्वमेधके समय यज्ञ कुण्डमें अग्नि जलती रहती है और घोडा पासमें ही बंधा हुआ होता है । वह घोडा ऐसी धुवेंसे युक्त अग्निको देखकर शब्द न करे । यज्ञके मध्यमें घोडेके शब्द करने पर ऋत्विजोंके लिए प्रायश्चित्तका विधान है । तपे हुए बर्तनोंको देखकर घोडा न डरे । जो ऐसा उत्तम, निर्भीक, परिश्रमी और उत्तम संस्कारी घोडा होता है, उसे ही देव गण अपनाते हैं अर्थात् अश्वमेधके लिए ऐसा ही उत्तम घोडा चुनना चाहिए ॥ १५ ॥

जो यज्ञीय घोडेको वस्त्रोंसे सुसज्जित करता है, या सोनेके अलंकारोंसे उसे सजाता है अथवा उसके लिए रस्सी आदि अन्य पदार्थ देता है, वह मानों ये सभी पदार्थ देवको ही देता है ॥ १६ ॥

यज्ञीय अश्वको कभी कष्ट नहीं देना चाहिए, उसे कभी चाबुक या कीलसे मारना नहीं चाहिए । वह देवता है अतः देवताको कष्ट देना योग्य नहीं ॥ १७ ॥

१६९८ चतुस्त्रिंशद् वाजिनो देवबन्धो—र्वङ्क्रीरश्वस्य स्वधितिः समेति ।
अच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोतु परुष्परुरनुघुष्या वि शस्त ॥ १८ ॥
१६९९ एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता द्वा यन्तारा भवतस्तथर्तुः ।
या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ताता पिण्डानां प्र जुहोम्यग्नौ ॥ १९ ॥
१७०० मा त्वा तपत् प्रिय आत्मापियन्तं मा स्वधितिस्तन्व१ आ तिष्ठिपत् ते ।
मा ते गृध्नुरविशस्तातिहाय छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः ॥ २० ॥
१७०१ न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ इदेषि पथिभिः सुगेभिः ।
हरी ते युञ्जा पृषती अभूता—मुपास्थाद् वाजी धुरि रासभस्य ॥ २१ ॥

अर्थ—[१६९८] (देवबन्धोः वाजिनः) देवोंको प्रिय घोडेके (चतुस्त्रिंशत् वङ्क्रिकः) दोनों तरफ चौंतीस हड्डियां होती हैं, ऐसे (अश्वस्य स्वधितिः सं एति) घोडेके शस्त्रास्त्र शत्रुओंकी तरफ जाते हैं। हे मनुष्यो ! (गात्रा अच्छिद्रा वयुना कृणोत) घोडेके अंग प्रत्यंगोंको दोषरहित और दर्शनीय बनाओ। ताकि (अनुघुष्य) हिनहिनाते हुए वह (परुः परुः विशस्त) शत्रुओंके अंगोंको काटे ॥ १८ ॥

[१६९९] (ऋतुः अश्वस्य त्वष्टुः) शीघ्र गतिसे सर्वत्र संचार करनेवाले घोडेको (एकः विशस्ता) एक ही मारनेवाला होता है (तथा द्वा यन्तारा भवतः) तथा दो उसे वशमें करनेवाले होते हैं। हे अश्व ! (ते गात्राणां) तेरे अंग प्रत्यंगोंके मध्यमेंसे (या ऋतुथा कृणोमि) जिन अंगोंको ऋतुके अनुसार पुष्ट करता हूँ (पिण्डानां) शरीरमेंसे (ताता अग्नौ जुहोमि) उन उन अंगोंको अग्निमेंसे निकालता हूँ ॥ १९ ॥

[१७००] हे अश्व ! (अपियन्तं त्वा) देवोंकी तरफ जानेवाले तुझे (प्रियः आत्मा) तेरी प्रिय आत्मा (मा तपत्) दुःख न दे। (ते तन्वः) तेरे शरीर पर (स्वधितिः मा अतिष्ठिपत्) शस्त्र न बैठे। (गृध्नुः अविशस्ता) लालची और दुष्ट मनुष्य (अतिहाय) तेरे कष्टकी चिन्ता न करते हुए (मिथू) व्यर्थ ही (असिना) अपने शस्त्रसे (ते गात्राणि छिद्रा मा कः) तेरे शरीरमें छेद न करे ॥ २० ॥

[१७०१] हे वीर ! (एतत् उ) यह निश्चय है कि तू (न म्रियसे) मरेगा नहीं, (न रिष्यसि) तू हिंसित भी नहीं होगा, अपितु (सुगेभिः पथिभिः देवान् इत् एषि) उत्तमता और सुखपूर्वक जानेयोग्य मार्गोंसे तू देवोंके पास जाएगा। (ते हरी युंजा) तेरे रथमें दो घोडे जोते गए हैं। (पृषती अभूतां) वे घोडे हिरणके समान वेगवान् हैं। (रासभस्य धुरि वाजी अस्थात्) गर्जना करनेवाले तेरे रथकी धुरामें बलवान् अश्व विद्यमान है ॥ २१ ॥

भावार्थ— घोडेके दोनों बगलोंमें चौंतीस हड्डियां होती हैं। यहां प्राणिविज्ञान वेदमंत्र बताता है। इसके सभी अंग दोषरहित और देखने योग्य हों। वह शब्द करते हुए शत्रुओं पर आक्रमण करे और उस पर बैठे हुए वीर अपने शस्त्रास्त्रोंसे शत्रुओंके मर्मों पर प्रहार करके उन्हें काटें ॥ १८ ॥

जब वेगवान् घोडा रथमें जोडा जाता है, तब एक सारथि ही उसे मारता है और दो लगाम उसे वशमें करनेवाले होते हैं। जब ऋतुके अनुसार घोडेको खिला पिलाकर पुष्ट किया जाता है, तब उसे संग्रामकी अग्निमें तपाकर परिपक्व करना चाहिए, अर्थात् उसे संग्राममें भेजकर युद्धकी कला और नीतियोंमें निपुण बनाना चाहिए ॥ १९ ॥

मांसके लालचसे कोई भी दुष्ट मनुष्य घोडेको न मारे, न काटे, उस पर कोई शस्त्र प्रहार न करे और इस प्रकार अश्वकी प्रिय आत्माको उससे वियुक्त करके दुःख न दे ॥ २० ॥

हे वीर ! तेरे रथमें हिरणके समान वेगवान् और अत्यन्त बलवान् दो घोडे जोते गए हैं, और तू स्वयं भी गर्जना करनेवाला है। इसलिए तू डर मत, न तू मरेगा और न शत्रुओंसे मारा ही जाएगा। अतः तू निर्भीक होकर युद्धमें जा। इस प्रकार वीरता दिखाकर तू देवोंके पास जाने योग्य हो सकेगा, अथवा यदि तू युद्धमें मर भी जाएगा, तो भी तू स्वर्गको प्राप्त होकर देवोंके पास जा सकेगा ॥ २१ ॥

१७०२ सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुंसः पुत्राँ उत विश्वापुषं रयिम् ।
अनागास्त्वं नो अदितिः कृणोतु क्षत्रं नो अश्वो वनतां हविष्मान् ॥ २२ ॥

[१६३]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- अश्वः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१७०३ यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन् त्समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन् ॥ १ ॥

१७०४ यमेन दत्तं त्रित एनमायुन गिन्द्र एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ।
गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात् सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ॥ २ ॥

अर्थ— [१७०२] (वाजी) बलवान् वह घोडा (नः पुंसः) हम मनुष्योंको (पुत्रान्) पुत्र (उत) और (सुगव्यं सु अश्व्यं) उत्तम गाय और घोडोंसे युक्त (विश्वापुषं रयिं) सबका पोषण करनेवाला धन प्रदान करे । (अदितिः) न मारे जाने योग्य यह घोडा (नः अनागास्त्वं कृणोतु) हमें पापसे रहित करे । (हविष्मान् अश्वः) तेजस्वी घोडा (नः क्षत्रं वनतां) हमें क्षात्रशक्तिसे संयुक्त करे ॥ २२ ॥

[१६३]

[१७०३] हे (अर्वन्) अश्व ! (समुद्रात् प्रथमं जायमानः) समुद्रसे सर्वप्रथम उत्पन्न होता हुआ तथा (उत वा) अथवा (पुरीषात् उद्यन्) पानीमेंसे ऊपर आता हुआ तू (यत् अक्रन्दः) जो गरजा, (ते महि जातं उपस्तुत्यं) तेरा वह महान् जन्म प्रशंसनीय है । तेरे (पक्षा) दोनों पक्ष (श्येनस्य) बाजके समान हैं और (बाहू हरिणस्य) बाहुएं हिरणके समान हैं ॥ १ ॥

[१७०४] (यमेन दत्तं एनं) यमके द्वारा दिए गए इस अश्वको (त्रितः अयुनक्) त्रितने अपने रथमें जोडा, (प्रथमः इन्द्रः एनं अधि अतिष्ठत्) मुख्य और श्रेष्ठ इन्द्रने इसपर अधिकार किया । (गन्धर्वः अस्य रशनां अगृभ्णात्) गन्धर्वने इसके लगाम पकडे और (वसवः) वसुओंने (सूरात्) सूर्यसे (अश्वं निरतष्ट) इस घोडेको उत्तम रीतिसे बनाया ॥ २ ॥

भावार्थ— यह यज्ञीय बलवान् घोडा हमें हर तरहके धन, पुत्र तथा गाय, घोडे आदि पशु प्रदान करे । हमें प्राप्त धनसे सभीका पोषण हो । यह घोडा मारे जाने योग्य नहीं है । हम कभी ऐसा पाप न करें । यह तेजस्वी घोडा हमें क्षात्र शक्तिसे युक्त करे ॥ २२ ॥

सर्वत्र व्यापनेवाला यह सूर्य द्युलोकसे वा जलके मध्यमेंसे उदय होता हुआ प्रकाशित होता है, इसके पंख और बाहु अर्थात् किरणें बाजकी तरह शक्तिशाली और हिरणकी तरह वेगवान् हैं ॥ १ ॥

सर्व नियन्ताके द्वारा उत्पन्न किए गए इन किरणोंको तीनों लोकोंमें गमन करनेवाले सूर्यने अपने रथमें जोडा अर्थात् वह किरणोंसे युक्त हुआ । उसकी शक्ति सबसे प्रथम बिजलीने प्राप्त की, तब बिजलीकी शक्तिको जल धारण करनेवाले बादलोंने पाई, बादल ही बिजलीके नियामक हैं । पानी बरसनेके बाद बादलोंके छंट जानेपर किरणें फिर सूर्यको प्रकट करती हैं ॥ २ ॥

१७०५ असि॑ यमो अस्यादित्यो अर्व॒न्नसि॑ त्रितो गुह्येन व्र॒तेन॑ ।
असि॒ सोमे॑न स॒मया॒ विपृ॑क्त आहुस्ते॒ त्रीणि॑ दि॒वि ब॒न्धना॑नि ॥ ३ ॥
१७०६ त्रीणि॑ त आहुर्दि॒वि ब॒न्धना॑नि॒ त्रीण्य॒प्सु त्रीण्य॒न्तः स॑मु॒द्रे ।
उ॒तेव॑ मे वरुणश्छन्त्स्यर्व॒न् यत्रा॑ त आहुः प॒रमं ज॒नित्र॑म् ॥ ४ ॥
१७०७ इ॒मा तं॑ वाजिन्नव॒मार्ज॑नानी॒मा शफा॑नां सनितु॒र्निधा॑ना ।
अत्रा॑ ते भ॒द्रा र॑श॒ना अ॑पश्य॒मृत॑स्य॒ या अ॒भिर॑क्षन्ति गो॒पाः ॥ ५ ॥
१७०८ आ॒त्मानं॑ ते॒ मन॑सा॒रादजा॑नाम॒वो दि॒वा प॒तय॑न्तं पत॒ङ्गम् ।
शिरो॑ अपश्यं प॒थिभिः॑ सु॒गेभि॒रेरे॑णुभि॒र्जेह॑मानं पत॒त्रि ॥ ६ ॥

अर्थ—[१७०५] हे (अर्वन्) गतिशील अश्व ! तू (यमः असि) सबका नियन्ता है, (आदित्यः असि) तू सब रसोंका आदान करनेवाला है, (गुह्येन व्रतेन त्रितः असि) तू अपने गोपनीय कर्मोंसे त्रित है। तू (सोमेन समया) सोमके साथ (विपृक्तः असि) अच्छी तरह संयुक्त है, (ते दिवि त्रीणि बन्धनानि आहुः) तेरे द्युलोकमें तीन बंधन हैं, ऐसा कहते हैं ॥ ३ ॥

[१७०६] हे (अर्वन्) अश्व ! (दिवि ते त्रीणि बंधनानि आहुः) द्युलोकमें तेरे तीन बंधन हैं, (अप्सु त्रीणि) जलोंमें तीन बंधन हैं, (समुद्रे अन्तः त्रीणि) अन्तरिक्षमें तीन बन्धन हैं (यत्र ते परमं जनित्रं आहुः) जहाँ तेरा उत्तम जन्म हुआ है, ऐसा कहते हैं, उसे (वरुणः) वरणीय तू (मे छन्त्सि) मुझे कह ॥ ४ ॥

[१७०७] हे (वाजिन्) यज्ञीय अश्व ! (ते इमा अवमार्जनानि) तेरे ये शरीरशुद्धिके स्थान हैं, (सनितुः) यज्ञसे सम्बन्ध रखनेवाले तेरे ये (शफानां निधाना) खुरोंके रखनेके स्थान हैं। (या गोपाः ऋतस्य अभि रक्षन्ति) जो रक्षा करनेवाले यज्ञकी रक्षा करते हैं, ऐसे (ते भद्राः रशनाः) तेरे कल्याणकारी लगाम मैंने (अत्र अपश्यं) यहां देखे हैं ॥ ५ ॥

[१७०८] हे अश्व ! (पतयन्तं पतंगं) उडते हुए पक्षीकी तरह (दिवा अवः) द्युलोकसे नीचे आनेवाले (ते आत्मानं) तेरी आत्माको (आरात्) दूरसे ही (मनसा अजानां) प्रसन्न मनसे मैंने जान लिया है। (पतत्रि) पक्षीके समान (अरेणुभिः सुगेभिः पथिभिः) पापरहित और सुखसे जानेयोग्य मार्गोंसे (जेहमानं ते शिरः अपश्यं) जानेवाले तेरे सिरको मैंने देखा है ॥ ६ ॥

भावार्थ— यह गतिशील सूर्य सब जगत्का नियन्ता है अर्थात् सारे संसारको यह सूर्य चलाता है, सब रसोंको ग्रहण करनेवाला होनेसे वह आदित्य है, अपनी किरणोंसे वह पृथ्वीपरके सब रसोंको ग्रहण करता है। वह अपने कर्मोंसे तीनों लोकोंमें संचार करता है। वह चन्द्रमाके साथ अच्छी तरह संयुक्त होता है, चन्द्रमामें सूर्यकी किरणें ही प्रकाशित होती हैं। द्युलोकमें इस सूर्यके तीन बन्धन हैं, वसु, आदित्य और द्यु ये तीन उसके बन्धन हैं ॥ ३ ॥

वसु, आदित्य और द्यु ये तीन बंधन द्युलोकमें इस सूर्यके हैं, पृथ्वीपर अग्नि, स्थान और बीज ये तीन बंधन हैं, अन्तरिक्षमें मेघ, विद्युत् और वायु ये तीन बंधन हैं। इन तीन स्थलोंमें इस सूर्यका उत्तम जन्म है, अर्थात् यह सर्वत्र प्रकाशित होता है ॥ ४ ॥

यज्ञीय पशुके शरीरशुद्धिके स्थान तथा उसके रहनेके स्थान सभी साफ और पवित्र हों। वह यज्ञकी रक्षा करता है ॥ ५ ॥

जिस तरह आकाशमें पक्षी उडते हैं, उसी तरह द्युलोकसे नीचे आती हुई सूर्यकी किरणोंको दूरसे ही देखकर मनुष्य बहुत प्रसन्न होता है। उस सूर्यकी किरणें पापरहित मार्गोंसे इस पृथ्वीपर आती हैं, अर्थात् जहां जहां सूर्यकी किरणें जातीं हैं, वहांका स्थान शुद्ध हो जाता है ॥ ६ ॥

१७०९ अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिष आ पदे गोः ।
यदा ते मर्तो अनु भोगमान॒ळादिद् ग्रसिष्ठ ओषधीरजीगः ॥ ७ ॥
१७१० अनु त्वा रथो अनु मर्यो अर्व॒—ननु गावोऽनु भगः कनीनाम् ।
अनु व्रातासस्तव सख्यमीयु॒—रनु देवा ममिरे वीर्यं ते ॥ ८ ॥
१७११ हिरण्यशृङ्गोऽयो अस्य पादा मनोजव॒ा अव॑र इन्द्र आसीत् ।
देवा इदस्य हविरद्यमाय॒न् यो अर्वन्तं प्रथमो अ॒ध्यतिष्ठत् ॥ ९ ॥
१७१२ ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः सं शूर॑णासो दि॒व्यासो अत्याः ।
हंसा इव श्रेणिशो यतन्ते यदाक्षिषुर्दिव्यमज्ममश्वाः ॥ १० ॥

अर्थ— [१७०९] (गोः पदे) पृथ्वीके स्थानमें (इषः जिगीषमाणं) अन्नको खानेकी इच्छा करनेवाले (ते उत्तमं रूपं अत्र अपश्यं) तेरे उत्तम रूपको मैंने देखा है। हे अश्व ! (यदा) जब (ग्रसिष्ठः ओषधीः अजीगः) भक्षण करनेवाले तूने औषधियोंको खाया, (आत् इत्) उसके बाद ही (ते मर्तः) तेरे उपासक मनुष्यने (भोगं अनु आनट्) ऐश्वर्यादि भोगोंको प्राप्त किया ॥ ७ ॥

[१७१०] हे (अर्वन्) गतिशील अश्व ! (त्वा अनु रथः) तेरे पीछे रथ चलता है, (मर्यः अनु) मनुष्य तेरे पीछे चलता है, (गावः अनु) गायें तेरे पीछे चलती हैं, (कनीनां भगः अनु) कन्याओंका सौभाग्य भी तेरे पीछे चलता है, (व्रातासः अनु तव सख्यं ईयुः) व्रतशील मनुष्य भी तेरे पीछे चलते हुए तेरी मित्रताकी कामना करते हैं (देवाः अनु) देवगण भी तेरे पीछे चलते हुए (ते वीर्यं ममिरे) तेरी शक्तिका मापन करते हैं ॥ ८ ॥

[१७११] यह घोडा (हिरण्यशृंगः) सोनेके कानोंवाला है, (अस्य पादाः अयः) इसके पैर लोहेके समान दृढ हैं, (यः अर्वन्तं प्रथमः अध्यतिष्ठत्) जिस घोडेपर सर्वप्रथम चढा था, वह (मनोजवाः इन्द्रः अवरः आसीत्) मनसे भी वेगवान् इन्द्र भी इस घोडेके सामने नीचा हो गया, (देवाः इत्) देवगण भी (अस्य हविरद्यं) इसकी हवि खानेके लिए (आयन्) आते हैं ॥ ९ ॥

[१७१२] (ईर्मान्तासः) पुष्टजघनभागवाले, (सिलिकमध्यमासः) तथा पतली कमरवाले (शूरणासः दिव्यासः अत्याः अश्वाः) चलनेमें तेज, उत्तम गुणवाले, हमेशा गति करनेवाले घोडे, (यत्) जब (दिव्यं अज्मं) उत्तम मार्गपर (आक्षिपुः) चलते हैं, तब (हंसाः इव) हंसोंके समान (श्रेणिशः यतन्ते) एक पंक्तिमें रहकर चलते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ— पृथ्वीमें अन्न खानेकी इच्छा करनेवाले इस यज्ञीय पशुके उत्तम रूपको देखकर सभी खुश होते हैं। जब उपासक मनुष्यके द्वारा दिए गए उत्तम उत्तम वनस्पतियोंको यह घोडा खुश होकर खाता है, तब उसका उपासक उसकी कृपासे सभी ऐश्वर्यों और भोगोंको प्राप्त करता है ॥ ७ ॥

यज्ञके पश्चात् जब अश्वमेधका घोडा छोडा जाता है और वह नगरके बाहर जाने लगता है, तब उसकी रक्षाके लिए रथ और सैनिक पीछे चलते हैं, उसकी और राजाकी मंगल कामना करतीं हुई सुवासिनी कन्यायें उसके पीछे चलती हैं। शकुनको प्रकट करनेवाली गायें भी उसके पीछे चलती हैं और वेदज्ञ विद्वान्‌गण स्वस्ययन आदि मङ्गलस्तोत्रोंका पाठ करते हुए उसकी शक्ति बढाते हुए उसके पीछे पीछे चलते हैं ॥ ८ ॥

इस यज्ञीय घोडेके कान सोनेके आभूषणोंसे सजाये जाते हैं और पैरोंमें लोहेकी नाल भी लगाई जाती है, ताकि सर्वत्र संचार करनेवाले इस घोडेको चलने फिरनेमें कष्ट न हों। जब यह घोडा यज्ञ आदिसे सुसंस्कृत हो जाता है, तब इसके तेजके सामने इन्द्र भी फीका हो जाता है अर्थात् संस्कारके कारण इस घोडेका तेज बहुत बढ जाता है। तब सभी देव इस घोडेको दिए जानेवाले हविकी कामना करते हैं ॥ ९ ॥

घोडे वे अच्छे होते हैं कि जिनकी जांघे या पीछेका भाग पुष्ट और बीचका भाग पतला हो। ऐसे घोडे चलनेमें तेज और उत्तम गुणवाले होते हैं। ऐसे घोडे जब मार्गपर एक कतारमें दौडते हैं, तब वे ऐसे सुन्दर प्रतीत होते हैं, जिस प्रकार आकाशमें उडती हुई हंसोंकी श्रेणियां ॥ १० ॥

१७१३ तव॒ शरीरं॑ पतयिष्ण्वर्वन् तव॑ चि॒त्तं वात॑ इव॒ ध्रजी॑मान् ।
तव॒ शृङ्गा॑णि॒ विष्ठि॑ता पुरु॒त्रा—र॑ण्येषु॒ जर्भु॑राणा चरन्ति ॥ ११ ॥

१७१४ उप॒ प्रागा॒च्छस॑नं॒ वाज्यर्वा॑ देव॒द्रीचा॒ मन॑सा॒ दीध्या॑नः ।
अज॑: पु॒रो नी॑यते॒ नाभि॑र॒स्या—नु॑ प॒श्चात् क॒वयो॑ यन्ति रे॒भाः ॥ १२ ॥

१७१५ उप॒ प्रागा॑त् पर॒मं यत् स॒धस्थ॒—मर्वा॑ अ॒च्छा पि॒तर॑ मा॒तर॑ च ।
अ॒द्या दे॒वाञ्जु॒ष्टत॑मो॒ हि ग॒म्या अथा॑ शास्ते दा॒शुषे॒ वार्या॑णि ॥ १३ ॥

अर्थ—[१७१३] हे (अर्वन्) अश्व ! (तव शरीरं पतयिष्णु) तेरा शरीर उडनेवाला है, (तव चित्तं वातः इव ध्रजीमान्) तेरा मन वायुके समान वेगवान् है। (तव शृंगाणि पुरुत्रा विष्ठिता) तेरे सींग अर्थात् अयाल बहुत प्रकारसे रहते हैं, और (जर्भुराणा अरण्येषु चरन्ति) मनोहर वे अयाल जंगलोंमें विचरते हैं ॥ ११ ॥

[१७१४] (वाजी अर्वा) बलवान् घोडा (देवद्रीचा मनसा दीध्यानाः) अपने दिव्य मनसे ध्यान करता हुआ (शसनं उप प्र अगात्) शत्रुओंको काटनेके लिए आगे चलता है। (नाभिः अजः पुरः नीयते) शक्तियोंका केन्द्र यह नेता—अश्व आगे ले जाया जाता है, (अस्य अनु पश्चात्) इसके पीछे पीछे (रेभाः कवयः यन्ति) स्तुति करनेवाले ज्ञानी जन जाते हैं ॥ १२ ॥

[१७१५] (यत् परमं सधस्थं) जो सर्वोत्कृष्ट स्थान है, वहां (अर्वान्) यह घोडा (मातरं पितरं अच्छा उप प्रागात्) माता पिताके पास सीधा जाता है। हे अश्व! तू (अद्य) आज (जुष्टतमः) अत्यन्त प्रसन्न होकर (देवान् गम्याः)देवोंके पास जा (अथ) और (शास्ते दाशुषे वार्याणि) स्तुति करनेवाला तथा दानशीलके लिए वरणीय धन प्राप्त हों ॥ १३ ॥

भावार्थ— इस सूर्यका प्रकाश द्युलोकसे उडकर इस पृथ्वीतक आता है, इसकी गति वायुसे भी तेज है। इसकी किरणें अनेक रंगोंवाली हैं और वे सब अन्धकारोंमें विचरती हैं। घोडा भी बहुत ऊंची कुदान मारनेवाला है, इसका मन हमेशा प्रसन्न रहकर वेगवान् हो। उसके अयाल सुन्दर हों, ऐसे सुन्दर अयालोंवाला घोडा सर्वत्र विचरता रहे ॥ ११ ॥

उत्तम गुणोंसे युक्त बलवान् घोडा हमेशा अपने स्वामीके हितका ध्यान करता हुआ शत्रुओंके विनाशके लिए संग्राममें आता है। ऐसा घोडा संग्राममें लडता भिडता हुआ भी सदा अपने स्वामीके हितका ही ध्यान रखता है। ऐसा लोगोंको आगे ले जानेवाला घोडा आगे आगे जाता है और उसके पीछे पीछे ज्ञानी जन स्तोत्र गाते हुए चलते हैं ॥ १२ ॥

यह घोडा इतना वेगवान् है कि यह मानों अपनी गतिसे द्युलोक पर चढ जाना चाहता है। अर्थात् ऐसा उत्तम और श्रेष्ठ घोडा हो, जिसके मनमें बहुत उत्साह हो। वह प्रसन्न होकर तेजस्वी मनुष्योंकी हरतरहसे सहायता करे और उन्हें धनादि प्रदान करे ॥ १३ ॥

[१६४]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- १-४१ विश्वे देवाः; ४२ आद्यर्धर्चस्य वाक्, द्वितीयस्य आपः; ४३ आद्यर्धर्चस्य शकधूमः, द्वितीयस्य सोमः; ४४ केशिनः [अग्निः सूर्यो वायुश्च] ४५ वाक्; ४६-४७ सूर्यः; ४८ संवत्सरकालचक्रम्; ४९ सरस्वती; ५० साध्याः; ५१ सूर्यः; पर्जन्याग्नयो वा; ५२ सरस्वान्, सूर्यो वा । छन्दः- त्रिष्टुप्; १२, १५, २३, २९, ३६, ४१ जगती; ४२ प्रस्तारपंक्तिः; ५१ अनुष्टुप् ।)

१७१६ अस्य वामस्य पलितस्य होतु—स्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः ।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्या—आपश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम् ॥ १ ॥

१७१७ सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्र—मेको अश्वो वहति सप्तनामा ।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ॥ २ ॥

१७१८ इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः ।
सप्त स्वसारो अभि सं नवन्ते यत्र गवां निहिता सप्त नाम ॥ ३ ॥

---

[१६४]

अर्थ— [१७१६] (अस्य वामस्य पलितस्य होतुः) इस सुन्दर और पालन करनेवाले तथा सब रसोंका हरण करनेवाले सूर्यका (मध्यमः भ्राता) मझला भाई (अश्नः अस्ति) सर्वत्र व्याप्त है। (अस्य तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठः) इसका तीसरा भाई तेजस्वी पीठवाला या घृतसे युक्त पीठवाला है। (अत्र) यहां मैंने (सप्तपुत्रं विश्पतिं अपश्यं) सात पुत्रोंसे युक्त प्रजाके पालन करनेवालेको देखा है ॥ १ ॥

[१७१७] (एकं चक्रं रथं सप्त युजंति) एक चक्रवाले रथमें सात घोडे जुडे हुए हैं, (सप्तनामा एकः अश्वः वहति) सात नामोंवाला एक ही घोडा इस रथको खींचता है। (त्रिनाभि चक्रं) इस रथका तीन नाभियोंवाला चक्र (अजरं अनर्वं) अजर और अशिथिल है, (यत्र इमा विश्वा भुवनानि तस्थुः) जिसमें ये सारे भुवन स्थित हैं ॥२॥

[१७१८] (ये सप्त इमं रथं अधि तस्थुः) जो सात किरणें इस रथपर आश्रित होकर बैठी हैं, (सप्तचक्रं) सातचक्रवाले इस कालरूपी सूर्यको (सप्त अश्वाः वहन्ति) सात घोडे ढोते हैं। (यत्र गवां सप्तनाम निहिता) जहां वाणीके सात नाम छिपे हुए हैं, ऐसी (सप्त स्वसारः अभि सं नवन्ते) सात बहिनें इस सूर्यकी चारों ओरसे स्तुति करती हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— सूर्य, वायु और अग्नि ये तीन भाई हैं। द्युलोकस्थ सूर्य ज्येष्ठ, अन्तरिक्षस्थ वायु मध्यम और पृथिवीस्थ अग्नि कनिष्ठ है। द्यु और पृथिवी इन तीनोंके पिता माता हैं। इनमें ज्येष्ठ भाई सूर्य सात रंगकी किरणोंसे युक्त होनेके कारण सात पुत्रोंवाला है। वह सब प्राणिमात्रका पालक होनेसे विश्पति है। यदि सूर्य न हो तो जगत्का नाश हो जाए। उसका मझला भाई वायु सर्वत्र व्याप्त है। वायुसे रहित कोई भी स्थान नहीं है। तथा सूर्यका तीसरा भाई अग्नि तेजस्वी पीठवाला है, उसकी पीठरूपी ज्वालायें अत्यधिक तेजस्वी हैं अथवा वह घीसे युक्त पीठवाला है, यज्ञमें अग्निकी ज्वालाओंमें घीकी आहुतियां दी जाती हैं, इसलिए उसे घृतपृष्ठ कहा गया है ॥ १ ॥

आदित्यमण्डलरूपी गतिशील रथका सूर्यरूपी एक ही चक्र है। उस रथमें सात रंगकी किरणरूपी सात घोडे जुते हुए हैं, जो उस सूर्यको सब जगह ले जाते हैं। यद्यपि किरण एक ही है, पर रंगोंके विभिन्न होनेसे वे सात किरणें अलग अलग हो जाती हैं, अतः किरणरूपी एक ही घोडेके रंगोंके कारण सात नाम हो जाते हैं। सूर्यका यह कालरूपी रथ तीन नाभियोंवाला है, उस कालकी शरद, वर्षा और ग्रीष्म ये तीन नाभियां हैं, और यह कालरूपी रथ हमेशा चलता रहता है, इसकी गति कभी बंद या धीमी नहीं होती। इसी कालके अन्तर्गत सारे लोक रहते हैं। इस कालके प्रभावसे मुक्त कोई भी नहीं है ॥२॥

इस सूर्यमें सातरंगकी किरणें आश्रित रहती हैं। यह सूर्य कालका निर्माता होनेसे स्वयं भी कालरूप है। ऐसे इस कालरूपी सूर्यके अयन, ऋतु, मास, पक्ष, दिन, रात और मुहूर्त ये सात चक्र हैं, जिन्हें सात किरणरूपी सात घोडे खींचते हैं। इस सूर्यके प्रभावसे कोई भी मुक्त नहीं है। इसका प्रभाव अमित है। इसीलिए सात नाम अर्थात् सात स्वरों और सात बहिनों अर्थात सात छन्दोंवाली वेदवाणी इसी सूर्यकी स्तुति करती है ॥ ३ ॥

१७१९ को ददर्श प्रथमं जायमान—मस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति ।
भूम्या असुरसृगात्मा क्व स्वित् को विद्वांसमुप गात् प्रष्टुमेतत् ॥ ४ ॥
१७२० पाकः पृच्छामि मनसाविजानन् देवानामेना निहिता पदानि ।
वत्से बष्कयेऽधि सप्त तन्तून् वि तन्विरे कवय ओतवा उ ॥ ५ ॥
१७२१ अचिकित्वाञ्चिकितुषश्चिदत्र कवीन् पृच्छामि विद्मने न विद्वान् ।
वि यस्तस्तम्भ षळिमा रजांस्यजस्य रूपे किमपि स्विदेकम् ॥ ६ ॥

अर्थ— [१७१९] (यत् अनस्था अस्थन्वन्तं बिभर्ति) जो हड्डीरहित होते हुए भी हड्डियोंसे युक्त प्राणियोंको धारण करता है, (जायमानं प्रथमं कः ददर्श) उसे उत्पन्न होते हुए सर्वप्रथम किसने देखा ? (भूम्याः असुः असृक् आत्मा क्व स्वित्) भूमिके प्राण, रक्त और आत्मा ये सब कहां थे ? (एतत् प्रष्टुं) यह पूछनेके लिए (कः विद्वांसं उप गात्) कौन विद्वान्के पास गया ? ॥ ४ ॥

[१७२०] (पाकः) अपरिपक्व बुद्धिवाला मैं (अविजानन्) कुछ न जानता हुआ (देवानां निहिता एना पदानि) देवोंके गुप्त इन स्थानोंको (मनसा पृच्छामि) श्रद्धापूर्वक पूछता हूँ । (बष्कये वत्से) देखनेके लिए निवास करनेके लिए तथा (ओतवै) विस्तार करनेके लिए (कवयः) ज्ञानी जन (सप्त तन्तून् वितन्विरे) सात धागोंको बुनते हैं ॥ ५ ॥

[१७२१] (यः इमा षट् रजांसि तस्तम्भ) जिसने छहों लोक थाम रखे हैं, (अजस्य रूपे) उस अजन्मा प्रजापतिके रूपमें (एकं किं स्वित्) वह एक तत्त्व किस प्रकारका है, यह बात (अचिकित्वान्) न जाननेवाला मैं (चिकितुषः कवयः) जाननेवाले ज्ञानियोंसे (विद्मने) जाननेके लिए (पृच्छामि) पूछना चाहता हूँ, क्योंकि (न विद्वान्) मैं यह गुप्त विद्या नहीं जानता ॥ ६ ॥

भावार्थ— सृष्टिके पूर्वावस्थाका वर्णन है । जिस समय कुछ भी पदार्थ अस्तित्वमें नहीं था, उस समय भी एक तत्त्व ऐसा विद्यमान था, जो सब सृष्टिका निरीक्षण कर रहा था और उत्पन्न होते हुए पदार्थोंको देख रहा था, वह तत्त्व कः अर्थात् प्रजापति था । आज भी वह प्रजापति स्वयं हड्डीसे रहित अर्थात् शरीरसे रहित होते हुए भी शरीरसे युक्त प्राणियोंका पालनपोषण करता है । सृष्टिके पूर्व इस भूमिके लिए प्राणरूप वायु, रक्तरूप जल तथा आत्मारूप सूर्य अर्थात् भूमि, वायु, जल और सूर्य ये कुछ भी पदार्थ नहीं थे । वायु पृथ्वीका प्राण, जल रक्त और सूर्य आत्मा है । उस समय जब ये कुछ भी पदार्थ नहीं थे, तो इनके बारेमें कौन किससे पूछने जाता ? उस समय तो केवल प्रजापति था, जो सब कुछ देख रहा था ॥ ४ ॥

इस विश्वमें अनेक देवता कार्य करते हैं । वे अनेक लोकोंमें रहते हैं, पर उनका मूलस्थान अर्थात् जहांसे वे उत्पन्न हुए, रहस्यमय या गुप्त है । यह बात एक अपरिपक्व बुद्धिवाला श्रद्धालु जिज्ञासु जानना चाहता है । ये ज्ञानयुक्त देवगण उत्पन्न होकर मन, प्राण, पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश (पंचभूत) इन सात तत्त्वरूपी सात सूतोंसे ताना बाना डालकर यह संसाररूपी वस्त्र बुनते हैं अर्थात् इस संसारको उत्पन्न करते हैं । तब यह संसार विस्तृत होकर देखने और रहने योग्य होता है । देवगण जुलाहे हैं, जो मन, प्राण और पंचमहाभूतरूपी सात सूतोंको लेकर संसाररूपी वस्त्र बुना करते हैं ॥ ५ ॥

जिसने ये छहों लोक स्थिर किए हुए हैं, वह अजन्मा एक तत्त्व किस तरहका है, उसका स्वरूप क्या है ? यह कुछ निश्चित नहीं है, पर वह कुछ है इतना तो ज्ञात है, पर उसके निश्चित स्वरूपका ज्ञान प्राप्त करना कठिन है । उसी तत्त्वके प्रभावसे ये सभी लोक स्थिर हैं । उस तत्त्वके निश्चित स्वरूपका परिज्ञान ज्ञानियोंसे पूछकर ही प्राप्त किया जा सकता है । पर उसके लिए भी जिज्ञासुके ये भाव हों कि " मैं कुछ नहीं जानता, अतः मैं ज्ञानियोंसे पूछता हूँ । " अर्थात् वह जिज्ञासु भावसे विनम्र होकर ज्ञानियोंके पास जाए । उनके ज्ञानकी परीक्षाके लिए नहीं ॥ ६ ॥

१७२२ इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेदा स्य वामस्य निहितं पदं वेः ।
शीर्ष्णः क्षीरं दुह्रते गावो अस्य वव्रिं वसाना उदकं पदापुः ॥ ७ ॥

१७२३ माता पितरमृत आ बभाज धीत्यग्रे मनसा सं हि जग्मे ।
सा बीभत्सुर्गभरसा निविद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः ॥ ८ ॥

१७२४ युक्ता मातासीद् धुरि दक्षिणाया अतिष्ठद् गर्भो वृजनीष्वन्तः ।
अमीमेद् वत्सो अनु गामपश्यद् विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु ॥ ९ ॥

अर्थ--[१७२२] (यः अस्य वामस्य वेः) जो इस सुन्दर और गतिशील सूर्यके (पदं) स्थानको (वेद) जानता है, वह (इह ईं ब्रवीतु) यहां आकर इस रहस्यको स्पष्ट रूपसे कहे । (शीर्ष्णः अस्य) सर्वश्रेष्ठ इस सूर्यकी (गावः) किरणें (क्षीरं दुह्रते) पानी दुहती हैं और वे ही (वव्रिं वसाना) अत्यन्त तेजस्वी रूपको धारण करके (पदा उदकं आपुः) पैरोंसे पानीको पीती हैं ॥ ७ ॥

[१७२३] (माता धीती) माताने अपने कर्मसे (ऋते) जलके लिए (पितरं आ बभाजे) पिताका सेवन किया, (अग्रे) इसके बाद (मनसा सं हि जगमे) पिता प्रीतिपूर्वक मनसे मातासे संयुक्त हुआ, (सा बीभत्सुः) वह गर्भको धारण करनेकी इच्छावाली माता (गर्भरसा निविद्धा) गर्भको उत्पन्न करनेवाले रससे युक्त हुई, तब (नमस्वन्तः उप वाकं ईयुः) अन्नकी इच्छा करनेवाले स्तुति करते हुए इसके पास पहुंचे ॥ ८ ॥

[१७२४] (दक्षिणायाः धुरि) सूर्यकी धारणाशक्ति पर (माता युक्ता आसीत्) पृथ्वी माता आश्रित रहती है (त्रिषु योजनेषु) तीनों लोकोंमें (विश्वरूप्यं गां अपश्यत्) अनेक रूपोंवाली गायको जब देखा, तब (वत्सः अनु अमीमेत्) उसका बछडा चिल्लाने लगा, और तब (वृजनीषु अन्तः गर्भः अतिष्ठत्) अन्नकी शक्तियोंसे परिपूर्ण पृथ्वीके अन्दर गर्भ स्थापित हुआ ॥ ९ ॥

भावार्थ— यह सूर्य कहांसे उत्पन्न होता है, कहां रहता है और उसका क्या स्वरूप है ? यह सभी बातें हर कोई नहीं जान सकता । ज्ञानी ही जान सकते हैं । वर्षाकालमें इस सूर्यकी जो गायें अर्थात् किरणें पानी बरसाती हैं, वे ही ग्रीष्मकालमें तेज होकर अपने अग्रभागसे पृथिवीपरके पानीको पीती हैं– सोखती हैं । पानीका सोखना और बरसना ये सूर्यके कार्य सभी जानते हैं, पर उस सूर्यका मूलस्थान केवल ज्ञानी ही जानते हैं ॥ ७ ॥

ग्रीष्मकालमें संतप्त हुई पृथ्वीमाताको पानीकी आवश्यकता होती है, तब सूर्य जल बरसाता है । इस जलके माध्यमसे पृथ्वीरूपी माता और सूर्यरूपी पिताका संयोग होता है । तब पितारूपी सूर्य वर्षारूपी वीर्यको मातारूपी पृथ्वीमें स्थापित करता है । जब वह पृथ्वी वर्षाजलसे सिंचित होकर गर्भ धारण कर गर्भरूपी अन्नादिकको प्रसूत करनेमें समर्थ होती है, तब अन्नको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले कृषक आदि उस पृथ्वीके पास जाते हैं ॥ ८ ॥

सूर्य सब विश्वको धारण करता है, अतः उस पर पृथ्वी भी आश्रित रहती है । सूर्यसे पृथ्वीको जीवन मिलता है । इस सूर्यकी किरणोंके द्वारा बादलोंका निर्माण होता है अतः सूर्यकी किरणें गायें हैं और उसके द्वारा उत्पन्न हुए हुए बादल उसके बछडे हैं, जब बादल इन किरणोंसे संयुक्त होता है, तब वह गरजता है और पानी बरसाता है । उस पानीरूपी वीर्यके कारण यह पृथ्वी गर्भवती अर्थात् अन्नादिको प्रसूत करनेमें समर्थ होती है ॥ ९ ॥

१७२५ तिस्रो मातॄस्त्रीन् पितॄन् बिभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमवं ग्लापयन्ति ।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदं वाचमविश्वमिन्वाम् ॥ १० ॥

१७२६ द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य ।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः ॥ ११ ॥

१७२७ पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम् ।
अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रे षळर आहुरर्पितम् ॥ १२ ॥

अर्थ—[१७२५] (एकः) यह प्रजापति अकेला ही (तिस्रः मातृः) तीन माताओं और (त्रीन् पितॄन्) तीन पिताओंको (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (ऊर्ध्वः तस्थौ) सबसे ऊपर विराजमान है। वे सभी (ईं न अव ग्लापयन्ति) इसको दुःखी नहीं करते । (विश्वविदं) समस्त विश्वको जाननेवाली तथापि (विश्वमिन्वां) समस्त विश्वसे परे रहनेवाली (अमुष्य वाचं) इस प्रजापतिकी वाणीके बारेमें वे सब (दिवः पृष्ठे मन्त्रयन्ते) द्युलोककी पीठपर विचार करते हैं ॥ १० ॥

[१७२६] (ऋतस्य द्वादशारं चक्रं) सूर्यका बारह अरोंवाला चक्र (द्यां परि वर्वर्ति) द्युलोकके चारों ओर घूमता है और (तत् जराय नहि) वह कभी जीर्ण नहीं होता। हे (अग्ने) अग्ने ! (सप्त शतानि विंशतिः च) सातसौ बीस (मिथुनासः पुत्राः) जोडे पुत्र (आ तस्थुः) हमेशा रहते हैं ॥ ११ ॥

[१७२७] (पंचपादं द्वादशाकृतिं पुरीषिणं पितरं) पांच पैरोंवाला, बारह आकृतियोंवाला तथा जलसे युक्त पिता (दिवः परे अर्धे आहुः) द्युलोकके दूसरे आधे भागमें रहता है, ऐसा कहते हैं (अथ) और (इमे अन्ये) ये दूसरे जन (विचक्षणं) इस बुद्धिमान्को (षडरे सप्तचक्रे उपरे अर्पितं आहुः) छे अरोंवाले और सात चक्रोंवाले रथ पर चढा हुआ कहते हैं ॥ १२ ॥

भावार्थ— वह प्रजापति पृथ्वी अन्तरिक्ष और द्युलोकरूपी तीन माताओं और अग्नि, वायु और सुरूपी तीन पिताओंका भरणपोषण करता हुआ उन सबसे परे रहता है अर्थात् इन सबमें रहता हुआ भी इनमें लिप्त नहीं होता, इसीलिए ये उसे दुःखी नहीं करते । शब्द आकाशका गुण होनेसे वाणी आकाशका ही रूप है, और आकाश ब्रह्मका रूप है अतः वाक् भी ब्रह्मका रूप है । यह ब्रह्म सारे विश्वको जानता है और इस विश्वसे भी परे है । सभी देव इस ब्रह्मकी शक्तिका विचार करते हैं ॥ १० ॥

इस सूर्यका बारह मासवाला चक्र इस विश्वके चारों ओर निरन्तर घूमता रहता है, इतनी गति करनेके बावजूद भी वह चक्र कभी टूटता या शिथिल नहीं होता । बारह मासोंका चक्र हमेशा चलता रहता है । अग्निरूप सूर्यके दिनरातरूपी सातसौ बीस जोडे पुत्र अर्थात् ३६० दिन और ३६० रात ये हमेशा कार्य करते रहते हैं । ३६० दिन और ३६० रात इस प्रकार ७२० जुडवें पुत्र हमेशा कार्यमें रत रहते हैं ॥ ११ ॥

अयन, मास, ऋतु, पक्ष, दिन और रात इन पांच पैरोंवाला तथा बारह महीनेरूप बारह आकृतिवाला, तथा जलको बरसानेवाला सूर्य द्युलोकके आधे भागमें रहता है, अर्थात् पृथ्वीकी अपेक्षासे वह अन्तरिक्षसे परे रहता है । यह सूर्य संवत्सररूपी रथपर चढा हुआ है, इस संवत्सर-रथके छे ऋतुरूपी छे अरे हैं और अयन, मास, ऋतु, पक्ष, दिन, रात तथा मुहूर्त इन सात चक्रोंवाला है । सूर्य ही अयन मास आदि काल विभागोंको बनाता हुआ अपना एक परिभ्रमण एक संवत्सर अर्थात् एक वर्षमें पूरा करता है ॥ १२ ॥

१७२८ पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्ना तस्थुर्भुवनानि विश्वा ।
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न शीर्यते सनाभिः ॥ १३ ॥

१७२९ सनेमि चक्रमजरं वि वावृत उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति ।
सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं तस्मिन्नार्पिता भुवनानि विश्वा ॥ १४ ॥

१७३० साकंजानां सप्तथमाहुरेकजं षळिद् यमा ऋषयो देवजा इति ।
तेषामिष्टानि विहितानि धामशः स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः ॥ १५ ॥

अर्थ—[१७२८] (परिवर्तमाने तस्मिन् पंचारे चक्रे) घूमनेवाले उस पांच अरोंवाले चक्रमें (विश्वा भुवनानि आ तस्थुः) सारे लोक आकर रहते हैं। (भूरिभारः तस्य अक्षः न तप्यते) बहुत बोझ होनेपर भी उस रथका अक्ष गरम नहीं होता, (सनाभिः सनात् एव) निरन्तर रूपसे अनन्तकालसे गति करते रहनेपर भी (न शीर्यते) वह टूटता नहीं ॥ १३ ॥

[१७२९] (सनेमि अजरं चक्रं वि वावृते) नेमिसे युक्त तथा कभी न टूटनेवाला यह जगत्‌रूपी चक्र हमेशा घूमता रहता है। (उत्तानायां दश युक्ताः वहन्ति) अत्यन्त विस्तृत प्रकृतिके उत्पन्न होनेपर इसे दस घोडे मिलकर खींचते हैं। (सूर्यस्य चक्षुः रजसा आवृतं एति) सूर्यका प्रकाश जलसे आच्छादित होकर चलता है। (तस्मिन् विश्वा भुवनानि अर्पिता) उसीमें सारे लोक स्थित हैं ॥ १४ ॥

[१७३०] (साकंजानां सप्तथं एकजं आहुः) एकसाथ उत्पन्न होनेवाले सात तत्त्वोंको एकसे उत्पन्न होनेवाला कहते हैं। इनमें (षट् इत् यमाः) छै जुडवें हैं (ऋषयः देवजाः) वे ऋषि हैं और देवोंसे उत्पन्न होनेवाले हैं। (तेषां इष्टानि धामशः विहितानि) उनके यज्ञ उनके अपने अपने स्थानोंपर चल रहे हैं, (रूपशः विकृतानि स्थात्रे रेजन्ते) रूपसे विभिन्न होनेपर भी एक ही तत्त्वपर आश्रित होकर गति करते हैं ॥ १५ ॥

भावार्थ—अयनमास आदि पांच अरोंवाले रथरूपी इस संवत्सर अर्थात् कालमें सारे लोक हैं। इस कालसे बाहर या इससे परे कोई लोक नहीं है। इतने लोकोंका भार होते रहनेपर भी इस रथका अक्ष न गरम होता है और न ही टूटता है। यह काल अनन्तकालसे चलता आ रहा है, पर इस कालकी समाप्ति कभी होने नहीं आती ॥ १३ ॥

यह जगत्‌रूपी चक्र हमेशा चलता रहता है, इसकी नेमि निरन्तर चलते रहनेपर भी नहीं टूटती। प्रजापति इस जगत्‌का नेमि है। वही इस जगत्‌का केन्द्र है, उसीपर आश्रित होकर यह जगत् गति करता है। वह प्रजापति अविनाशी है। जब प्रकृतिमें गति उत्पन्न होती है, तब प्रकृतिको बुद्धि, मन, चित्त, अहंकार, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश और आत्मा ये दस घोडे ले जाते हैं। अर्थात् जब प्रकृतिमें क्रिया उत्पन्न होती है, तब उससे ये नौ तत्त्व अस्तित्वमें आते हैं। आत्मा अविनाशी होनेसे पूर्वसे विद्यमान है। इन दस तत्त्वोंसे सारा जगत् बनता है। जब जगत् उत्पन्न हो जाता है, तब सूर्यका प्रकाश द्युलोकमें घूमता है, और उसी सूर्यके आधारपर सारे लोक स्थित हैं ॥ १४ ॥

विश्वमें भूः, भुवः, स्वः, महः जनः, तपः, सत्यं ये सात लोक उस एक ही प्रजापतिसे उत्पन्न होते हैं। इनमें भूः-भुवः, स्वः-महः, और जनः-तपः ये जुडवें हैं और सत्यं यह अकेला है, ये सभी ऋषि हैं और देवोंसे उत्पन्न होनेवाले हैं। इनका अपनी अपनी जगह यज्ञ चल रहा है। यद्यपि इनके रूप अलग अलग हैं, पर ये सब एक प्रजापतिके आधारसे रहते हैं। इसी प्रकार शरीरमें आंख, नाक, कान और रसना ये इन्द्रियां हैं। इनमें दो आंखें, दो नाक और दो कान ये जुडवें हैं और रसना यह अकेली है। ये सात ऋषि हैं (सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे) और देवोंसे पैदा हुए हैं सूर्यदेवसे आंख, दिशाओंसे कान, अश्विनी देवोंसे नाक, और जलसे रसना बनी है। ये सभी इन्द्रियें अपनी अपनी जगह मानव जीवनरूपी यज्ञ रचा रही हैं। यद्यपि ये रूपोंमें पृथक् पृथक् हैं, पर सभी एक आत्माके आश्रयसे इस शरीरमें रह रही हैं ॥ १५ ॥

१७३१ स्त्रियः सतीस्ताँ उ मे पुंस आहुः पश्यदक्षण्वान्न वि चेतदन्धः ।
कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात् स पितुष्पितासत् ॥ १६ ॥
१७३२ अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात् ।
सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात् क्व स्वित् सूते नहि यूथे अन्तः ॥ १७ ॥
१७३३ अवः परेण पितरं यो अस्या अनुवेद पर एनावरेण ।
कवीयमानः क इह प्र वोचद् देवं मनः कुतो अधि प्रजातम् ॥ १८ ॥

अर्थ—[१७३१] (स्त्रियः सतीः तां पुंसः) स्त्रियां होती हुई भी वे पुरुष हैं, ऐसा (मे आहुः) मुझसे कहते हैं। इस बातको (अक्षण्वान् पश्यत्) आंखोंवाला ही देख सकता है, (अन्धः न विचेतत्) अन्धा इसे नहीं जान सकता। (यः कविः पुत्रः) जो ज्ञानी पुत्र है, (सः ईं आ चिकेत) वही इसे जान सकता है, (यः ताः विजानात्) जो इन्हें जानता है, (सः पितुः पिता असत्) वह पिताका भी पिता हो जाता है ॥ १६ ॥

[१७३२] (परेण अवः) द्युलोककी अपेक्षासे नीचे तथा (एना अवरेण परः) इस पृथ्वीकी अपेक्षासे ऊपरके स्थानमें (पदा) अपने पैरसे (वत्सं बिभ्रती) बछडेको धारण करती हुई (गौः उत् अस्थात्) गाय ऊपर स्थित है। (कद्रीची सा) अनजान लक्ष्यकी तरफ गति करती हुई वह गाय (कं अर्धं स्वित् परा अगात्) किस अर्ध भागके परे चली जाती है ? और (क्व) किस स्थानपर (सूते) अपने बछडेको उत्पन्न करती है ? क्योंकि (न हि यूथे अन्तः) वह इस अपने झुण्डमें तो वत्सको पैदा नहीं करती ॥ १७ ॥

[१७३३] (परेण अवः) द्युलोककी अपेक्षा नीची (अस्य पितरं यः अनुवेद) इस पृथ्वीके पालक अग्निको जो जानता हो, तथा (एना अवरेण परः) इस पृथ्वीकी अपेक्षा ऊंचे द्युलोकके पालक सूर्यको जानता हो, तथा (देवं मनः कुतः अधि प्रजातं) यह दिव्य मन कहांसे उत्पन्न हुआ, यह जो जानता हो (कवीयमानः कः) ऐसा ज्ञानी कौन है ? वह (इह प्रवोचत्) यहां आकर हमें बतावे ॥ १८ ॥

भावार्थ— हर स्त्रीमें आधा पुरुषत्व और हर पुरुषमें आधा स्त्रीत्व होता है। यह आधुनिक शरीरशास्त्रका भी मत है। इसीके आधारपर अर्धनारीश्वरकी कल्पना की है। इसलिए स्त्रियोंमें स्त्रीत्व रहते हुए भी उनमें पुरुषत्व भी रहता है। स्त्री और पुरुषमें कुछ इन्द्रियोंको छोडकर बाकीकी इन्द्रियें समान हैं, इसलिए भी स्त्री पुरुष ही है। दूसरे पक्षमें सूर्यकी रश्मियां यद्यपि स्त्रीलिंगी होनेसे स्त्री हैं, तथापि वे वृष्टिजलरूपी वीर्यका सेचन करके पृथ्वीको गर्भवती करनेके कारण पुरुष हैं। इस रहस्यको केवल वही जान सकता है, जो ज्ञानरूपी आंखोंसे युक्त है, जो स्थूल दृष्टिवाला है, जो इस रहस्यकी गहराईमें नहीं उतर सकता, वह इस रहस्यको नहीं जान सकता। जो इस रहस्यको जान लेता है, वह पालन करनेवाले पिताके समान आदरणीय हो जाता है ॥ १६ ॥

विराज् अथवा प्रकृति यह गाय है जो द्युलोक और पृथ्वीलोकमें समान रूपसे रहती है। पैरोंसे चलनेके कारण पैर गतिके प्रतीक हैं, वह प्रकृति पदा पैरसे अर्थात् गति करती हुई सूर्यरूपी बछडेको पैदा करती है। वह प्रकृति निरन्तर गति कर रही है। पर उसकी यह गति किस कारण है, उसकी गतिका निश्चित लक्ष्य क्या है, अथवा वह किस लक्ष्यकी तरफ इतनी तीव्र गतिसे, भागी जा रही है, यह ज्ञात नहीं है, उसका लक्ष्य अज्ञात है। वह सूर्यको किस जगह पैदा करती है, यह भी कोई नहीं जानता। पर इतना तो निश्चित है कि वह उसे पृथ्वीपर तो पैदा नहीं करती है, ॥ १७ ॥

इस पृथ्वीके पालक अग्निके तथा द्युलोकके पालक सूर्यके रहस्यको जो जानता हो, तथा दिव्य मनको जो जानता हो वह आकर हमें बतावे। तात्पर्य यह कि अग्नि और सूर्य इतने रहस्यमय हैं कि उन्हें पूर्णतया कोई नहीं जान सकता। इसी तरह चेतन, अचेतन, अर्धचेतन स्तरोंसे युक्त मन तो इतना रहस्यमय है कि उसके अन्तका पाना असंभव है। मन दिव्य है अर्थात् उत्तम भावोंसे उत्पन्न हुआ है। वह देव है ॥ १८ ॥

×

१७३४ ये अर्वाञ्चस्ताँ उ परांच आहु—र्ये परांञ्चस्ताँ उ अर्वांच आहुः ।
इन्द्रश्च या चक्रथुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति ॥ १९ ॥

१७३५ द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्व—त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥ २० ॥

१७३६ यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भाग—मनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति ।
इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्रा विवेश ॥ २१ ॥

अर्थ— [१७३४] (ये अर्वाचः) जो पास हैं (तां पराचः आहुः) उसे लोग दूर कहते हैं, (ये पराञ्चः) जो दूर हैं (तां अर्वाचः आहुः) उसे पास कहते हैं, (सोम इन्द्रः च) हे सोम ! तूने और इन्द्रने (या चक्रथुः) जो मण्डल बनाये हैं (तानि) वे मण्डल (धुरा युक्ताः न) रथकी धुरामें जोडे गए घोडोंकी तरह (रजसः वहन्ति) लोकोंको खींचते हैं ॥ १९ ॥

[१७३५] (सयुजा सखाया द्वा सुपर्णा) हमेशा साथ रहनेवाले तथा अत्यन्त मित्र दो उत्तम पंखवाले पक्षी (समानं वृक्षं परि ष्वजाते) एक ही वृक्षका आलिंगन किए हुए हैं (तयोः अन्यः) उनमें एक (स्वादु पिप्पलं अत्ति) उस पेडके मीठे मीठे फलोंको खाता है, (अन्यः) और दूसरा (अनश्नन्) उन फलोंको न खाता हुआ (अभि चाकशीति) केवल प्रकाशित होता है ॥ २० ॥

[१७३६] (यत्र) जिस वृक्षपर बैठकर (सुपर्णाः) उत्तम पंखवाले पक्षीगण (अमृतस्य भागं) अमृतके भाग-की (विदथा अनिमेषं अभिस्वरन्ति) अपनी वाणियोंसे निरन्तर स्तुति करते हैं । (अमृतस्य भुवनस्य इनः गोपाः) सम्पूर्ण लोकोंका स्वामी और रक्षक (सः धीरः) वह ज्ञानवान् (अत्र पाकं मा विवेश) मुझ अज्ञानीके अन्दर प्रविष्ट हो गया ॥ २१ ॥

भावार्थ— समय और सृष्टिका चक्र तेजीसे घूम रहा है, इस कारण जिसे हम पहले क्षणमें पासकी कहते हैं, दूसरे क्षणमें वही दूर हो जाती है और प्रथम क्षणमें जिसे हम दूरकी कहते हैं, अगले क्षणमें वही पास आ जाती है, इसप्रकार दूरकी चीज पास और पासकी दूर होती रहती है । जो जगत् इस समय है, आगे आनेवाले कालमें वह इसी तरह बदल जाता है । इस जगत्के अन्तर्गत सोम और इन्द्ररूपी जोडेने जो मण्डल बनाये हैं, वे लोकोंको धारण करते हैं । सोम मादाका प्रतीक है और इन्द्र नरका । ये नरमादा अपने चारों ओर जिस सन्तानरूपी मण्डलका निर्माण करते हैं, उसीके कारण ये लोक चलते हैं । यदि नरमादा न हों या सन्तानोत्पत्ति न हो, तो सभी लोकोंका उच्छेद हो जाए ॥ १९ ॥

जीवात्मा और परमात्मा ये दो सुपर्ण हैं अर्थात् उत्तम शक्तिसे युक्त हैं । पर्ण-पंख शक्तिके प्रतीक हैं । ये दोनों हमेशा साथ साथ रहते हैं और परस्पर गाढ मित्र हैं । परमात्मा जीवात्माके पास सदा रहता है और हरदम मित्रवत् उसकी सहायता करता है । ये दोनों जीवात्मा एवं परमात्मारूपी सुपर्ण प्रकृतिरूपी वृक्षपर बैठे हुए हैं । इन दोनोंमें जीवात्मा सुपर्ण इस प्रकृतिरूपी वृक्षके फलोंको खाता है अर्थात् संसारमें आसक्त होकर सुखदुःखरूपी फल भोगता है । जब कि परमात्मा इस संसारसे निर्लिप्त रहकर केवल प्रकाशित होता है ॥ २० ॥

इस प्रकृतिरूपी वृक्षपर बैठे हुए अर्थात् संसारमें लिप्त मरणधर्मा जीवात्मायें उस अमृतरूप परमात्माकी अपने शब्दों में स्तुति करती हैं । आत्मायें इस शरीरके साथ संयुक्त होकर जीवात्मा बनती हैं और शरीरसे वियुक्त होकर फिर आत्मा बन जाती हैं, इसीलिए जीवात्माको मरणशील कहा है, आत्मा अमर है । ऐसी जीवात्मायें इस प्रकृतिरूपी वृक्षके फलोंको खाती हुई परमात्माकी स्तुति करती हैं । तब इन भुवनोंका स्वामी और रक्षक परमात्मा अज्ञानसे युक्त इस जीवात्माके अन्दर ज्ञान भरता है ॥ २१ ॥

१७३७ यस्मिन् वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे ।
तस्येदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद ॥ २२ ॥

१७३८ यद् गायत्रे अधि गायत्रमाहितं त्रैष्टुभाद् वा त्रैष्टुभं निरतक्षत ।
यद् वा जगज्जगत्याहितं पदं य इत् तद् विदुस्ते अमृतत्वमानशुः ॥ २३ ॥

१७३९ गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम् ।
वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाक्षरेण मिमते सप्त वाणीः ॥ २४ ॥

अर्थ—[१७३७] (यस्मिन् वृक्षे) जिस वृक्षपर (मध्वदः सुपर्णाः) मधुको पीनेवाले सुपर्ण पक्षी (निविशन्ते) बसेरा करते हैं और (सुवते) प्रजा उत्पन्न करते हैं (तस्य विश्वे अग्रे अधि) उस वृक्षके सबसे ऊपर (स्वादु पिप्पलं) मीठे मीठे फल हैं, पर (यः पितरं न वेद) जो पिताको नहीं जानता, वह (तत् न उन्नशत्) उन मीठे फलोंको नहीं पा सकता ॥ २२ ॥

[१७३८] (यत् गायत्रे अधि गायत्रं आहितं) गायत्रीके ऊपर गायत्री स्थित है, (त्रैष्टुभात् वा त्रैष्टुभं निरतक्षतं) त्रैष्टुभसे त्रैष्टुभकी रचना हुई, (यत् वा जगति जगत् पदं आहितं) जगतीपर जगत्पद रखा गया है (यः इत् तत् विदुः अमृतत्वं आनशुः) जो इस बातको जानते हैं, वे अमृतको प्राप्त करते हैं ॥ २३ ॥

[१७३९] (गायत्रेण अर्कं प्रति मिमीते) गायत्रसे अर्कको नापा जाता है, (अर्केण साम) अर्कसे सामको नापा जाता है, (त्रैष्टुभेन वाकं) त्रिष्टुभ्से वाक्को नापा जाता है (वाकेन वाकं) वाणीसे वाणीको नापा जाता है। (द्विपदा चतुष्पदा अक्षरेण) दो पाद और चार पादोंवाले अक्षरसे (सप्त वाणीः मिमते) सात प्रकारकी वाणी नापी जाती है ॥ २४ ॥

१ प्राणो वा अर्कः— (शत. १०।४।१।२३)
२ ऋक् एव अर्कः—

भावार्थ— इस संसाररूपी वृक्षपर मधु अर्थात् प्राण रसको पीनेवाले पक्षी— जीवात्मायें रहती हैं। जब आत्मायें शरीरके साथ संयुक्त होती हैं, तब वे जीवात्मायें बनकर प्राणरूपी मधुरसका पान करती हैं, (प्राणो वै मधुः प्राण ही मधु है— शतपथ १४।१।३।३०)। इस संसार वृक्षमें सबसे ऊपर मीठे मीठे फल लगे हुए हैं, जो इस संसारमें सर्वश्रेष्ठ बनता है, वही उन मीठे मीठे फलोंको खा सकता है। पर जो उस सर्वपालक परमात्माको नहीं जानता, वह उन फलोंको नहीं पा सकता। परमात्माको जाने बिना श्रेष्ठ बनना और श्रेष्ठ बने बिना उन मीठे फलोंको पा सकना असंभव है ॥ २२ ॥

गायत्री भूमि है, उसपर अग्निकी स्थापना की जाती है। (गायत्रोऽग्निः तै. सं. २.२.५.५)। त्रैष्टुभ अन्तरिक्ष है, उसपर वायुकी स्थापना की जाती है। जगत् द्यु है उसपर आदित्यकी स्थापना की जाती। अग्नि भूमिका प्राण है, वायु अन्तरिक्षका प्राण है और सूर्य द्युलोकका प्राण है। जो इस विद्याको जानते हैं, वे ही अमृतको प्राप्त कर सकते हैं ॥ २३ ॥

गायत्र अर्थात् उस परमेष्ठी प्राणसे वैय्यक्तिक प्राणकी रचना हुई। ऋचासे सामकी रचना हुई, (या ऋक् तत् साम), पादबद्धव्यवस्थावाले मंत्रोंसे गानकी रचना हुई। स्तोत्रसे वाणीकी रचना हुई। परमेष्ठी वाणीसे साधारण वाणीकी रचना हुई और दो पाद या चार पादवाले अक्षरोंसे सात प्रकारके छन्दोंका निर्माण हुआ। उस परमेष्ठी प्रजापतिसे ही प्राणिमात्रके प्राण और वाणीकी रचना हुई है ॥ २४ ॥

१७४० जगता सिन्धुं दिव्यस्तभायद् रथंतरे सूर्यं पर्यपश्यत् ।
गायत्रस्य समिधस्तिस्र आहु—स्ततो मह्ना प्र रिरिचे महित्वा ॥ २५ ॥

१७४१ उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम् ।
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नो ऽभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचम् ॥ २६ ॥

१७४२ हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात् ।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ॥ २७ ॥

अर्थ— [१७४०] (जगता) अत्यन्त गति करनेवाले सूर्यके द्वारा प्रजापतिने (दिवि सिन्धुं अस्तभायत्) द्युलोकमें सिन्धुको स्थिर किया। (रथन्तरे सूर्यं परि अपश्यत्) पृथ्वीसे संयुक्त होते हुए सूर्यको देखा गया! (गायत्रस्य समिधः तिस्रः आहुः) गायत्रीकी तीन समिधायें हैं, ऐसा कहते हैं। (ततः मन्हा महित्वा प्ररिरिचे) तब उनके बल और महत्त्वसे वह सुशोभित हुआ ॥ २५ ॥

१ प्राणो वै सिन्धुश्छन्दांसि (शत. ६।५।२।४)

२ इयं पृथिवी रथन्तरं (ऐत. ब्रा. ८।१)

[१७४१] (एतां सुदुघां धेनुं उपह्वये) इस उत्तम रीतिसे दूध देनेवाली गायको मैं बुलाता हूँ, (उत) और (एनां सुहस्तः गोधुक् दोहत्) इस गायको उत्तम हाथोंसे युक्त दूध दुहनेवाला दुहे। (सविता) सविता (नः श्रेष्ठं सवं साविषत्) हमें श्रेष्ठ दूध प्रदान करे, (घर्मः अभीद्धः) भट्टी गरम है, (तत् उ सु प्रवोचं) इस बातको मैं कहता हूँ ॥ २६ ॥

[१७४२] (वसूनां वसुपत्नी) आठ वसुओं और ऐश्वर्योंको धारण एवं उनका पोषण करनेवाली धेनु (हिंकृण्वती) रंभाती हुई तथा (मनसा वत्सं इच्छन्ती) मनसे अपने बछडेको प्यार करती हुई (अभि आगात्) आई है। (इयं अघ्न्या) यह न मारे जाने योग्य गाय (अश्विभ्यां पयः दुहां) अश्विदेवोंके लिए दूध दुहे। तथा (महते सौभगाय सा वर्धतां) महान् सौभाग्यके लिए वह बढे ॥ २७ ॥

१ इयं अघ्न्या महते सौभगाय वर्धतां— यह न मारे जाने योग्य गाय महान् सौभाग्यके लिए बढे।

भावार्थ— अत्यन्त गति करनेवाले सूर्यके अन्दर प्राणशक्ति विद्यमान है, जो सारे द्युलोकमें फैली हुई है। जब वृष्टिके माध्यमसे सूर्य पृथ्वीसे संयुक्त होता है, तब सूर्य और द्युलोकके अन्दर निहित प्राण उस वृष्टिजलसे इस पृथ्वी पर आती है। ऐसे सूर्यके द्यु, अन्तरिक्ष और पृथ्वी ये तीन पाद होते हैं। उस परमेष्ठी प्रजापतिके तेजसे ही ये सूर्यादि तत्त्व शक्तिशाली होते हैं ॥ २५ ॥

यह कामधेनु गाय महा प्रकृति है, इसका वत्स प्राणरूप सूर्य है और यह संसार उस गायरूपी प्रकृतिका दूध है। इस दूधको वही दुह सकता है जो ज्ञानी है, अर्थात् ज्ञानी ही इस प्रकृति और संसारकी वास्तविकताको जान सकता है। सविता यह मन और प्राण है, (मनो वै सविता, शत. ६।३।१।१३; प्राणो वै सविता), यह प्राण शरीरमें जीवन रसका संचार करता है यह शरीर एक भट्टी है, जो सदा तपती रहती है और इसमें प्राणके द्वारा उत्पन्न जीवन रस पकता रहता है ॥ २६ ॥

गाय मन, प्राण, अपान और पंचभूत इन आठ वसुओंका पालन करती है अर्थात् यह गाय सारे संसारका पालन करती है। वह प्यारकी मूर्ति है। यह मारे जाने योग्य नहीं है, अतः इसकी हिंसा नहीं करनी चाहिए। इसके विपरीत इसे हरतरहसे बढाना चाहिए। गायोंको समृद्ध करना ऐश्वर्योंको बढाना है, क्योंकि गायोंमें हरतरहके ऐश्वर्य बसते हैं ॥ २७ ॥

१७४३ गौरमीमेदनु वत्सं मिषन्तं मूर्धानं हिङ्कृणोन्मातवा उ ।
सुक्वाणं घर्ममभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥ २८ ॥

१७४४ अयं स शिङ्क्ते येन गौरभीवृता मिमाति मायुं ध्वसनावधि श्रिता ।
सा चित्तिभिर्नि हि चकार मर्त्यं विद्युद् भवन्ती प्रति वव्रिमौहत ॥ २९ ॥

१७४५ अनच्छये तुरगातु जीवमेजद् ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम् ।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ॥ ३० ॥

अर्थ – [१७४३] (मिषन्तं वत्सं अनु गौः अमीमेत्) आंखें बंद किए हुए बछडेके पास जाकर गाय शब्द करती है, और (मूर्धानं मातवै हिङ् अकृणोत्) उस बछडेके सिरको चाटनेके लिए रंभाती है, (अभि वावशाना) शब्द करती हुई वह (सुक्वाणं घर्मं अभि) बछडेके मुखको अपने गरम गरम थनोंके पास ले जाती है, (मायुं मिमाति) रंभाती जाती है और (पयोभिः पवते) दूधसे उस बछडेको तृप्त करती जाती है ॥ २८ ॥

[१७४४] (येन गौः अभीवृता) जिस मेघने किरणोंको चारों ओरसे घेर लिया है, (अयं सः शिङ्क्ते) वह वह मेघ शब्द करता है । (ध्वसनौ अधिश्रिता) उन मेघोंमें आश्रित यह विद्युत् (मायुं मिमाति) गर्जना करती है । (सा चित्तिभिः मर्त्यं नि चकार) वह अपने कर्मोंसे मनुष्योंको उत्पन्न करती है, और तदनन्तर (विद्युत् भवन्ती प्रति वव्रिं औहत) चमकीली होकर अपना सुन्दर रूप प्रकाशित करती है ॥ २९ ॥

[१७४५] (तुरगातु अनत् जीवं) शीघ्रगतिसे गति करनेवाला तथा श्वसन् करनेवाला यह जीव, (एजत्) निकल जाता है, और यह शरीर (पस्त्यानां मध्ये ध्रुवं शये) गृहमें निश्चल पडा रहता है । (मृतस्य) मरे हुएका (मर्त्येन सयोनिः) मर्त्यके साथ रहनेवाला (अमर्त्यः जीवः) अविनाशी आत्मा (स्वधाभिः चरति) अपनी धारण-शक्तियोंसे युक्त होकर घूमता रहता है ॥ ३० ॥

भावार्थ— गाय दूरसे ही बछडेको देखकर रंभाने लग जाती है और बछडा भी प्यारसे आंखें बंद करके बैठा रहता है, तब गाय बछडेके पास आकर उसके सिरको प्यारसे चाटती और उसके मुंहके पास अपने थनोंको ले जाती है ताकि वह दूध पीले । जब बछडा दूध पीने लगता है, तब वह गाय अपने बछडेको दूध भी पिलाती जाती है; चाटती भी जाती है और प्यारसे शब्द भी करती है । प्यारका स्वाभाविक वर्णन है ॥ २८ ॥

बादल शब्द करते हुए आते हैं और सूर्य किरणोंको ढक लेते हैं, तब उन बादलोंमें स्थित बिजली गरजती है, जब वह पानी बरसाती है, तब मनुष्य उत्पन्न होते हैं (जलसे अन्न, अन्नसे वीर्य और वीर्यसे पुरुष उत्पन्न होते हैं), जब पानी बरसने लगता है, तब उसका रूप और प्रकाशमान हो जाता है ॥ २९ ॥

यह आत्मा सतत घूमती रहती है। एक शरीरको छोडकर दूसरेमें जाना इसका स्वभाव है । यह प्राणका आधार आत्मा जब शरीरसे निकल जाती है, तब यह शरीर गृहमें ही खम्भेके समान निश्चल पडा रहता है । शरीरके साथ यह आत्मा रहती है, पर शरीर मरणशील है और आत्मा अविनाशी है । शरीर इस आत्माके आश्रित रहती है, पर यह आत्मा किसी दूसरे पर आश्रित नहीं रहती, अपितु अपनी ही शक्तियोंसे युक्त होकर सर्वत्र घूमती रहती है ॥ ३० ॥

१७४६ अपश्यं गोपामनिपद्यमान॒—मा च॒ परा॑ च॒ प॒थिभि॒श्चर॑न्तम् ।
स स॒ध्रीची॒: स विषू॑ची॒र्वसा॑न॒ आ व॑रीवर्ति॒ भुव॑नेष्व॒न्तः ॥ ३१ ॥

१७४७ य ई॒ च॒कार॒ न सो अ॒स्य वे॑द॒ य ई॒ द॒दर्श॑ हिरु॒गिन्नु तस्मा॑त् ।
स मा॒तुर्यो॒ना परि॑वीतो अ॒न्त—र्ब॑हुप्र॒जा नि॒र्ऋति॒मा वि॑वेश ॥ ३२ ॥

१७४८ द्यौर्मे॑ पि॒ता ज॑नि॒ता नाभि॑रत्र॒ बन्धु॑र्मे मा॒ता पृ॑थि॒वी म॒हीय॑म् ।
उ॒त्ता॒नयो॒श्चम्वो॒र्योनि॑र॒न्त—रत्रा॑ पि॒ता दु॑हि॒तुर्ग॒र्भमा॑धात् ॥ ३३ ॥

अर्थ—[१७४६] (अनिपद्यमानं) कभी भी न गिरनेवाले (आ च परा च पथिभिः चरन्तं) पासके और दूरके मार्गोंसे चलनेवाले (गोपां) तथा रक्षण करनेवाले इस सूर्यको (अपश्यं) मैंने देखा है। (सः सध्रीचीः) वह एक साथ चलनेवाले तथा (सः विषूचीः वसानः) वह चारों ओर फैलनेवाले तेजको धारण करता हुआ (भुवनेषु अन्तः आ वरीवर्ति) संसारमें विराजमान होता है ॥ ३१ ॥

[१७४७] (यः ईं चकार) जिसने यह सृष्टि बनाई (सः अस्य न वेद) वह भी इसे नहीं जानता। (यः ईं ददर्श) जिसने इसे देखा, (तस्मात् हिरुक् इत् नु) उससे यह छिप गया। (स मातुः योना अन्तः परिवीतः) वह माताके गर्भके अन्दर चारों ओरसे वेष्टित है, (बहु प्रजाः निर्ऋतिं आ विवेश) वह बहुत प्रजावाला होकर मृत्युमें प्रविष्ट हो जाता है ॥ ३२ ॥

[१७४८] (द्यौः मे जनिता) द्यु मुझे उत्पन्न करनेवाला तथा (पिता) पालक भी है, (बन्धुः) वह मेरा भाई भी है और (अत्र नाभिः) यहां मेरा केन्द्र भी है। (इयं मही पृथिवी मे माता) यह विशाल पृथ्वी मेरी माता है। (उत्तानयोः चम्वोः योनिः अन्तः) ऊपरकी ओर उठे हुए दो पात्रोंके स्थानमें रहता हुआ (पिता दुहितुः गर्भं आधात्) पिता दुहितामें गर्भ स्थापित करता है ॥ ३३ ॥

दुहिता— दुः हिता, दूरे हिता, दोरध्वेर्या (निरु·)

भावार्थ— यह सूर्य निरन्तर चलता तो रहता है, पर कभी गिरता नहीं, यह पासके और दूरके मार्गोंसे सदा चलता रहता है और सारे संसारकी रक्षा करता है। वह चारों ओर फैलनेवाले तेजसे युक्त रहता है और सारे भुवनोंमें संचार करता है ॥ ३१ ॥

यह विश्व इतना विस्तृत और अनन्त है, कि जिसने यह विश्व बनाया है, वह भी इसे पूरी तरह जानता है, या नहीं, कौन कह सकता है। जब उसके कर्ताके बारेमें भी यह संशय है, तो इस अल्पज्ञ आत्माके बारेमें तो कुछ कहना ही व्यर्थ है। क्योंकि जब यह आत्मा इस विश्वको देखनेकी कोशिश करती है, तब यह विश्व उससे छिप जाता है, अर्थात् यह अल्पज्ञ आत्मा इस विश्वके अनन्तत्वकी कल्पना भी नहीं कर सकती। यह आत्मा माताके गर्भके अन्दर आकर प्रसूत होती है, फिर वह भी अनेक प्रजाओंको उत्पन्न करके अन्तमें मृत्युके मुखमें चली जाती है · यद्यपि आत्मा अविनाशी है, पर शरीरके संयोगके कारण शरीरके धर्म उसपर आरोपित होते हैं ॥ ३२ ॥

द्युलोक सूर्यका उपलक्षण है। सूर्य सब संसारको पैदा करता है, उसका पालन करता है, और उसकी सहायता करता है। सारे संसारका केन्द्र यह सूर्य है। पृथ्वीलोक और द्युलोक ये दो पात्र हैं, जो एक दूसरेकी तरफ मुंह किए हुए हैं। इन दोनोंके बीचमें स्थित सूर्य अपनेसे दूर स्थित पृथ्वीमें वृष्टिजल द्वारा गर्भ स्थापित करता है अर्थात् वह पृथ्वीको अन्नादि प्रसूत करनेके कार्यमें समर्थ बनाता है ॥ ३३ ॥

१७४९ पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः ।
पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥ ३४ ॥

१७५० इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः ।
अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥ ३५ ॥

१७५१ सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि ।
ते धीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः परिभुवः परि भवन्ति विश्वतः ॥ ३६ ॥

अर्थ— [१७४९] (पृथिव्याः परं अन्तं त्वा पृच्छामि) इस पृथ्वीका आखिरी अन्त तुमसे पूछता हूँ। (यत्र भुवनस्य नाभिः पृच्छामि) सब भुवनके केन्द्रके विषयमें मैं पूछता हूँ। (वृष्णः अश्वस्य रेतः त्वा पृच्छामि) बलवान् अश्वके वीर्यके विषयमें मैं पूछता हूँ। (वाचः परमं व्योम पृच्छामि) वाणीका परम आकाश अर्थात् उत्पत्ति स्थान मैं पूछता हूँ ॥ ३४ ॥

[१७५०] (इयं वेदिः पृथिव्याः परः अन्तः) यह वेदि पृथ्वीका अन्तिम छोर है (अयं यज्ञः भुवनस्य नाभिः) यह यज्ञ संसारका केन्द्र है। (अयं सोमः वृष्णः अश्वस्य रेतः) यह सोम बलवान्का वीर्य है और (अयं ब्रह्मा वाचः परमं व्योम) यह ब्रह्मा वाणीका परम उत्पत्ति स्थान है ॥ ३५ ॥

[१७५१] (भुवनस्य रेतः) संसारका सार (सप्त अर्धगर्भा) अर्ध भागके सात पुत्रोंमें है, जो (विष्णोः प्रदिशा विधर्मणि तिष्ठन्ति) व्यापक देवकी आज्ञासे अपने अपने धर्ममें स्थित हैं। (ते विपश्चितः ते परिभुवः) वे बुद्धिमान् और सर्वव्यापक होकर (धीतिभिः मनसा विश्वतः परिभवन्ति) अपनी बुद्धि और मनसे सब ओरसे घेरते हैं ॥ ३६ ॥

भावार्थ— इस पृथ्वीका अन्तिम भाग कौनसा है ? सम्पूर्ण जगत्का केन्द्र कौनसा है ? बलवान् अश्वका वीर्य कौनसा है ? और वाणीका परम उत्पत्ति स्थान कौनसा है ? ये चार प्रश्न इस मंत्रमें पूछे गए हैं, जिनका उत्तर अगले मंत्रमें दिया गया है ॥ ३४ ॥

पृथ्वी माताका प्रतीक है। यह वेदि अर्थात् प्रसवस्थान ही मातृत्वकी पराकाष्ठा है। मातृत्वसे बढकर और कोई तत्त्व नहीं। माता सबसे बडी होती है। इसलिए मातृत्व अन्तिम पराकाष्ठा है। स्त्रीपुरुषका संयोगरूपी यज्ञ ही इस संसारका केन्द्र है। यदि स्त्रीपुरुष संयोगरूपी यज्ञ न हो तो संसारका उच्छेद हो जाए। सोम अर्थात् सन्तान ही बलवान् और शक्तिशाली पुरुषका रेत है। जबतक सन्तान न हो, तबतक वीर्यकी सार्थकता नहीं होती। किसी पुरुषके वीर्यके बलवान् होनेका प्रमाण उसकी सन्तान है। निर्बल वीर्यके सन्तान नहीं होती। यह आत्मा ही वाणीका उत्पत्ति स्थान है। आत्मा कुछ अभिप्राय व्यक्त करनेकी इच्छासे इन्द्रियोंके साथ संयुक्त होकर वाणी उत्पन्न करती है ॥ ३५ ॥

परमेष्ठीके दो भाग हैं, एक परार्ध और दूसरा अवरार्ध। परार्ध प्रजापति है और अवरार्ध प्रकृति। इस अवरार्ध प्रकृतिके मन, प्राण और पंचभूतरूपी सात पुत्र हैं, जिनसे यह सारा विश्व बनता है। ये सभी तत्त्व व्यापक प्रजापतिकी आज्ञासे अपना अपना काम करते हैं। तथा सारे विश्वको घेरे रहते हैं। विश्वमें ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है, जो मन, प्राण और पंचभूतोंसे रहित हो ॥ ३६ ॥

१७५२ न वि जानामि यदिवेदमस्मि निण्यः संनद्धो मनसा चरामि ।
यदा मागन् प्रथमजा ऋतस्यादिद वाचो अश्नुवे भागमस्याः ॥ ३७ ॥
१७५३ अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतो ऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्यन्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम् ॥ ३८ ॥
१७५४ ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः ।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत् तद् विदुस्त इमे समासते ॥ ३९ ॥
१७५५ सुयवसाद् भगवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम ।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥ ४० ॥

अर्थ— [१७५२] (न विजानामि यत् इव इदं अस्मि) मैं नहीं जानता कि मैं किसके सदृश हूँ। (निण्यः सन्नद्धः मनसा चरामि) अन्दर बंधा हुआ मैं मनसे चलता हूँ। (यदा ऋतस्य प्रथमजाः मा अगन्) जब सत्यका प्रथम प्रवर्तक मेरे समीप आया, (आत् इत् अस्याः वाचः भागं अश्नुवे) उसी समय इसके वाणीके भागको मैंने प्राप्त किया ॥ ३७ ॥

[१७५३] (अमर्त्यः मर्त्येन सयोनिः) अमर आत्मा मरण धर्मवाले शरीरके साथ एक उत्पत्तिस्थानमें प्राप्त होकर (स्वधया गृभीतः अपाङ् प्राङ् एति) अपनी धारणा शक्तिसे युक्त होकर नीचे तथा ऊपर जाता है। (ता शश्वन्ता विषूचीना) वे दोनों शाश्वत रहनेवाले और विविध गतिवाले तथा (वियन्ता) विरुद्ध गतिवाले हैं। लोग उनमेंसे (अन्यं निचिक्युः) एकको जानते हैं (अन्यं न निचिक्युः) दूसरेको नहीं जानते ॥ ३८ ॥

[१७५४] (परमे व्योमन् ऋचः अक्षरे) परम आकाशके समान व्यापक और ऋचाओंके अक्षरके समान अविनाशी परमात्मा है, (यस्मिन् विश्वे देवाः अधि निषेदुः) जिसमें सम्पूर्ण देवगण स्थित हैं, (यः तत् न वेद) जो उस परब्रह्मको नहीं जानता, (किं ऋचा करिष्यति) वह इन वेदमंत्रोंसे क्या करेगा, (यः इत् तत् विदुः) जो उस परमतत्त्वको जानते हैं, (ते इमे सं आसते) वे ये विद्वान् उत्तम स्थानमें बैठते हैं ॥ ३९ ॥

[१७५५] हे (अघ्न्ये) न मारे जाने योग्य गौ ! तू (सु-यवसाद् भगवती भूयाः) उत्तम घास खानेवाली और भाग्यशालिनी हो। (अथः) और (वयं भगवन्तः स्याम) हम सब भी भाग्यवान् हों, (विश्वदानीं तृणं अद्धि) सर्वदा तृण भक्षण कर और (आचरन्ती शुद्धं उदकं पिब) और भ्रमण करती हुई शुद्ध जल पी ॥ ४० ॥

भावार्थ— यह आत्मा किसके समान है, यह विदित नहीं। यह आत्मा इस शरीरमें बद्ध होकर रहती हुई भी मनसे बड़ी हलचल करती है। जिस समय यह आत्मा सत्यके पहले प्रवर्तक परमात्माको प्राप्त होती है, उसी समय इस दिव्य मंत्रकी वाणीका भाग्य इसे प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥

यह आत्मा अमर है, तथापि मरण धर्मवाले शरीरके साथ रहनेके कारण यह विविध योनियोंमें जाती है। यह अपनी धारणशक्तिके साथ ही इस शरीरमें आती और शरीरसे पृथक् होती है। ये दोनों शरीर और आत्मा शाश्वत और गतिमान् हैं। पर दोनोंकी गतियोंमें अन्तर है। इनमें प्रथम शरीरको तो प्रत्यक्ष देखते हैं इसलिए इसके बारेमें जानते हैं, पर आत्मा अप्रत्यक्ष होनेके कारण उसके बारेमें नहीं जानते ॥ ३८ ॥

वह परब्रह्म आकाशके समान व्यापक और वेदमंत्रोंके अक्षरोंके समान अविनाशी है। जिस प्रकार परमात्मामें सब देवगण निवास करते हैं, उसी प्रकार उसकी वाणी वेदमंत्रोंके अक्षर समूहोंमें देवगण निवास करते हैं। जो मनुष्य उस परमात्माकी सत्तामें विश्वास नहीं करता, जो नास्तिक है, वह इन वेदमंत्रोंका क्या सदुपयोग कर सकेगा? पर जो परमात्मापर श्रद्धा करते हैं, वे इन मंत्रोंका मनन करके परमस्थान मोक्षको प्राप्त करते हैं ॥ ३९ ॥

गाय न मारी जाये। वह सर्वत्र तृण भक्षण करती हुई भाग्यशालिनी हो और उसके साथ हम सब भाग्यशाली हों। यह गाय शुद्ध घास खाती हुई और शुद्ध जल पीती हुई सर्वत्र संचार करे। गाय सौभाग्यकी प्रतीक है, उसकी सर्वत्र सुरक्षा हो ॥ ४० ॥

१७५६ गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्ष—त्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी ।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् ॥ ४१ ॥
१७५७ तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ।
ततः क्षरत्यक्षरं तद् विश्वमुप जीवति ॥ ४२ ॥
१७५८ शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण ।
उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरा—स्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥ ४३ ॥
१७५९ त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम् ।
विश्वमेको अभि चष्टे शचीभि—र्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—[१७५६] (गौरीः सलिलानि तक्षत्) गौ निश्चयसे जलोंको हिलाती हुई (मिमाय) शब्द करती है। (सा एकपदी द्विपदी चतुष्पदी) वह एक पादवाली, दो पादवाली, चारपादवाली (अष्टापदी नवपदी बभूवुषी) आठपादोंवाली, नौ पादोंवाली तथा बहुत होनेकी इच्छा करनेवाली यह वाक् (सहस्राक्षरा) हजारों अक्षरोंवाली होकर (परमे व्योमन्) परम व्योममें व्याप्त रहती है ॥ ४१ ॥

[१७५७] (तस्याः समुद्राः अधि विक्षरन्ति) उस गौसे समुद्र बहते हैं, (तेन चतस्रः प्रदिशः जीवन्ति) उस कारण चारों दिशायें जीवित रहती हैं, (ततः अक्षरं क्षरति) उससे पानी बरसता है, (तत् विश्वं उप जीवति) उससे सारा विश्व जीता है ॥ ४२ ॥

[१७५८] (विषूवता परः आरात् अवरेण) अनेक रूपोंसे बहुत दूर और पास भी (एना शकमयं धूमं अपश्यं) इस शक्तिवाले धूमको मैंने देखा। वहाँ (वीराः उक्षाणं पृश्निं अपचन्त) वीर शक्तिदायक सोमको पका रहे हैं। (तानि धर्माणि प्रथमानि आसन्) वे धर्म प्रथम थे ॥ ४३ ॥

[१७५९] (त्रयः केशिनः ऋतुथा विचक्षते) तीन किरणवाले पदार्थ ऋतुके अनुसार दिखाई देते हैं। (एषां एकः संवत्सरे वपते) इनमेंसे एक वर्षभरमें एक बार उपजता है, (एकः शचीभिः विश्वं अभिचष्टे) दूसरा शक्तियोंसे विश्वको प्रकाशित करता है, (एकस्य ध्राजिः ददृशे) एककी गति दीखती है, परन्तु उसका (रूपं न) रूप नहीं दीखता ॥ ४४ ॥

भावार्थ— यह वाक्‌रूपी गौ अर्थात् काव्यमयी वाक् एक, दो, चार, आठ अथवा नौ पदोंवाले छन्दोंमें विभक्त हुई है, वह अनेक प्रकारकी है, हजार अक्षरोंतक इसकी सीमा है। यह सारे आकाशमें व्याप्त है। शब्द आकाशका गुण है, इसलिए वाणी भी आकाशका गुण ही है ॥ ४१ ॥

उस गौ अर्थात् सूर्यरश्मियोंसे जल प्रवाह बहते हैं, अर्थात् उन सूर्यरश्मियोंके कारण जल बरसता है, और उस वृष्टिके कारण जलप्रवाह बहते हैं। उस जलसे सारी दिशायें प्रसन्न रहती हैं। जल बरसनेके बाद चारों ओर हरियाली छा जाती है। उस जलसे सारा विश्व जीता है। इस वृष्टि जलके साथ सूर्यमें स्थित प्राण या जीवनशक्ति इस पृथ्वी पर आती है, उस जीवनशक्तिसे सारा विश्व जीवित रहता है ॥ ४२ ॥

पास और बहुत दूर भी मैंने धुंवेको देखा और उससे अग्निका अनुमान किया। उस अग्निपर वीरगण शक्तिदायक सोमको पकाते हैं। ये सब यज्ञ कर्मके प्रारम्भमें होते थे ॥ ४३ ॥

तीन किरणवाले पदार्थ अग्नि, आदित्य और वायु हैं। अग्नि वर्षभरमें एक बार यज्ञमें प्रज्ज्वलित होती है। अर्थात् वर्षारंभमें एक बार यज्ञाग्नि प्रज्ज्वलित की जाती है, और वह सतत प्रज्ज्वलित रहती है, उसी अग्निसे प्रतिदिनका यज्ञ निष्पन्न होता है। दूसरा सूर्य अपनी किरणोंसे समस्त संसारको प्रकाशित करता है। तीसरा वायु है। उसकी गति तो ज्ञात होती है, पर उसका रूप देखनेमें नहीं आता ॥ ४४ ॥

१७६० चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥ ४५ ॥
१७६१ इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहु—रथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद् विप्रा बहुधा वद—न्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ ४६ ॥
१७६२ कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।
त आववृत्रन् त्सदनादृतस्या—दिद् घृतेन पृथिवी व्युद्यते ॥ ४७ ॥
१७६३ द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।
तस्मिन् त्साकं त्रिशता न शङ्कवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः ॥ ४८ ॥

अर्थ— [१७६०] (वाक् चत्वारि पदानि परिमिता) वाणीके चार स्थान नापे गए हैं। (ये मनीषिणः ब्राह्मणाः) जो ज्ञानी ब्राह्मण हैं, वे (तानि विदुः) उनको जानते हैं। उनमेंसे (त्रीणि गुहा निहिता) तीन वाणियोंके स्थान गुप्त हैं, वे (न इंगयन्ति) प्रकट नहीं होते। (मनुष्याः वाचः तुरीयं वदन्ति) मनुष्य वाणीके चतुर्थ रूपको बोलते हैं ॥ ४५ ॥

[१७६१] (एकं सत्) एक सत् वस्तु है, उसीका (विप्राः बहुधा वदन्ति) ज्ञानी लोग अनेक प्रकारसे वर्णन करते हैं। उसीको (इन्द्रं मित्रं वरुणं अग्निं आहुः) इन्द्र, मित्र, वरुण और अग्नि कहते हैं। (अथ) और (सः दिव्यः सुपर्णः गरुत्मान्) वह दिव्य सुपर्ण और गरुत्मान् है ॥ ४६ ॥

[१७६२] (अपः वसानाः) जलको अपने साथ लेती हुई (सुपर्णाः हरयः) उत्तम गतिशील सूर्यकिरणें (कृष्णं नियानं दिवं) सबका आकर्षण करनेवाले यानरूप सूर्यपर (उत्पतन्ति) चढती हैं। (ते ऋतस्य सदनात्) वे जलके स्थानरूप अन्तरिक्षसे (आववृत्रन्) नीचे आती हैं, (आत् इत् घृतेन पृथिवी वि उद्यते) इसके बाद ही जलसे भूमि भीग जाती है ॥ ४७ ॥

[१७६३] (एकं चक्रं) एक चक्रको (द्वादश प्रधयः) बारह घेरे रहते हैं, उस चक्रको (त्रीणि नभ्यानि) तीन नाभियां हैं, (कः उ तत् चिकेत्) कोई विद्वान् ही उन्हें जानता है। (तस्मिन्) उस चक्रमें (चलाचलासः) अत्यन्त गति करनेवाली (त्रिशता षष्टि शंकवः अर्पिताः) तीनसौ साठ खूंटियां लगी हुई हैं ॥ ४८ ॥

भावार्थ— परा, पश्यन्ति, मध्यमा और वैखरी ये वाणीके चार रूप हैं। इनमें परा वाणीका स्थान मूलाधार है। वहांसे यह प्रकट होकर हृदयमें पहुंचती है, उस हृदयस्थानीय वाणीको पश्यन्ति कहते हैं, वहांसे गुजरती हुई वाणी बुद्धिमें पहुंचती है, उस बुद्धिस्थानीय वाणीका नाम मध्यमा है। उस बुद्धिमेंसे निकलकर वाणी कण्ठ और मुखमें प्रकट होती है। यही वैखरी वाणी है। इनमें मूलाधारकी परा, हृदयस्थानीया पश्यन्ति, बुद्धिस्थानीया मध्यमा ये तीन वाणियां गुहा अर्थात् गुप्तस्थानोंमें छिपी हुई होनेके कारण योगी जन ही इसे जान सकते हैं और जो कण्ठस्थानीया चौथी वाणी है, उसे सभी मनुष्य बोलते हैं और सभी जानते हैं ॥ ४५ ॥

यद्यपि परमात्मा एक ही सत् तत्त्व है, पर उसका वर्णन ज्ञानी जन अनेक तरहसे करते हैं। ऐश्वर्यवान् होनेसे वही इन्द्र, हितकारी होनेसे वही मित्र, श्रेष्ठ होनेसे वरुण, प्रकाशक होनेसे अग्नि, उत्तम होनेसे सुपर्ण गरुत्मान् है ॥ ४६ ॥

सूर्य किरणें अपने साथ जलको उठाती हैं, वह जल उनके साथ ऊपर मेघमंडलमें पहुंचता है, वहांसे वह फिर वृष्टि द्वारा नीचे आता है और भूमिको भिगाता है ॥ ४७ ॥

संवत्सररूपी चक्र है, जिसमें बारह मासरूपी अरे लगे हुए हैं। ग्रीष्म, शरद्, वर्षा रूपी तीन नाभियां हैं और ३६० दिनरूपी कीलें उस चक्रमें लगी हुई हैं। ये दिनरूपी कीलें हमेशा चक्र हैं अर्थात् हमेशा गति करती रहती हैं ॥ ४८ ॥

१७६४ यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभू॒र्येन॒ विश्वा॒ पुष्यं॑सि वार्याणि ।
यो रत्नधा॑ वसुविद् यः सुदत्रः॒ सर॑स्वति॒ तमि॒ह धात॑वे कः ॥ ४९ ॥

१७६५ य॒ज्ञेन॑ य॒ज्ञम॑यजन्त दे॒वा॒स्तानि॒ धर्मा॑णि प्रथ॒मान्या॑सन् ।
ते ह॒ नाकं॑ महि॒मानः॑ सचन्त॒ यत्र॒ पूर्वे॑ सा॒ध्याः सन्ति॑ दे॒वाः ॥ ५० ॥

१७६६ स॒मा॒नमे॒तदु॑दक॒मुच्चै॒त्यव॒ चाहो॑भिः ।
भूमिं॑ प॒र्जन्या॒ जिन्व॑न्ति॒ दिवं॑ जिन्वन्त्य॒ग्नय॑ः ॥ ५१ ॥

१७६७ दि॒व्यं सु॑प॒र्णं वा॑य॒सं बृ॒हन्त॒मपां॒ गर्भं॑ दर्श॒तमोष॑धीनाम् ।
अ॒भीप॒तो वृ॒ष्टिभि॑स्तर्पयन्त॒ं सर॑स्वन्त॒मव॑से जोहवीमि ॥ ५२ ॥

अर्थ— [१७६४] हे (सरस्वति) सरस्वती ! (यः स्तनः ते शशयः) जो स्तन तेरे शरीरमें वर्तमान है, (यः मयोभूः) जो सुखकारक है (येन विश्वा वार्याणि पुष्यसि) जिससे सभी वरणीय धनोंको तू पुष्ट करती है, (यः रत्नधा वसुवित्) जो रत्नोंको धारण करनेवाला तथा धनोंको प्राप्त करानेवाला है, (यः सुदत्रः) जो कल्याणकारी दान करनेवाला है, (तं धातवे इह कः) तू उस स्तनको हमारे पीनेके लिए इधर कर ॥ ४९ ॥

[१७६५] (देवाः यज्ञेन यज्ञं अयजन्त) देवगण यज्ञसे यज्ञ पुरुषकी पूजा करते हैं, (तानि धर्माणि प्रथमानि आसन्) वे धर्म उत्कृष्ट हैं । (ते महिमानः नाकं सचन्ते) वे महत्व प्राप्त करते हुए उस सुखपूर्ण लोकको प्राप्त करते हैं, (यत्र पूर्वे साध्याः देवाः सन्ति) जहां पूर्वके साधनसम्पन्न देव रहते हैं ॥ ५० ॥

[१७६६] (एतत् समानं उदकं) यह एक ही जल (अहभिः उच्चै एति) दिनमें ऊपर जाता है और (अव) नीचे आता है । (पर्जन्याः भूमिं जिन्वन्ति) मेघ भूमिको तृप्त करते हैं और (दिवं अग्नयः जिन्वन्ति) द्युलोकको अग्नियां तृप्त करती हैं ॥ ५१ ॥

[१७६७] मैं (दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्तं) द्युलोकमें उत्पन्न होनेवाले, उत्तम गतिवाले, निरन्तर गति करनेवाले महान्, (अपां गर्भं ओषधीनां दर्शतं) जलोंके केन्द्र, औषधियोंको पुष्ट करनेवाले (वृष्टिभिः अभीपतः तर्पयन्तं) वृष्टि होनेके कारण चारों ओरसे बहनेवाले जलप्रवाहोंसे भूमिको तृप्त करनेवाले (सरस्वन्तं) इस सूर्यको (अवसे जोहवीमि) अपनी रक्षाके लिए बुलाता हूँ ॥ ५२ ॥

भावार्थ— सरस्वतीका स्तन अर्थात् प्यार सुखकारक, धनोंको पुष्टकारक, रत्नोंको धारण करनेवाला, धनोंको प्राप्त करानेवाला तथा कल्याणकारक है, वह प्यार सभी प्राप्त करें ॥ ४९ ॥

श्रेष्ठ याजक अपनी आत्माके योगसे परमात्माकी उपासना करते हैं । यह मानसोपासनाकी यज्ञविधि सबसे श्रेष्ठ और मुख्य है । इस प्रकारकी उपासना करनेवाले श्रेष्ठ उपासक ही इस सुखपूर्ण स्वर्गधामको प्राप्त करते हैं जहां पूर्वकालके ऐश्वर्यवान् देव रहते थे ॥ ५० ॥

जल एक ही है, वही जल गर्मीके दिनोंमें सूर्यकिरणोंसे संतप्त होकर वाष्परूपमें ऊपर जाता है और वही जल वर्षाऋतुमें नीचे आता है । उस नीचे आनेवाले जल अर्थात् वर्षासे भूमि तृप्त होती है और अग्नियोंमें दी जानेवाली आहुतियोंसे द्युलोक तृप्त होता है । अग्निमें दी जानेवाली आहुतियां सूक्ष्म होकर द्युलोकमें जाती हैं ॥ ५१ ॥

यह सूर्य उत्तम और निरन्तर गति करनेवाला है । सूर्यप्रकाशके कारण ही ओषधियोंमें रस आता है और वे पुष्ट होती हैं । इसीलिए सूर्यको जगत्की आत्मा कहा है । उसीके कारण वृष्टि होती है । सूर्यकिरणें बादलोंको प्रेरित करती हैं और तब बादल पानी बनकर बरसते हैं और उस वर्षाके कारण बहनेवाले जलप्रवाह भूमिको तृप्त करते हैं ॥ ५२ ॥

[१६५]

(ऋषिः- १, २, ४, ६, ८, १०-१२ इन्द्रः; ३, ५, ७, ९ मरुतः; १३-१५ अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- मरुत्वानिन्द्रः । छन्दः-त्रिष्टुप् ।)

१७६८ कया शुभा सवयसः सनीळाः समान्या मरुतः सं मिमिक्षुः ।
कया मती कुत एतास एते ऽर्चन्ति शुष्मं वृषणो वसूया ॥ १ ॥

१७६९ कस्य ब्रह्माणि जुजुषुर्युवानः को अध्वरे मरुत आ ववर्त ।
श्येनाँ इव ध्रजतो अन्तरिक्षे केन महा मनसा रीरमाम ॥ २ ॥

१७७० कुतस्त्वमिन्द्र माहिनः सन्नेको यासि सत्पते किं त इत्था ।
सं पृच्छसे समराणः शुभानैर्वोचेस्तन्नो हरिवो यत् ते अस्मे ॥ ३ ॥

१७७१ ब्रह्माणि मे मतयः शं सुतासः शुष्म इयर्ति प्रभृतो मे अद्रिः ।
आ शासते प्रति हर्यन्त्युक्थेमा हरी वहतस्ता नो अच्छ ॥ ४ ॥

---

[१६५]

अर्थ—[१७६८] (सवयसः सनीळाः) एक समान आयुवाले, एक घरमें रहनेवाले (मरुतः) मरुत् गण (कया शुभा समान्या) किस शुभ जलसे (सं मिमिक्षु) सींचते हैं। (कया मती) किस बुद्धिसे युक्त होकर तथा (कुतः एतासः) कहाँसे आकर (एते वृषणः) ये बलशाली मरुत् (वसूया शुष्मं अर्चन्ति) धनकी इच्छासे बलकी उपासना करते हैं ॥ १ ॥

[१७६९] (युवानः) सदा तरुण रहनेवाले ये मरुत् (कस्य ब्रह्माणि जुजुषुः) किसके स्तोत्रोंका सेवन करते हैं? इन (मरुतः) मरुतोंको (कः अध्वरे ववर्त) कौन अपने यज्ञकी ओर मोडता है। (श्येनाः इव अन्तरिक्षे ध्रजतः) श्येन पक्षिके समान अन्तरिक्षमें जानेवाले इन मरुतोंको (केन महा मनसा रिरमाम) किस बडे मनसे प्रसन्न करें? ॥ २ ॥

[१७७०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं माहिनः सन्) तू महान् होता हुआ भी (एकः कुतः यासि) अकेला ही कहाँ जाता है ? (सत्पते) हे उत्तम सज्जनोंके पालक इन्द्र ! (ते इत्था किं) तेरी यह दशा क्यों है ? (समराणः सं पृच्छसे) हमारे साथ चलते हुए तुझसे हम पूछते हैं। हे (हरिवः) घोडोंवाले इन्द्र ! (अस्मे ते यत्) हमसे तुझे जो कुछ भी कहना हो, (तत् नः) वह हमसे (शुभानैः वोचेः) मीठी वाणीसे कह ॥ ३ ॥

१ यत्, तत् शुभानैः वोचेः— जो कुछ भी कहना हो, वह मीठी और शुभ वाणीमें ही बोला जाए।

[१७७१] (ब्रह्माणि, मतयः सुतासः) स्तोत्र, बुद्धियाँ एवं सोम (मे शं) मेरे लिए सुखकारक हों (मे शुष्मः अद्रिः) मेरा शक्तिशाली वज्र (प्रभृतः इयर्ति) प्रेरित होकर शत्रुओंपर जाता है। (इमा उक्था प्रति हर्यन्ति आ शासते) ये स्तोत्र मेरी तरफ आते हैं और मेरी प्रशंसा करते हैं। (ता हरि नः अच्छ वहतः) वे दोनों घोडे हमें लक्ष्यकी तरफ सीधे ले आएं ॥ ४ ॥

भावार्थ— ये मरुत् एक समान आयुवाले, एक घरमें हिलमिलकर रहनेवाले शुभ जलसे इस पृथ्वीको सींचते हैं और उत्तम बुद्धिसे बलकी उपासना करते हैं ॥ १ ॥

सदा तरुण रहनेवाले ये मरुत् उसीके यज्ञमें जाते हैं और उसीके स्तोत्र सुनते हैं, जिसका मन विशाल होता है। जो संकुचित मनोवृत्तिवाला है, उसकी प्रार्थना कोई भी नहीं सुनता ॥ २ ॥

इन्द्र बहुत महान् है, वह इस योग्य है, कि उसके पीछे अनुचर चलें, पर फिर भी वह हर कामके लिए अकेला ही चल पडता है, वह दूसरेपर आश्रित नहीं रहता। इसी तरह सब अपने बलपर भरोसा रखें और आत्मविश्वाससे सब कार्य करें। जो भी आपसमें कुछ कहना या बोलना हो, मीठी वाणीसे ही बोलें, कभी भी बातचीतमें कटुता पैदा न करें ॥ ३ ॥

ज्ञान और बुद्धियाँ मेरे लिए सुखकारक हों। ज्ञान और उत्तम बुद्धियोंवाला हमेशा सुखी रहता है। वीर मनुष्योंके शस्त्रास्त्र शत्रुओंके विनाशके लिए हमेशा तैय्यार रहें। ऐसे वीरोंकी सभी प्रशंसा करें ॥ ४ ॥

१७७२ अतो वयमन्तमेभिर्युजानाः स्वक्षत्रेभिस्तन्वः शुम्भमानाः ।
महोभिरेताँ उप युज्महे न्वि—न्द्र स्वधामनु हि नो बभूथ ॥ ५ ॥
१७७३ क्व स्या वो मरुतः स्वधासीद् यन्मामेकं समधत्ताहिहत्यै ।
अहं ह्युग्रस्तविषस्तुविष्मान् विश्वस्य शत्रोरनमं वधस्नैः ॥ ६ ॥
१७७४ भूरिं चकर्थ युज्येभिरस्मे समानेभिर्वृषभ पौंस्येभिः ।
भूरीणि हि कृणवामा शविष्ठे—न्द्र क्रत्वा मरुतो यद् वशाम । ॥ ७ ॥
१७७५ वधीं वृत्रं मरुत इन्द्रियेण स्वेन भामेन तविषो बभूवान् ।
अहमेता मनवे विश्वशचन्द्राः सुगा अपश्चकर वज्रबाहुः ॥ ८ ॥

अर्थ— [१७७२] (अतः वयं) इसलिए हम (स्वक्षत्रेभिः अन्तमेभिः युजानाः) अत्यन्त बलशाली घोड़ोंसे युक्त होकर तथा (महोभिः तन्वः शुंभमानाः) तेजोंसे अपने शरीरोंको सजाकर (एतान् उपयुज्महे) इन शक्तियोंका उपयोग शत्रुविनाशके लिए करते हैं। हे (इन्द्र) इन्द्र ! (न स्वधां नः अनुबभूथ) अपनी धारणशक्तिको हमारे अनुकूल करो ॥ ५ ॥

[१७७३] हे (मरुतः) मरुतो ! (वः स्या स्वधा क्व आसीत्) तुम्हारी वह शक्ति कहां थी (यत् एकं मां अहिहत्ये सं अधत्त) जिसे तुमने अकेले मुझमें शत्रुनाशके अवसरपर स्थापित की थी। (अहं हि उग्रः तविषः तुविष्मान्) मैं वीर, बलवान् और शक्तिशाली हूँ, मैंने (वधस्नैः विश्वस्य शत्रोः अनमं) शस्त्रास्त्रोंसे सभी शत्रुओंको झुका दिया ॥ ६ ॥

[१७७४] हे (वृषभ) बलवान् इन्द्र ! तूने (अस्मे युज्येभिः समानेभिः पौंस्येभिः) हमारे उपयोगी और अपने सदृश बलोंसे युक्त होकर (भूरि चकर्थ) बहुत काम किए हैं। हे (शविष्ठ इन्द्र) बलवान् इन्द्र ! (भूरीणि हि कृणवाम) हमने भी बहुतसे वीरताके काम किए हैं। हम (मरुतः) मरुद्गण (यत् वशाम) जो कुछ भी चाहते हैं (क्रत्वा) उद्योगोंसे प्राप्त करते हैं ॥ ७ ॥

१ यत् वशाम, क्रत्वा— जो कुछ भी मनुष्य चाहे, उद्योग करके उसे प्राप्त कर ले।

[१७७५] हे (मरुतः) मरुतो ! मैंने (इन्द्रियेण वृत्रं वधीं) अपनी शक्तिसे वृत्रको मारा और (स्वेन भामेन तविषः बभूवान्) अपनी ही शक्तिसे मैं शक्तिशाली हुआ। (वज्रबाहुः अहं) वज्रको हाथोंमें धारण करनेवाले मैंने (मनवे) मनुष्योंके हितके लिए (विश्वः चन्द्राः सुगाः एताः अपः चकर) सबको आनंद देनेवाले और आसानीसे बहनेवाले इन जलोंको प्रकट किया ॥ ८ ॥

१ स्वेन भामेन तविषः बभूवान्— मनुष्यको चाहिए कि वह अपने बलसे ही बलवान् बने।

भावार्थ— सबके पास उत्तमोत्तम पशु हों, सबके शरीर तेजस्वी हों। इन तेजों और शक्तियोंका उपयोग लोग अपने शत्रुओंका विनाश करनेके लिए करें। इन्द्रकी शक्ति भी ऐसे वीरोंके अनुकूल हो। इन्द्रकी शक्ति यदि प्रतिकूल हो जाए, तो जीवनका नाश हो जाए। शरीरमें आत्मा इन्द्र है और उसकी शक्तियां इन्द्रियें हैं, यदि ये इन्द्रियें और आत्मा मनुष्यके प्रतिकूल हो जाए तो मनुष्यका नाश निश्चित है। जो अपने शरीरको तेजस्वी बनाता है, अपनी शक्तियोंका सदुपयोग रहता है, उसकी आत्मा व इन्द्रियें उसके अनुकूल रहती हैं ॥ ५ ॥

यह इन्द्र इतना वीर है कि वह समय पडनेपर बिना मरुतोंकी सहायता लिए ही शत्रुओंका नाश कर देता है। वह अपने शस्त्रास्त्रोंसे भयंकरसे भयंकर शत्रुओंको भी झुका देता है ॥ ६ ॥

मरुतोंके उपयोगी और इन्द्रके शक्तिके समान ही शक्तियोंसे युक्त होकर इन्द्र अनेकों वीरताके काम कर लेता है। इन्द्रके अलावा भी मरुत् बहुत काम करते हैं। वे जो कुछ भी पाना चाहते हैं, अपने उद्योगोंसे प्राप्त कर लेते हैं। मनुष्य जो कुछ भी पाना चाहे, उसके लिए उद्योग करे, बिना उद्योगके कुछ भी पाना मुश्किल है ॥ ७ ॥

१७७६ अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न त्वावाँ अस्ति देवता विदानः ।
न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ॥ ९ ॥
१७७७ एकस्य चिन्मे विभ्वस्त्वोजो या नु दधृष्वान् कृणवै मनीषा ।
अहं ह्युग्रो मरुतो विदानो यानि च्यवमिन्द्र इदीश एषाम् ॥ १० ॥
१७७८ अमन्दन्मा मरुतः स्तोमो अत्र यन्मे नरः श्रुत्यं ब्रह्म चक्र ।
इन्द्राय वृष्णे सुमखाय मह्यं सरव्ये सखायस्तन्वे तनूभिः ॥ ११ ॥

अर्थ— [१७७६] हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (ते अनुत्तं न किः) तुझसे प्रेरित न हुआ हुआ ऐसा कुछ भी नहीं है । (त्वावान् विदानः देवता न अस्ति) तेरे जैसा विद्वान् देवता और कोई नहीं है । हे (प्रवृद्ध) महान् इन्द्र ! (यानि करिष्या कृणुहि) जिन कर्तव्योंको तुम करते हो, उसे (न जातः नशते न जायमानः) न पहले उत्पन्न हुआ कोई देव व्याप सकता है और न आगे होनेवाला ही व्याप सकता है ॥ ९ ॥

१ ते अनुत्तं नकिः— इस इन्द्रसे अप्रेरित ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है ।
२ यानि करिष्या कृणुहि, न जातः नशते न जायमानः— जिन कर्तव्योंको यह करता है, उसका अन्त पानेवाला न कोई हुआ है और न होगा ।

[१७७७] (या नु दधृष्वान्) जिन कर्मोंको मैं करना चाहता हूं, इन्हें (मनीषा कृणवै) मन लगाकर करता हूँ, इसलिए (एकस्य मे) अकेले मेरा ही (ओजः विभु अस्तु) बल चारों ओर फैलता है । हे (मरुतः) मरुतो ! (हि अहं उग्रः विदानः) क्योंकि मैं वीर और विद्वान् हूँ, इसलिए (इन्द्रः) मैं इन्द्र (यानि च्यवं) जिनकी तरफ जाता हूँ, (एषां इत् ईशे) उनका ही स्वामी बन जाता हूँ ॥ १० ॥

१ या नु दधृष्वान् मनीषा कृणवै— जिन कर्मोंको इन्द्र करना चाहता है, उन्हें मन लगाकर करता है, इसी लिए—
२ मे ओजः विभुः— उसका यश चारों ओर फैलता है
३ अहं उग्रः विदानः— यह इन्द्र वीर और विद्वान् है । इसलिए—
४ यानि च्यवं एषां इत् ईशे— यह जिनकी तरफ जाता है, उनका स्वामी बन जाता है ।

[१७७८] हे (नरः सखायः मरुतः) नेता तथा मित्र मरुतो ! तुमने (मे) मेरे लिए (यत् श्रुत्यं ब्रह्म चक्र) जो प्रसिद्ध स्तोत्र बनाया, (स्तोमः या अत्र अमन्दत्) उस स्तोत्रने मुझे यहां बहुत आनन्दित किया । वह स्तोत्र (इन्द्राय वृष्णे सुमखाय) ऐश्वर्यवान्, बलवान्, उत्तम यज्ञ करनेवाले (सखायः तनूभिः) मित्र तथा शक्तियोंसे युक्त (मह्यं तन्वे) मेरे पोषणके लिए हो ॥ ११ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र अपनी शक्ति ही से शक्तिशाली है, किसी दूसरेकी शक्तिका आश्रय लेकर यह वीरता नहीं दिखाता । यह इन्द्र अपनी शक्तिका उपयोग मनुष्योंका हित करनेके लिए करता है । इसीने मनुष्योंके हितके लिए जल-प्रवाहोंको प्रकट किए । इसी प्रकार मनुष्य भी अपनी शक्तिका आश्रय लेकर ही वीरता दिखाये । दूसरेकी शक्तिपर घमंड न करे । शक्ति प्राप्त करके वह अपनी शक्तिका सदुपयोग मनुष्योंकी भलाईमें करे अर्थात् शक्ति पाकर वह मनुष्योंपर अत्याचार न करे अपितु उनकी सदा भलाई ही करे ॥ ८ ॥

इस विश्वमें ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है, जिसे इन्द्र प्रेरित न करता हो । उस इन्द्र जैसा विद्वान् कोई भी देवता नहीं है । वह इन्द्र अद्वितीय विद्वान् है । अपनी विद्वत्तासे वह जो कुछ कार्य करता है, वह इतना विशाल होता है कि उसका पार पानेवाला अभीतक न कोई हुआ है न कोई होगा ॥ ९ ॥

यह इन्द्र जिन कामोंको करना चाहता है, उन्हें मन लगाकर करता है और उन कामोंको पूर्णतातक ले जाता है इसी लिए वह सर्वत्र यशस्वी होता है । सर्वत्र यशस्वी होनेका एक उत्तम साधन है कि जिस कामको भी मनुष्य हाथमें ले, उसे मन लगाकर करे और पूरा होनेतक उसे न छोडे । यह इन्द्र वीर और विद्वान् है, इसलिए वह जिस पदार्थकी तरफ जाता है, उसका स्वामी बन जाता है । इसी प्रकार मनुष्य भी विद्वान् और वीर बने । ऐसा मनुष्य जिस पदार्थको भी चाहेगा, उसका वह स्वामी बनकर उपभोग करेगा ॥ १० ॥

मरुतोंने इस इन्द्रके लिए जो स्तोत्र बनाये, उन स्तोत्रोंसे वह बहुत आनंदित हुआ । यह इन्द्र ऐश्वर्यवान्, बलवान् और उत्तम यज्ञ करनेवाला है । तथा शक्तिशाली इस इन्द्रके शरीरको यह स्तोत्र पुष्ट करनेवाला हो ॥ ११ ॥

१७७९ एवेदेते प्रति मा रोचमाना अनेद्यः श्रव एषो दधानाः ।
संचक्ष्या मरुतश्चन्द्रवर्णा अच्छान्त मे छदयाथा च नूनम् ॥ १२ ॥

१७८० को न्वत्र मरुतो मामहे वः प्र यातन सखींरच्छा सखायः ।
मन्मानि चित्रा अपिवातयन्त एषां भूत नवेदा म ऋतानाम् ॥ १३ ॥

१७८१ आ यद् दुवस्याद् दुवसे न कारुरस्माञ्चक्रे मान्यस्य मेधा ।
ओ षु वर्त्त मरुतो विप्रमच्छेमा ब्रह्माणि जरिता वो अर्चत् ॥ १४ ॥

१७८२ एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १५ ॥

अर्थ— [१७७९] हे (मरुतः) मरुतो ! (एव इत्) इसी प्रकार (मा प्रति रोचमानाः) मुझपर प्रेम रखते हुए (अनेद्यः इषः श्रवः दधानाः) प्रशंसनीय धन और अन्नको धारण करते हुए (चन्द्रवर्णाः) आनन्ददायक रूपोंवाले (एते) ये तुम (मे संचक्ष्य) मुझे लक्ष्य करके (मे अच्छान्त आ छदयाथ) मुझे यशसे ढक दो ॥ १२ ॥

[१७८०] हे (मरुतः) मरुतो ! (अत्र वः कः मामहे) यहां तुम्हारी कौन पूजा करता है ? हे (सखायः) मित्रो ! (सखीन् अच्छ प्र यातन) मित्रके समान अपने हित करनेवालोंके पास तुम जाओ। हे (चित्राः) सुन्दर मरुतो ! (मन्मानि अपिवातयन्त भूत) स्तोत्रोंको सम्पूर्ण करनेवाले होओ और (मे ऋतानां एषां) मेरे द्वारा किए जानेवाले इन सत्य स्तोत्रोंको (नवेदाः) जाननेवाले होओ ॥ १३ ॥

[१७८१] हे (मरुतः) मरुतो ! (दुवस्यात् दुवसे) स्तोत्रोंसे स्तुति करनेके लिए (मान्यस्य कारुः मेधा) सम्मानके योग्य स्तोताकी बुद्धि (अस्मान् आ चक्रे) हमें प्राप्त हो। (यत्) चूंकि (जरिता) स्तुति करनेवाला (इमा ब्रह्माणि वः अर्चत्) इन स्तोत्रोंसे तुम्हारी स्तुति करता है, इसलिए (विप्रं अच्छ आ वर्त) उस ज्ञानीकी तरफ तुम घूमो ॥ १४ ॥

[१७८२] हे (मरुतः) मरुतो ! (एषः स्तोमः वः) यह स्तोत्र तुम्हारे लिए है, (इयं गीः) यह वाणी तुम्हारे लिए है, अतः तुम (मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः) आनन्द देनेवाले तथा सम्मानके योग्य स्तोताके (तन्वे) शरीर की पुष्टिके लिए (आ यासीष्ट) आओ और (वयां) हम भी (इषं वृजनं जीरदानुं विद्याम) अन्न, बल और जय दिलानेवाले धनको प्राप्त करें ॥ १५ ॥

भावार्थ— हे मरुतो ! मुझपर प्रेम रखो, तथा मेरे लिए धनादि धारण करो। मुझे यशसे युक्त करो। जो मनुष्य इन मरुतोंको प्रसन्नता प्राप्त करता है, वह धन, अन्न और यशसे युक्त होता है ॥ १२ ॥

हे सैनिको ! यहां तुम्हारी कौन पूजा करता है और कौन तुमसे द्वेष करता है, यह अच्छी तरह जानकर मित्रके समान तुम्हारा जो हित करता है, उसके पास जाओ और वे जिस प्रकारकी पूजा करें, उस पूजाको तुम पूर्ण करो और वह जिसके स्तोत्र कर रहा है, वह उसका उद्देश्य पूर्ण करो ॥ १३ ॥

हे मरुतो ! हमें ऐसी उत्तम बुद्धि प्राप्त हो कि जिससे हम तुम्हारी उत्तम स्तुति कर सकें। यह स्तुति करनेवाला स्तोत्रोंसे तुम्हारी स्तुति करता है, इसलिए उस ज्ञानीकी तरफ तुम घूमो अर्थात् उसपर अपनी कृपाकी दृष्टि डालो ॥ १४ ॥

हे मरुतो ! इस स्तोत्र और श्रेष्ठ वाणीका उच्चारण तुम्हारे लिए किया जा रहा है। यह वाणी तुम्हें आनन्द देनेवाली हो। तुम्हारी दयासे हम सम्मानके योग्य हों। तुम हमारी तरफ आवो, ताकि हम अन्न, बल आदि प्राप्त कर सकें ॥ १५ ॥

[१६६]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- मरुतः । छन्दः- जगती; १४-१५ त्रिष्टुप् ।)

१७८३ तन्नु वोचाम रभसाय जन्मने पूर्वं महित्वं वृषभस्य केतवे ।
ऐधेव यामन् मरुतस्तुविष्वणो युधेव शक्रास्तविषाणि कर्तन ॥ १ ॥

१७८४ नित्यं न सूनुं मधु बिभ्रत उप क्रीळन्ति क्रीळा विदथेषु घृष्वयः ।
नक्षन्ति रुद्रा अवसा नमस्विनं न मर्धन्ति स्वतवसो हविष्कृतम् ॥ २ ॥

१७८५ यस्मा ऊमासो अमृता अरासत रायस्पोषं च हविषा ददाशुषे ।
उक्षन्त्यस्मै मरुतो हिता इव पुरू रजांसि पयसा मयोभुवः ॥ ३ ॥

---

[१६६]

अर्थ— [१७८३] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (रभसाय जन्मने) पराक्रम करनेके लिए सुयोग्य जीवन प्राप्त हो, इसलिए और (वृषभस्य केतवे) बलिष्ठोंके नेता बननेके लिए (तत्) उस तुम्हारे (पूर्वं) प्राचीन कालसे चले आ रहे (महित्वं) महत्त्वका (नु वोचाम) हम ठीक ठीक वर्णन रहे हैं । हे (तुविष्वनः) गरजनेवाले तथा (शक्राः) समर्थ वीरो ! (युधा इव) युद्धवेलाके समानही (यामन्) शत्रुदल पर चढाई करते हुए (ऐधा इव) धधकते हुए अग्निकी तरह (तविषाणि कर्तन) शत्रुओंकी सेनाको काटो ॥ १ ॥

[१७८४] (नित्यं सूनुं न) पिता जिस प्रकार अपने औरस पुत्रको खाद्यवस्तु देता है, वैसे ही सबके लिए (मधु बिभ्रतः) मिठास भरे रसको धारण करनेवाले (घृष्वयः) युद्धसंघर्षमें निपुण और (क्रीळाः) क्रीडासक्त मनोवृत्तिवाले ये वीर (विदथेषु उप क्रीळन्ति) युद्धोंमें, मानों खेलकूदमें लगे हुए हों, इस भाँति कार्य करना शुरू करते हैं । (रुद्राः) शत्रुको रुलानेवाले ये वीर (नमस्विनं) उपासकोंको (अवसा नक्षन्ति) स्वकीय शक्तिसे सुरक्षित रखते हैं । (स्व-तवसः) अपने निजी बलसे युक्त ये वीर (हविस्-कृतं) हविष्यान्न देनेवालेको (न मर्धन्ति) कष्ट नहीं पहुँचाते हैं ॥२॥

[१७८५] (ऊमासः) रक्षण करनेवाले, (अ-मृताः) अमर वीर मरुतोंने (यस्मै हविषा ददाशुषे) जिस हविष्यान्न देनेवालेको (रायः पोषं) धनकी पुष्टि (अरासत) प्रदानकी-बहुतसा धन दिया (अस्मै) उसके लिए (हिताः इव) कल्याणकारक मित्रोंके समान (मयो-भुवः) सुख देनेवाले ये वीर (रजांसि) हल चलाई भूमि पर (पुरु पयसा) बहुत जलसे (उक्षन्ति) वर्षा करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— हम सामर्थ्यवान् बनें और नेताके पद पर बैठ सकें, इसीलिए हम वीरोंके काव्यका गायन तथा पठन करते हैं । युद्ध छिड जानेके मौके पर जिस तरह तुम्हारी हलचलें या तैयारियाँ हुआ करती हैं, उन्हें वैसे ही अक्षुण्ण बनाये रखें । उन तैयारियोंमें तनिक भी ढीलापन न रहने पाये, ऐसी सावधानी रखनी चाहिए ॥ १ ॥

जिस तरह पिता अपने पुत्रको खानेकी चीजें देता है, उसी प्रकार वीरोंको चाहिए कि वे भी सभी लोगोंको पुत्रवत् माने, उन्हें खानपानकी वस्तुएँ प्रदान करें। ये वीर हमेशा खिलाडीपनसे पारस्परिक बर्ताव करें और धर्मयुद्धमें कुशलतापूर्वक अपना कार्य करते रहें । शत्रुओंको हटाकर साधु जनोंका संरक्षण करना चाहिए और दानी उदार लोगोंको किसी प्रकारका कष्ट न देकर सुख पहुँचाना चाहिए ॥ २ ॥

सबके संरक्षणका तथा उदार दानी पुरुषोंके भरणपोषणका बीडा वीरोंको उठाना पडता है । चूँकि वीर समूची जनताके हितकर्ता हैं, अतएव वे सबको सुख पहुँचाते हैं ॥ ३ ॥

१७८६ आ ये रजाँसि तविषीभिरव्यत प्र व एवासः स्वयतासो अध्रजन् ।
भयन्ते विश्वा भुवनानि हर्म्या चित्रो वो यामः प्रयतास्वृष्टिषु ॥ ४ ॥

१७८७ यत् त्वेषयामा नदयन्त पर्वतान् दिवो वा पृष्ठं नर्या अचुच्यवुः ।
विश्वो वो अज्मन् मयते वनस्पतीं रथीयन्तीव प्र जिहीत ओषधिः ॥ ५ ॥

१७८८ युयं न उग्रा मरुतः सुचेतुना ऽरिष्टग्रामाः सुमतिं पिपर्तन ।
यत्रा वो दिद्युद् रदति क्रिविर्दती रिणाति पश्वः सुधितेव बर्हणा ॥ ६ ॥

अर्थ—[१७८६] (ये एवासः) जो तुम वेगवान् वीर (तविषीभिः) अपने सामर्थ्यों तथा बलोंद्वारा (रजांसि अव्यत) सब लोगोंका संरक्षण करते हो, तथा (स्व-यतासः) स्वयं ही अपना नियंत्रण करनेवाले तुम जब शत्रुपर (प्र अध्रजन्) वेगपूर्वक दौड जाते हो और जब (प्र-यतासु वः ऋष्टिषु) अपने हथियारोंको आगे धकेलते हो, उस समय (विश्वा भुवनानि) सारे भुवन, (हर्म्या) बडे बडे प्रसाद भी (भयन्ते) भयभीत हो उठते हैं, क्योंकि (वः यामः) तुम्हारी यह हलचल (चित्रः) सचमुच आश्चर्यजनक है ॥ ४ ॥

[१७८७] (त्वेष-यामाः) वेगपूर्वक चढाई करनेवाले ये वीर (यत्) जब (पर्वतान् नदयन्त) पहाडोंको शब्दायमान बना डालते हैं, (वा) उसी प्रकार (नर्याः) जनताका हित करनेवाले ये वीर जब (दिवः पृष्ठं अचुच्यवुः) अन्तरिक्षके पृष्ठभाग परसे जाने लगते हैं, उस समय हे वीरो ! (वः अज्मन्) तुम्हारी इस चढाईके फलस्वरूप (विश्वः वनस्पतिः) सभी वृक्ष (भयते) भयव्याकुल हो जाते हैं और सभी (ओषधिः) औषधियाँ भी (रथीयन्ती इव) रथ पर बैठी हुई महिलाके समान (प्र जिहीते) विकंपित हुआ करती हैं ॥ ५ ॥

[१७८८] (सु-धिता इव) अच्छे प्रकार पकडे हुए (बर्हणा) हथियारके समान (यत्र) जिस समय (वः) तुम्हारा (क्रिविर्-दती) तीक्ष्ण रूपसे देदानेदार और (दिद्युत्) चमकीली तलवार (रदति) शत्रुदलके टुकडे टुकडे कर डालती है, तथा (पश्वः रिणाति) जानवरोंको भी मार डालती है, उस समय हे (उग्राः मरुतः) शूर तथा मनमें भय पैदा करनेवाले वीर मरुतो ! (यूयं) तुम (सुचेतुना) उत्तम अन्तःकरणपूर्वक (अ-रिष्ट-ग्रामाः) गाँवोंका नाश न करते हुए (नः सु-मतिं) हमारी अच्छी बुद्धिको बढाते हो ॥ ६ ॥

भावार्थ— ये वीर सबकी रक्षामें दत्तचित्त हुआ करते हैं और जब अपना नियंत्रण स्वयं ही करते हैं तथा शत्रुदल पर टूट पडते हैं, तब स्वयं स्फूर्तिसे यह सब कुछ होता है, इसलिए सभी लोग सहम जाते हैं, क्योंकि इनका आक्रमण कोई साधारणसी बात नहीं है । इन वीरोंकी चढाईमें भीषणता पर्याप्त मात्रामें पाई जाती है ॥ ४ ॥

जब हमले करनेवाले शूर लोग शत्रुदल पर चढाई करनेके लिए पहाडोंमें तथा अन्तरिक्षमें बडे जोरसे आक्रमण कर देते हैं, तब वृक्षवनस्पति सभी विचलित हो जाते हैं ॥ ५ ॥

वीर लोग ही अन्य सज्जनोंको आश्रय देते हैं, अपने धनवैभवका भली प्रकार संरक्षण करते हैं, शत्रुओंका विनाश करते हैं और सोमरसका सेवन करके युद्धोंमें अपना प्रभाव दर्शाते हैं तथा परमात्माकी उपासना भी करते हैं । ऐसे वीर ही अन्य वीरोंकी शक्तियोंकी यथोचित जाँच करनेकी क्षमता रखते हैं ॥ ६ ॥

×

१७८९ प्र स्कम्भदेष्णा अनवभ्रराधसो ऽलातृणासो विदथेषु सुष्टुताः ।
अर्चन्त्यर्कं मदिरस्य पीतये विदुर्वीरस्य प्रथमानि पौंस्या ॥ ७ ॥
१७९० शतभुजिभिस्तमभिहुतेरघात् पुभीं रक्षता मरुतो यमावत ।
जनं यमुग्रास्तवसो विरप्शिनः पाथना शंसात् तनयस्य पुष्टिषु ॥ ८ ॥
१७९१ विश्वानि भद्रा मरुतो रथेषु वो - मिथस्पृध्येव तविषाण्याहिता ।
अंसेष्वा वः प्रपथेषु खादयो ऽक्षो वश्चक्रा समया वि वावृते ॥ ९ ॥
१७९२ भूरीणि भद्रा नर्येषु बाहुषु वक्षःसु रुक्मा रभसासो अञ्जयः ।
अंसेष्वेताः पविषु क्षुरा अधि वयो न पक्षान् व्यनु श्रियो धिरे ॥ १० ॥

अर्थ— [१७८९] (स्कम्भदेष्णाः) आश्रय देनेवाले, (अन्-अवभ्र-राधसः) जिनका धन कोई छीन नहीं सकता ऐसे, (अल-आ-तृणासः) शत्रुओंका पूरा पूरा विनाश करनेहारे तथा (सु-स्तुताः) अत्यन्त सराहनीय ये वीर (विदथेषु) युद्धस्थलों तथा यज्ञोंमें (मदिरस्य पीतये) सोमरस पीनेके लिए (अर्कं प्र अर्चन्ति) पूजनीय देवताकी भली भाँति पूजा करते हैं। क्योंकि वही (वीरस्य) वीरोंके (प्रथमानि) प्रथम श्रेणीमें परिगणनीय (पौंस्या विदुः) बल तथा पुरुषार्थ जानते हैं ॥ ७ ॥

[१७९०] हे (उग्राः) शूर, (तवसः) बलिष्ठ और (वि-रप्शिनः) समर्थ (मरुतः) वीर मरुतो ! (यं) जिसे (अभिहुतेः) विनाशसे और (अघात्) पापसे तुम (आवत) सुरक्षित रखते हो, (यं जनं) जिस मनुष्यके (तनयस्य पुष्टिषु) वह अपने बालबच्चोंका भरणपोषण कर ले, इस लिए (शंसात्) निन्दासे (पाथन) बचाते हो, (तं) उसे (शतभुजिभिः) सैकड़ों उपभोगके साधनोंसे युक्त (पूर्भिः) दुर्गोंसे (रक्षत) रक्षित करो ॥ ८ ॥

[१७९१] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (वः रथेषु) तुम्हारे रथोंमें (विश्वानि भद्रा) सभी कल्याणकारक वस्तुएँ रखी हुई हैं। (वः अंशेषु आ) तुम्हारे कंधोंपर (मिथः स्पृध्या इव) मानों एक दूसरेसे स्पर्धा करनेवाले (तविषाणि) बलयुक्त हथियार (आहिता) लटकाये हुए हैं। (प्र-पथेषु) सुदूर मार्गोंमें यात्रा करनेके लिए (खादयः) खानेपीनेकी चीजोंका संग्रह पर्याप्त है। (वः अक्षः चक्रा) तुम्हारे रथके पहियोंको जोड़नेवाला डंडा तथा उसके चक्र (समया वि वावृते) उचित समयपर घूमते हैं ॥ ९ ॥

[१७९२] (नर्येषु) जनताका हित करनेवाले इन वीरोंकी (बाहुषु) भुजाओंमें (भूरीणि भद्रा) यथेष्ट कल्याणकारक शक्ति विद्यमान है, (वक्षःसु रुक्माः) उनके वक्षःस्थलोंपर सुवर्णके हार तथा (अंसेषु) कन्धोंपर (एताः) विभिन्न रंगवाले, (रभसासः) सुदृढ (अञ्जयः) भूषण हैं, उनके (पविषु अधि) वज्रोंपर (क्षुराः) तीक्ष्ण धाराएँ हैं, (वयः पक्षान् न) पंछी जिस तरह पंख धारण करते हैं, उसी प्रकार (अनुश्रियः वि धिरे) भाँति भाँतिकी शोभाएँ वे धारण करते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ— अपने तीक्ष्ण हथियारोंसे वीर सैनिक शत्रुका विनाश कर देते हैं, इतना ही नहीं अपितु शत्रुके पशुओंका भी वध कर डालते हैं। हे वीरो ! अपने शुभ अंतःकरणसे हमारी सुबुद्धि बढाओ और हमारे ग्रामोंका विनाश मत करो ॥ ७ ॥

जो बलवान् तथा वीर होते हैं, वे जनताको नाश तथा पापकृत्यों एवं निंदासे बचानेकी चेष्टामें सफलता पाते हैं। इन वीरोंके भुजबलके सहारे जनता सुरक्षित और अकुतोभय होकर अच्छी नगरीमें निवास करती है और वहाँपर अपने पुत्रपौत्रोंका संरक्षण करती है ॥ ८ ॥

वीरोंके रथोंपर सभी आवश्यक युद्धसाधनोंका संग्रह रहता है। वे अपने शरीरोंपर हथियार धारण करते हैं। दूरकी यात्राके लिए सभी जरूरी खानेपीनेकी चीजें रथोंपर इकट्ठी की जाती हैं और उनके रथोंके पहिये भी उचित वेलामें जैसे घूमने चाहिए, वैसे ही फिरते हैं ॥ ९ ॥

१७९३ महान्तो पह्वा विभ्वो३ विभूतयो दूरेदृशो ये दिव्या इव स्तृभिः ।
मन्द्राः सुजिह्वाः स्वरितार आसभिः संमिश्ला इन्द्रे मरुतः परिष्टुभः ॥ ११ ॥

१७९४ तद् वः सुजाता मरुतो महित्वनं दीर्घं वो दात्रमदितेरिव व्रतम् ।
इन्द्रश्चन त्यजसा वि हुणाति तज्जनाय यस्मै सुकृते अराध्वम् ॥ १२ ॥

१७९५ तद् वो जामित्वं मरुतः परे युगे पुरू यच्छंसममृतास आवत ।
अया धिया मनवे श्रुष्टिमाव्यां साकं नरो दंसनैरा चिकित्रिरे ॥ १३ ॥

अर्थ— [१७९३] (ये मरुतः) जो वीर मरुत् (महा) अपनी महत्ताके कारण (महान्तः) बड़े (विभ्वः) सामर्थ्यवान् (विभूतयः) ऐश्वर्यशाली, तथा (स्तृभिः) नक्षत्रोंसे युक्त (दिव्याः इव) स्वर्गीय देवतागणकी भांति सुहानेवाले, (दूरेदृशः) दूरदर्शी, (मन्द्राः) हर्षित और (सुजिह्वाः) अच्छी आभ रहनेके कारण अपने (आसभिः) मुखोंसे (स्वरितारः) भलीभाँति बोलनेवाले हैं। वे (इन्द्रे संमिश्लाः) इन्द्रको सहायता पहुंचानेवाले हैं, अतः (परिस्तुभः) सभी प्रकारसे सराहनीय हैं ॥ ११ ॥

[१७९४] हे (सु जाताः मरुतः) कुलीन वीर मरुतो ! (वः) तुम्हारा (तत् महित्वनं) वह बड़प्पन सचमुच प्रसिद्ध है। (अदितेः इव दीर्घं व्रतं) भूमिके विस्तृत व्रतके समान ही (वः दात्रं) तुम्हारी उदारता बहुत बड़ी है, (यस्मै) जिस (सु-कृते) पुण्यात्मा (जनाय) मानवको तुम (त्यजसा) अपनी त्यागवृत्तिसे जो (अराध्वं) दान देते हो, (तत्) उसे (इन्द्रः चन वि हुणाति) इन्द्र भी विनष्ट नहीं कर सकता है ॥ १२ ॥

[१७९५] हे (अ-मृतासः मरुतः) अमर वीर मरुद्गण ! (वः तत् जामित्वं) तुम्हारा वह भाईपन बहुत प्रसिद्ध है, (यत्) जिस (परे युगे) प्राचीन कालमें निर्मित (शंसं) स्तुतिको सुनकर तुम हमारी (पुरु आवत) बहुत रक्षा कर चुके हो और उसी (अया धिया) इस बुद्धिसे (मनवे) मनुष्यमात्रके लिए (साकं नरः) मिलजुलकर पराक्रम करनेवाले नेता बने हुए तुम (दंसनैः) अपने कर्मोंसे (श्रुष्टिं आव्य) ऐश्वर्यकी रक्षा करके उसमें विद्यमान (आ चिकित्रिरे) दोषोंको दूर हटाते हो ॥ १३ ॥

भावार्थ— जनताका हित करनेके लिए वीरोंके बाहु प्रस्फुटित होने तथा आगे बढ़ने लगते हैं और उनकी छातीपर एवं कंधोंपर विभिन्न वीरभूषण चमकते हैं। उनके शस्त्र तीक्ष्ण धाराओंसे युक्त होते हैं। पक्षी जिस भाँति अपने डैनोंसे सुहाने लगते हैं, उसी प्रकार ये वीर इन सभी आभूषणों एवं आयुधोंसे बड़े भले प्रतीत होते हैं ॥ १० ॥

वीरोंमें श्रेष्ठ गुण विद्यमान हैं, इसी कारणसे वे महान् तथा ऊँचे पदपर विराजमान होते हैं और वे अत्यधिक सामर्थ्यवान्, ऐश्वर्यवान्, दूरदर्शी, तेजस्वी, उल्लसित, मधुर भाषण करनेहारे और परमात्माके कार्यका बीड़ा उठानेके कारण सभीके लिए प्रशंसनीय हैं ॥ ११ ॥

वीर पुरुष बड़ी भारी उदारतासे जो दान देते हैं, उसीसे उनका बड़प्पन प्रकट होता है। पृथ्वीके समान ही ये बड़े विशालचेता एवं उदार हुआ करते हैं। शुभ कर्म करनेवालेको इनसे जो सहायता मिलती है, वह अप्रतिम तथा बेजोड़ ही है। एक बार ये वीर अगर कुछ कार्यकर्ताको दे डालें, तो कोई भी इस दानको छीन नहीं सकता। वीरोंकी देनको छीन लेनेकी मजाल भला किसमें होगी ? विशेषतया जब सुयोग्य कार्यकर्ता उस दानको पानेके अधिकारी हों ॥ १२ ॥

तुम वीरोंका भ्रातृप्रेम सचमुच अवर्णनीय है। अतीतकालमें तुम भलीभाँति हमारी रक्षा कर ही चुके हो, लेकिन आगामी युगमें उसी उदार मनोवृत्तिसे सारे मानवोंकी रक्षाके लिए तुम सभी वीर मिलजुलकर एक दिलसे अपने कर्मों द्वारा जिस रक्षणके गुरुतर कार्यको उठाना चाहते हो, वह भी पूर्णतया त्रुटिहीन एवं अविकल है ॥ १३ ॥

१७९६ येन॑ दी॒र्घं म॑रुतः शु॒शवा॑म यु॒ष्माके॑न परीणसा तुरासः ।
आ यत् त॒तने॑न वृ॒जने॒ जना॑स॒ एभि॑र्य॒ज्ञेभि॒स्तदृ॑भीष्टिम॒श्याम् ॥ १४ ॥
१७९७ ए॒षः व॒ः स्तोमो॑ मरुत इ॒यं गी॒र्मान्दा॑र्यस्य मा॒न्यस्य॑ का॒रोः ।
एषा या॑सीष्ट त॒न्वे॑ व॒यां विद्या॑मे॒षं वृ॒जनं॑ जी॒रदा॑नुम् ॥ १५ ॥

[१६७]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- १ इन्द्रः; २-११ मरुत । छन्दः- त्रिष्टुप्; (१० पुरस्ताज्ज्योतिः)।)

१७९८ सह॑स्रं त इन्द्रो॒तयो॑ नः स॒हस्रा॑मिषो हरिवो गू॒र्ततमाः ।
स॒हस्रं॒ रायो॑ मादयध्यै स॒हस्रि॑ण उप॑ नो यन्तु वा॒जाः ॥ १ ॥
१७९९ आ नो॑ऽवो॒भिर्म॒रुतो॑ या॒न्त्वच्छा॒ ज्येष्ठे॑भिर्वा बृ॒हद् दि॒वैः सु॒मा॒याः ।
अध॒ यदे॑षां नि॒युतः॑ पर॒माः स॑मु॒द्रस्य॑ चिद् घ॒नय॑न्त॒ पारे॑ ॥ २ ॥

अर्थ— [१७९६] हे (तुरासः मरुतः) वेगवान् वीर मरुतो ! (येन युष्माकेन परीणसा) जिस तुम्हारे ऐश्वर्यके सहयोगसे हम (दीर्घं) बडे बडे कार्य (शुशवाम) करते हैं और (यत्) जिससे (जनासः) सभी लोग (वृजने) संग्रामोंमें (आ ततनन्) चतुर्दिक् फैल जाते हैं- विजयी बन जाते हैं- (तत् इष्टिं) उस तुम्हारी शुभ इच्छाको हम (एभिः यज्ञेभिः) इन यज्ञकर्मोंसे (अभि अस्यां) प्राप्त हों ॥ १४ ॥

[१७९७] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (मान्दार्यस्य) हर्षित मनोवृत्तिके तथा (मान्यस्य) संमानार्ह (कारोः) कारीगर या कविका किया हुआ (एषः स्तोमः) यह काव्य तथा (इयं गीः) यह प्रशंसा (वः) तुम्हारे लिए है । यह सारी सराहना हमारे (इषा) अन्नके साथ (तन्वे) तुम्हारे शरीरकी वृद्धि करनेके लिए तुम्हें (आ यासीष्ट) प्राप्त हो उसी प्रकार (वयां) हमें (इषं) अन्न, (वृजनं) बल और (जीर-दानुं) शीघ्र विजय (विद्याम) प्राप्त हो ॥ १५ ॥

[१६७]

[१७९८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नः ऊतयः) हमारी रक्षा करनेके लिए (ते सहस्रं) तेरे हजारों साधन हैं, हे (हरिवः) घोडोंवाले इन्द्र ! तेरे (गूर्ततमाः सहस्रं इषः) प्रशंसाके योग्य हजारों तरहके अन्न तथा (मादयध्यै सहस्रं रायः) हमें आनन्दित करनेके लिए हजारों तरहके धन तथा (सहस्रिणः वाजाः) हजारों तरहके बल (नः उप यन्तु) हमें प्राप्त हों ॥ १ ॥

[१७९९] (सु-मायाः) ये अच्छे कौशलसे युक्त (मरुतः) वीर मरुद्गण अपने (अवोभिः) संरक्षणक्षम शक्तियोंके साथ और (ज्येष्ठेभिः) श्रेष्ठ (बृहत्-दिवैः वा) रत्नोंके साथ (नः अच्छ आ यान्तु) हमारे निकट आ जाएँ । (अध यत्) और तदुपरान्त (एषां परमाः निऋतः) इनके उत्तम घोडे (समुद्रस्य पारे चित्) समुद्रके भी परे जाकर (धनयन्त) धन लानेका प्रयत्न करें ॥ २ ॥

भावार्थ— तुम्हारी महान् सहायता पाकर ही हम बडे बडे कर्म कर सके हैं और उसी तुम्हारी सहायतासे सभी लोग भाँति भाँतिके युद्धोंमें विजयी बन सके हैं । हमारी यही लालसा है कि, अब शुरू किये जानेवाले कर्मोंमें वही तुम्हारी पुरानी सहायता हमें मिले ॥ १४ ॥

उच्च कोटिके कविका बनाया हुआ यह काव्य तथा यह अन्न इन श्रेष्ठ वीरोंका उत्साह बढानेके लिए उन्हें प्राप्त हो और हमें अन्न सामर्थ्य तथा विजय मिले ॥ १५ ॥

इस इन्द्रके हजारों तरहके रक्षाके साधन हमें प्राप्त हों, अनेकों तरहके प्रशंसनीय अन्न, अनेक तरहके आनन्ददायक धन तथा हजारों तरहके बल हमें प्राप्त हों ॥ १ ॥

निपुण वीर अपनी संरक्षणक्षम शक्तियोंके साथ हमारी रक्षा करें और दिव्य रत्न प्रदान करके हमारी संपत्ति बढावें । उसी प्रकार इनके घोडे भी समुद्रपार जाकर वहाँसे संपत्ति लायें और हममें वितीर्ण करें ॥ २ ॥

१८०० मिम्यक्ष येषु सुधिता घृताची हिरण्यनिर्णिगुपरा न ऋष्टिः ।
गुहा चरन्ती मनुषो न योषा सभावती विदथेव सं वाक् ॥ ३ ॥
१८०१ परा शुभ्रा अयासो यन्या साधारण्येव मरुतो मिमिक्षुः ।
न रोदसी अप नुदन्त घोरा जुषन्त वृधं सख्याय देवाः ॥ ४ ॥
१८०२ जोषद् यदीमसुर्या सचध्यै विधितस्तुका रोदसी नृमणाः ।
आ सूर्येव विधतो रथं गात् त्वेषप्रतीका नभसो नेत्या ॥ ५ ॥
१८०३ आस्थापयन्त युवतिं युवानः शुभे निमिश्लां विदथेषु पज्राम् ।
अर्को यद् वो मरुतो हविष्मान् गायद् गाथं सुतसोमो दुवस्यन् ॥ ६ ॥

अर्थ—[१८००] (सु-धिता) भली भाँति सुदृढ ढंगसे पकडी हुई, (घृताची) तेज बनाई हुई (हिरण्यनिर्णिक्) सुवर्णकी तरह चमकनेवाली (ऋष्टिः) तलवार (उपरा न) मेघमण्डलमें विद्यमान् बिजलीके समान (येषु) जिन वीरोंके निकट (सं मिम्यक्ष) सदैव रहा करती है, वह (गुहा चरन्ती) परदेमें संचार करती हुई (मनुषः योषा न) मानवकी नारीके समान कभी अदृश्य रहती है और कभी कभी (विदथ्या इव वाक्) यज्ञसभाकी वाणीकी भाँति (सभा-वती) सभासदोंमें प्रकट हुआ करती है ॥ ३ ॥

[१८०१] (शुभ्राः) तेजस्वी, (अयासः) शत्रु पर हमला करनेवाले (मरुतः) वीर मरुत् (साधारण्या इव) सामान्य नारीके साथ जैसे लोग वर्ताव रखते हैं, उसी तरह (यव्या) जौ उत्पन्न करनेवाली धरती पर (परा मिमिक्षुः) बहुत वर्षा कर चुके हैं। (घोराः) उन्हें देखते ही मनमें तनिक भय उत्पन्न करनेवाले मरुतोंने (रोदसी) आकाश एवं धरतीको (न अप नुदन्त) दूर नहीं हटा दिया। अर्थात् उनकी उपेक्षा नहीं की, क्योंकि (देवाः) प्रकाशमान उन मरुतोंने (सख्याय) सबसे मित्रता प्रस्थापित करनेके लिए ही (वृधं) बडप्पनका (जुषन्त) अंगीकार किया है ॥ ४ ॥

[१८०२] (असु-र्या) जीवन देनेहारी और (नृ-मनाः) वीरों पर मन रखनेवाली (रोदसी) धरती या विद्युत् (तत् ईं) जो इनके (सचध्यै) सहवासके लिए (जोषत्) उनकी सेवा करती है। वह (वि-सित-स्तुका) केश सँवारकर ठीक बांधे हुए (त्वेषप्रतीका) तेजस्वी अवयववाली (सूर्या इव) सूर्यासावित्रीके समान (विधतः रथं) विधाताके रथपर (नभसः इत्या न) सूर्यकी गतिके समान विशेष गतिसे (आ गात्) आ पहुँची ॥ ५ ॥

[१८०३] हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (यत्) जब (अर्कः) पूजनीय, (हविष्मान्) हविष्यान्न समीप रखनेवाला और (सुत-सोमः) जिसने सोमरस निचोड रखा है, वह (वः दुवस्यन्) तुम वीरोंकी पूजा करनेहारा उपासक (विदथेषु) यज्ञोंमें (गाथं) स्तोत्रका (आ गायत्) गायन करता है, तब (युवानः) तुम युवक वीर (नि-मिश्लां) नित्य सहवासमें रहती हुई (पज्रां) बलशाली (युवतिं) नवयौवना-स्वपत्नीको (शुभे) अच्छे मार्गमें, यज्ञमें (अस्थापयन्त) प्रस्थापित करते हो, ले आते हो ॥ ६ ॥

भावार्थ— वीरोंकी तलवार श्रेष्ठ फौलादकी बनी हुई होती है और वह तीक्ष्ण एवं स्वर्णवत् चमकीली दीख पडती है। वीर लोग उसे बहुत मजबूत तरहसे हाथमें पकडे रहते हैं। तथापि वह मानवी महिलाके समान कभी कभी मियानमें छिपी पडी रहती है और यज्ञिय मंत्रघोषके समान वह किन्हीं अवसरोंपर युद्धके जारी रहनेपर बाहर अपना स्वरूप दर्शाती है ॥ ३ ॥

जो शूर तथा वीर हैं, वे उर्वरा भूमिको बडे परिश्रमपूर्वक जोतते हैं और मेघ भी ऐसी धरती पर यथेष्ट वर्षा करते हैं। जिस प्रकार सामान्य नारीसे कोई भी सम्बन्ध रखता है, उसी प्रकार ये वीर भी भूलोक एवं द्युलोकमें विद्यमान सब चीजोंसे मित्रतापूर्वक सम्पर्क प्रस्थापित करते हैं। इसीसे इन वीरोंको बडप्पन प्राप्त हुआ है ॥ ४ ॥

वीरोंकी पत्नी वीरों पर असीम प्रेम करती है और वह खुद सँवारकर तथा बन-ठनके यों साजसिंगार करके जैसे सावित्री पतिके घर जानेके लिए विधाताके रथ पर बैठ गयी थी वैसे ही पतिगृह पहुँचनेके लिए वह भी वीरोंके रथ पर चढ जाती है ॥ ५ ॥

जब उपासक वीरोंकी प्रशंसा करते हैं, तब वीरोंकी धर्मपत्नी सन्मार्ग पर चलती हुई अपने पतिका यश बढाती है ॥ ६ ॥

१८०४ प्र तं विवक्मि वक्म्यो य एषां मरुतां महिमा सत्यो अस्ति ।
सचा यदीं वृषमणा अहंयुः स्थिरा चिज्जनीर्विहते सुभागाः ॥ ७ ॥
१८०५ पान्ति मित्रावरुणाववद्या—चयत ईमर्यमो अप्रशस्तान् ।
उत च्यवन्ते अच्युता ध्रुवाणि वावृध ईं मरुतो दातिवारः ॥ ८ ॥
१८०६ नहि नु वो मरुतो अन्त्यस्मे आरात्ताच्चिच्छवसो अन्तमापुः ।
ते धृष्णुना शवसा शूशुवांसो ऽर्णो न द्वेषो धृषता परि ष्ठुः ॥ ९ ॥
१८०७ वयमद्येन्द्रस्य प्रेष्ठा वयं श्वो वोचेमहि समर्ये ।
वयं पुरा महि च नो अनु द्यून तन्न ऋभुक्षा नरामनु ष्यात् ॥ १० ॥

अर्थ— [१८०४] (एषां मरुतां) इन वीर मरुतोंका (यः वक्म्यः) जो वर्णनीय एवं (सत्यः) सच्चा (महिमा अस्ति) बड़प्पन है (तं प्र विवक्मि) उसका मैं भलीभाँति बखान करता हूँ। (यत् ईं) वह इस तरह कि यह (स्थिरा चित्) अटल धरती भी (सचा) इनका अनुसरण करनेवाली (वृष-मनाः) बलवानोंसे मनःपूर्वक प्रेम करनेहारी पर वीरपत्नी बननेकी (अहं-युः) अहंकार धारण करनेवाली और (सु-भागाः) सौभाग्य युक्त (जनीः) प्रजा (वहते) धारण करती है, उत्पन्न करती है ॥ ७ ॥

[१८०५] हे (मरुतः !) वीर-मरुतो ! (मित्रा-वरुणौ) मित्र एवं वरुण (अवद्यात्) निंदनीय दोषोंसे (ईं पान्ति) रक्षण करते हैं। (अर्यमा उ) अर्यमा ही (अ-प्रशस्तान्) निंदा करनेयोग्य वस्तुओंको (चयते) एक ओर कर देता है और (उत) उसी प्रकार (अ-च्युता) न हिलनेवाले तथा (ध्रुवाणि) दृढ शत्रुओंको भी (च्यवन्ते) अपने पदों परसे डिगा देते हैं, (ईं) यह तुम्हारा (दाति-वारः) दानका वर हमेशा (ववृधे) बढ़ता जाता है। तुम्हारी सहायता अधिकाधिक मिलती रहती है ॥ ८ ॥

[१८०६] हे (मरुतः !) वीर-मरुतो ! (वः शवसः) तुम्हारे सामर्थ्यकी (अन्तं) चरम सीमा (अन्ति) समीपसे या (आरात्तात् चित्) दूरसे भी (अस्मै) हमें (नहि नु आपुः) सचमुच प्राप्त नहीं हुई है। (ते धृष्णुना शवसा) वे वीर आवेशयुक्त बलसे (शूशुवांसः) बढ़नेवाले, अपने (धृषता) शत्रुदलकी धज्जियाँ उड़ानेवाले बलसे (द्वेषः) शत्रुओंको (अर्णः न) जलके समान (परि स्थुः) घेर लेते हैं ॥ ९ ॥

[१८०७] (अद्य वयं) आज हम (इन्द्रस्य प्र-हृष्टाः) इन्द्रके अतीव प्रिय बने हैं (वयं) हम (श्वः) कल भी उसी तरह उसके प्यारे बनेंगे। (पुरा वयं) पहले हम (नः) हमें (महि च) बड़प्पन मिल जाय इसलिए (द्यून् अनु) प्रतिदिन (स-मर्ये) युद्धोंमें (वोचेमहि) घोषित कर चुके हैं— प्रार्थना कर चुके (तत्) कि (ऋभु-क्षाः) वह इन्द्र (नरां) सब मानवोंमें (नः) हमें (अनु स्यात्) अनुकूल बने ॥ १० ॥

भावार्थ— वीरोंकी महिमा इतनी अवर्णनीय है कि, धरतीमातातक उनकी शूरता पर लुब्ध होकर अच्छी भाग्यशाली प्रजाका धारणपोषण करती है। इन वीरोंकी महिलाएँ भी इनके पराक्रमसे संतुष्ट होकर अच्छे गुणोंसे युक्त संतानको जन्म देती हैं ॥ ७ ॥

उपासकको मित्र, वरुण तथा अर्यमा दोषोंसे और निंदासे बचाते हैं। उसी प्रकार ये वीर सुस्थिर शत्रुओंको भी पदभ्रष्ट करके सारी प्रजाको प्रगतिशील बननेमें सहायता पहुँचाते हैं। सहायता करनेका गुण इनमें प्रतिपल बढ़ता ही रहता है ॥ ८ ॥

पराक्रम कर दिखलानेकी जो शक्ति वीरोंमें अंतर्निगूढ बनी रहती है, उसकी चरम सीमाका ज्ञान अभीतक किसीको भी नहीं। चूँकि उन वीरोंमें यह सामर्थ्य छिपा पड़ा है कि, उनके शत्रुओंको तुरन्त पराभूत तथा हतबल कर डाले, अतः वे प्रतिपल वर्धिष्णु ही बने रहते हैं। इसी दुर्दम्य शक्तिके सहारे वे शत्रुको घेरकर उसे विनष्ट कर देते हैं ॥ ९ ॥

हम प्रभुसे प्रार्थना करते हैं कि, अतीत वर्तमान एवं भविष्य तीनों कालोंमें वह हम पर कृपादृष्टि रखे जिससे हमें बड़प्पन मिले और स्पर्धामें उसकी मददसे विजयी बनें ॥ १० ॥

१८०८ एष वः स्तोमो मरुत इयं गी—र्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ११ ॥

[१६८]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- मरुतः । छन्दः- जगतीः ८-१० त्रिष्टुप् ।)

१८०९ यज्ञायज्ञा वः समना तुतुर्वणि—र्धियंधियं वो देवया उ दधिध्वे ।
आ वोऽर्वाचः सुविताय रोदस्यो—र्महे ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥ १ ॥

१८१० वज्रासो न ये स्वजाः स्वर्वसु इषं स्वरभिजायन्त धूतयः ।
सहस्रियासो अपां नोर्मय आसा गावो वन्द्यासो नोक्षणः ॥ २ ॥

अर्थ— [१८०८] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (मान्दार्यस्य) हर्षित मनोवृत्तिके तथा (मान्यस्य) सम्मानके योग्य (कारोः) कविका किया हुआ (एषः स्तोमः) यह काव्य तथा (इयं गीः) यह प्रशंसा (वः) तुम्हारे लिए है। यह सारी सराहना हमारे (इषा) अन्नके साथ (तन्वे) तुम्हारे शरीरकी वृद्धि करनेके लिए तुम्हें (अयासिष्ट) प्राप्त हो, उसी प्रकार (वयां) हम (इषं) अन्न (वृजनं) बल और (जीरदानुं) शीघ्र विजय (विद्याम) प्राप्त करें ॥ ११ ॥

[१६८]

[१८०९] (यज्ञा-यज्ञा) हर कर्ममें (वः) तुम्हारा (स-मना) मनका समभाव (तुतुर्वणिः) सेवा करनेमें त्वरा करनेवाला है; तुम अपना (धियं-धियं) हर विचार (देव-याः उ) दैवी सामर्थ्य पानेकी इच्छासे ही (दधिध्वे) धारण करते हो । (रोदस्योः) आकाश एवं पृथ्वीकी (सुविताय) सुस्थितिके लिए तथा (महे अवसे) सबके पूर्ण रक्षणके लिए (सु-वृक्तिभिः) अच्छे प्रशंसनीय मार्गोंसे (वः) तुम्हें (अर्वाचः) अपनी ओर (आ ववृत्यां) आकर्षित करता हूँ ॥ १ ॥

[१८१०] (ये) जो (वज्रासः न) सुरक्षित स्थानोंके समान सबको सुरक्षित रखते हैं और जो (स्व-जाः) अपनी निजी स्फूर्तिसे कार्य करते हैं और (स्व-तवसः) अपने बलसे युक्त होनेके कारण (धूतयः) शत्रुओंको हिला देते हैं वे (इषं) अन्नप्राप्ति तथा (स्वः) स्वप्रकाशके लिए ही (अभिजायन्त) सब तरहसे जन्मे होते हैं, वे (अपां ऊर्मयः न) जलकी तरंगोंके समान (सहस्रि-यासः) हजारों लोगोंको प्रिय होते हैं; वेही (वन्द्यासः गावः उक्षणः न) पूज्य गौ तथा बैलोंके समान (आसा) हमारे समीप रहें ॥ २ ॥

भावार्थ— उच्च कोटिके कविका बनाया हुआ यह काव्य तथा यह अन्न इन श्रेष्ठ वीरोंका उत्साह बढानेके लिए उन्हें प्राप्त हो और हमें अन्न, सामर्थ्य तथा विजय मिले ॥ ११ ॥

वीरोंके मनकी संतुलित दशा ही उन्हें हर शुभ कार्यमें प्रेरित करती है, स्फूर्ति प्रदान करती है। वे खयाल करते हैं कि, दैवी शक्ति पाकर सब लोगोंकी सुस्थिति एवं सुरक्षाके लिए ही उसका उपयोग करना चाहिए। इसीलिए ऐसे महान् वीरोंको अपने अनुकूल बनाना चाहिए ॥ १ ॥

स्वयं प्रेरणासे ही वीर सैनिक जनताका संरक्षण करनेके लिए आगे आते हैं। अपनी शक्तिसे शत्रुओंका नाश करके वे जनताको भयमुक्त करते हैं। वे मानों लोगोंको अन्न एवं तेजस्विता देनेके लिए ही जन्मे हों। पानीके समान सभी लोग उन्हें चाहते हैं और सबकी यही इच्छा है कि, गाय बैल जैसे वे अपने समीप सदैव रहें ॥ २ ॥

१८११ सोमासो न ये सुतास्तृप्तांशवो हृत्सु पीतासो दुवसो नासते ।
एषामंसेषु रम्भिणीव रारभे हस्तेषु खादिश्च कृतिश्च सं दधे ॥ ३ ॥
१८१२ अव स्वयुक्ता दिव आ वृथा ययु-रमर्त्याः कशया चोदत त्मना ।
अरेणवस्तुविजाता अवुच्यवु-र्हळहानि चिन्मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥ ४ ॥
१८१३ को वोऽन्तर्मरुत ऋष्टिविद्युतो रेजति त्मना हन्वेव जिह्वया ।
धन्वच्युतो हृषा न यामनि पुरुप्रेषा अहन्योऽ नेतशः ॥ ५ ॥
१८१४ क्व स्विदस्य रजसो महस्परं क्वावरं मरुतो यस्मिन्नायय ।
यच्च्यावयथ विथुरेव संहितं व्यद्रिणा पतथ त्वेषमर्णवम् ॥ ६ ॥

अर्थ—[१८११] (सुताः) निचोडे हुए (पीतासः) पिये हुए (हृत्सु) हृदयमें जाकर (तृप्त-अंशवः) तृप्ति करनेवाले (सोमासः न) सोमरसके समान, (दुवसः न) पूज्य मानवोंके समानही जो वीर पुरुष राष्ट्रमें (आसते) रहते हैं (एषां अंसेषु) उनके कंधों पर (रम्भिणी इव) लाठियोंको ले चढाई करनेवाली सेनाके समान हथियार (आ रारभे) विद्यमान हैं । उसी प्रकार उनके (हस्तेषु खादिः) हाथोंमें अलंकार तथा (कृतिः च) तलवार भी (सं दधे) भली प्रकार धरे हुए हैं ॥ ३ ॥

[१८१२] (स्व-युक्ताः) स्वयं ही कर्ममें निरत होनेवाले वे वीर (दिवः) द्युलोकसे (वृथा) अनायासही (अव आ ययुः) नीचे आये हुए हैं । हे (अ-मर्त्याः) अमर वीरो ! (त्मना) तुम अपने (कशया) कोडेसे घोडोंको (चोदत) प्रेरित करो । ये (अ-रेणवः) निर्मल (तुवि-जाताः) बलके लिए प्रसिद्ध तथा (भ्राजत्-ऋष्टयः) तेजस्वी हथियार धारण करनेवाले (मरुतः) वीर मरुत् (दळहानि चित्) दुर्दोंको भी (अवुच्यवुः) हिला देते हैं ॥ ४ ॥

[१८१३] हे (ऋष्टि-विद्युतः मरुतः) आयुधोंसे विराजमान वीर मरुतो ! तुम (हृषा) अपने लिए (पुरु-प्रेषाः) बहुत प्रेरणा करनेहारे हो । (धन्व-च्युतः न) धनुष्यसे छोडे हुए बाणकी तरह (अ-हन्यः) जिसे मारनेकी कोई आवश्यकता नहीं, ऐसे (एतशः न) सिखाये हुए घोडेके समान (वः अन्तः) तुममें (त्मना) स्वयं ही (जिह्वया) जीभके साथ-वाणी सहित (हन्वा इव) ठुड्डी जैसे हिलती है, वैसे ही (कः रेजति) कौन भला प्रेरणा करता है ? ॥ ५ ॥

[१८१४] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (यस्मिन्) जहाँसे (आयय) तुम आते हो, (अस्य महः रजसः) उस प्रसिद्ध विस्तृत अंतरिक्षलोकके (परं क्व स्वित्) उस ओरका छोर कौनसा है ? (अवरं क्व) और इस ओरका भी कौन है ? (यत्) जब कि तुम (सं-हितं) इकट्ठे हुए मेघोंको तथा शत्रुओंको (च्यावयथ) हिला देते हो, उस समय (अद्रिणा) वज्रसे (वि-थुरा इव) निराश्रितके समान (त्वेषं अर्णवं) उन तेजस्वी मेघों या शत्रुओंको तुम (वि पतथ) नीचे गिरा देते हो ॥ ६ ॥

भावार्थ— सोमरसके सेवनके उपरान्त जैसे हर्ष एवं उमंगमें वृद्धि होती है उसी प्रकार जो वीर जनतामें कर्म करनेका उत्साह बढाते हैं उनके कंधों पर हथियार और हाथमें ढाल तलवार दिखाई देते हैं ॥ ३ ॥

अपनी ही इच्छासे कार्य करनेवाले ये वीर दिव्यस्वरूपी हैं और निष्काम भावसे विविध कार्योंमें जुट जाते हैं । इन निर्मल एवं तेजस्वी वीरोंमें इतनी क्षमता है कि, प्रबल शत्रुओंमें भी क्या मजाल कि इनके सामने खडे रह सके ॥ ४ ॥

वीर सैनिक अपनी वृद्धिके लिए बहुत प्रयत्न करते हैं । धनुष्यसे छोडा हुआ तीर जैसे ठीक पहुँच जाता है, या भली भाँति सिखाया हुआ घोडा जैसे ठीक चलता रहता है, वैसे ही तुम जो कार्यभार उठाते हो, उसे अच्छी तरह निभाते हो । भला इसमें तुम्हें अन्तःप्रेरणा कैसे मिलती होगी ? ॥ ५ ॥

महान् तथा असीम अंतरिक्षमेंसे तुम आते हो और बादलों तथा दुश्मनोंको विचलित करते हो । एवं निराधारोंके समान उन्हें नीचे गिरा देते हो । (इस मंत्रमें बादल और शत्रुओंके बारेमें समान भाव व्यक्त किये हैं ।) ॥ ६ ॥

१८१५ सातिर्न वोऽमवती स्वर्वती त्वेषा विपाका मरुतः पिपिष्वती ।
मद्रा वो रातिः पृणतो न दक्षिणा पृथुज्रयी असुर्येव जञ्जती ॥ ७ ॥
१८१६ प्रति ष्टोभन्ति सिन्धवः पविभ्यो यदभ्रियां वाचमुदीरयन्ति ।
अव स्मयन्त विद्युतः पृथिव्यां यदी घृतं मरुतः प्रुष्णुवन्ति ॥ ८ ॥
१८१७ असूत पृश्निर्महते रणाय त्वेषमयासां मरुतामनीकम् ।
ते सप्सरासोऽजनयन्ताभ्वमादित् स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ॥ ९ ॥
१८१८ एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० ॥

अर्थ— [१८१५] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (वः सातिः न) तुम्हारी देनके समान ही (वः रातिः) तुम्हारी कृपा भी (अम-वती) बलवान्, (स्वर्-वती) सुख देनेवाली, (त्वेषा) तेजस्वी, (वि-पाका) विशेष फल देनेवाली, (पिपिष्वती) शत्रुदलको चकनाचूर करनेवाली तथा (भद्रा) कल्याणकारक है; (पृणतः दक्षिणा न) जनताको संतुष्ट करनेवाले धनाढ्य पुरुषकी दी हुई दक्षिणाके समान (पृथु-ज्रयी) विशेष दिलानेवाली और (असुर्या इव) दैवी शक्तिके समान (जञ्जती) शत्रुसे जूझनेवाली है ॥ ७ ॥

[१८१६] (यत्) जब ये वीर (पविभ्यः) रथके पहियोंसे (अभ्रियां वाचं) मेघसदृश गर्जना (उदीरयन्ति) प्रवर्तित कर देते हैं, तब (सिन्धवः) नदियाँ (प्रति स्तोभन्ति) बौखला उठती हैं (यदि) जिस समय (मरुतः) वीर मरुत् (घृतं) जल (प्रुष्णुवन्ति) बरसाने लगते हैं तब (पृथिव्यां) धरती पर (विद्युतः) बिजलियाँ मानों (अव स्मयन्त) हँसती हैं, ऐसा जान पडता है ॥ ८ ॥

[१८१७] (पृश्निः) मातृभूमिने (महते रणाय) बडे भारी संग्रामके लिए (अयासां मरुतां) गतिमान् वीर मरुतोंका (त्वेषं अनीकं) तेजस्वी सैन्य (असूत) उत्पन्न किया। (ते सप् सरासः) वे इकट्ठे होकर हलचल करनेवाले वीर (अभ्वं अजनयन्त) बडी शक्ति प्रकट कर चुके। (आत् इत्) तदुपरान्त उन्होंने (इषि-रां स्व-धां) अन्न देनेवाली अपनी धारक शक्तिको ही (परि अपश्यन्) चतुर्दिक् देख लिया ॥ ९ ॥

[१८१८] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (मान्दार्यस्य) हर्षित मनोवृत्तिके तथा (मान्यस्य) सम्मानके योग्य (कारोः) कविका किया हुआ (एषः स्तोमः) यह स्तोम यह काव्य तथा (इयं गीः) यह प्रशंसा (वः) तुम्हारे लिए हैं। यह सारी सराहना हमारे (इषा) अन्नके साथ (तन्वे) तुम्हारे शरीरकी वृद्धि करनेके लिए तुम्हें (अयासिष्ट) प्राप्त हो, उसी प्रकार (वयां) हम (इषं) अन्न (वृजनं) बल तथा (जीरदानुं) शीघ्र विजय (विद्याम) प्राप्त करें ॥ १० ॥

भावार्थ— वीरोंका दान तथा दयालुता शक्ति, सुख, तेजस्विता और कल्याण प्रदान करनेवाली है ही, पर उसीसे शत्रुका नाश करनेका सामर्थ्य भी मिल जाता है ॥ ७ ॥

(आधिभौतिक अर्थ—) इन वीरोंका रथ चलने लगे, तो मेघोंकी दहाडसी सुनाई पडती है और नदियोंको पार करते समय जलप्रवाहमें भारी खलबली मच जाती है। (आधिदैविक अर्थ—) जब वायुप्रवाह बहने लगते हैं, तब मेघगर्जना हुआ करती है, दामिनीकी दमक दीख पडती है और मूसलाधार वर्षाके फलस्वरूप नदियोंमें महान् बाढ आती है ॥ ८ ॥

शत्रुसे जूझनेके लिए मातृभूमिकी प्रेरणासे वीरोंकी प्रचंड सेना अस्तित्वमें आ गयी। एकत्रित बनकर शत्रु पर टूट पडनेवाले इन वीरोंने युद्धमें बडी भारी शक्ति प्रकट की और उन्होंने देखा कि, उस शक्तिमें अन्नका सृजन करनेकी क्षमता थी ॥ ९ ॥

उच्चकोटिके कविका बनाया हुआ यह काव्य तथा यह अन्न इन श्रेष्ठ वीरोंका उत्साह बढानेके लिए उन्हें प्राप्त हों और हमें अन्न, सामर्थ्य तथा विजय मिले ॥ १० ॥

×

[१६९]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप्, चतुष्पदा विराट् ।)

१८१९ महश्चि॒त् त्वमि॑न्द्र य॒त ए॒तान् म॒हश्चि॑दसि॒ त्यज॑सो वरू॒ता ।
स नो॑ वेधो म॒रुतां॑ चिकि॒त्वान् त्सु॒म्ना व॑नुष्व॒ तव॒ हि प्रेष्ठा॑ ॥ १ ॥

१८२० अयु॑ज्रन्त इ॑न्द्र वि॒श्वकृ॑ष्टी॒र्विदा॒नासो॑ नि॒ष्षिधो॑ मर्त्य॒त्रा ।
म॒रुतां॑ पृत्सु॒तिर्हास॑माना॒ स्व॑र्मीळ्हस्य प्र॒धन॑स्य सा॒तौ ॥ २ ॥

१८२१ अम्य॒क् सा त॑ इन्द्र ऋ॒ष्टिर॒स्मे सने॒म्यभ्वं॑ म॒रुतो॑ जुनन्ति ।
अ॒ग्निश्चि॒द्धि ष्मा॑त॒से शु॑शु॒क्वा॒नापो॒ न द्वी॒पं दध॑ति॒ प्रयां॑सि ॥ ३ ॥

१८२२ त्वं तू न॑ इन्द्र॒ तं र॒यिं दा॒ ओजि॑ष्ठया॒ दक्षि॑णयेव रा॒तिम् ।
स्तुत॑श्च॒ यास्ते॑ च॒कन॑न्त वा॒योः स्तनं॒ न मध्वः॑ पीपयन्त॒ वाजैः॑ ॥ ४ ॥

---

[१६९]

अर्थ— [१८१९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यतः) जिस कारण (त्वं) तू (एतान्) इन (महः चित्) महान् देवोंकी रक्षा करता है अतः इन (महः चित्) महान् (त्यजसः) त्यागियोंका (वरूता) रक्षक (असि) है । (सः) वह (वेधः) ज्ञानी इन्द्र ! तू हमें (चिकित्वान्) जानता हुआ (मरुतां) मरुतोंके और (तव हि) अपने (प्रेष्ठा) बहुत प्रिय (सुम्ना) सुख-साधनोंको (नः) हमें (वनुष्व) दे ॥ १ ॥

[१८२०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! जिन (मरुतां) मरुतोंकी (पृत्सुतिः) सेना (स्वः-मीढस्य) सुख प्राप्ति वाले (प्र-धनस्य) युद्धके (सातौ) समय आने पर बहुत (हासमाना) प्रसन्न होती है, (ते) वे (विश्व-कृष्टीः) सब जनोंके (विदानासः) ज्ञाता, शत्रुओंको (निः-सिधः) दूर भगानेवाले मरुत् (मर्त्य-त्रा) मनुष्योंमें अन्योंको छोडकर तुझसे ही (अयुज्रन्) जुडे हैं ॥ २ ॥

[१८२१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते) तेरी (सा) वह (ऋष्टिः) तलवार (अस्मे) हमें (अम्यक्) प्राप्त हो। हमारी सहायताके लिये समीप आये । ये (मरुतः) मरुत (सनेमि) सदा (अभ्वं) जलको (जुनन्ति) प्रेरित करते हैं । (अतसे) काठमें (शुशुक्वान्) प्रदीप्त (अग्निः चित् हि स्म) अग्नि जैसे लोगोंको और (आपः न) जल जैसे (द्वीपं) द्वीपको रस देते हैं वैसे मरुत् तुझ इन्द्रको (प्रयांसि) अन्न (दधति) देते हैं ॥ ३ ॥

[१८२२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (याः) जो धन (स्तुतः) स्तुतिको प्राप्त कर (ते) तुझ (वायोः) गतिशील, इन्द्रका (चकनन्त) कामना करते हैं और (वाजैः) अन्नसे, (मध्वः) मीठा दूध (स्तनं न) जैसे स्तनको बढाता है, वैसे ही तुझे (पीपयन्त) बढाते हैं (त्वं तू) तू तो, (ओजिष्ठया) ओज-भरी (दक्षिणया इव) दक्षिणासे जैसे (रातिं) दान करते हैं, वैसे (तं) वह (रयिं) धन (नः) हमें (दाः) दे ॥ ४ ॥

भावार्थ— इन्द्र मरुतों तथा अन्य महान् देवोंकी भी रक्षा करता है । मरुत् भी बडे त्यागी हैं, वे अपने प्राणोंका मोह छोडकर इन्द्रके साथी बन कर लडते हैं । तब उन्हें विजयमें उत्तम धन प्राप्त होता है। वह इन्द्र और मरुत् हमारी भी रक्षा करके हमें अपने प्रिय तथा सुखके बढानेवाले साधनोंसे हमें सुख दे ॥ १ ॥

ये मरुत् युद्ध करनेसे घबराते नहीं अपितु युद्धका अवसर आने पर प्रसन्न होते हैं । ये मरुत् दूसरोंको अपना साथी नहीं बनाते । वे तो इन्द्रको ही साथी मानते और उसीके साथ रहते हैं । इसी तरह मनुष्य भी युद्धके समय घबरायें नहीं अपितु उसमें, डटकर शत्रुओंसे लोहा लें । मनुष्य सदा श्रेष्ठ वीरको ही अपना साथी बनायें, ताकि समय आने पर वह वीर अपने साथियोंकी रक्षा कर सके ॥ २ ॥

अग्निसे प्रकाश और गर्मी मिलती है चारों ओरका जल टापूको शीतल रखता है ऐसे ही मरुतोंका दान भी इन्द्रको प्रसन्न रखता है ॥ ३ ॥

इन्द्रका धन है । उससे इन्द्रकी शक्ति बढती है । स्तोता उसे ही अधिक मात्रामें चाहते हैं । इस इन्द्रको हमेशा बढाना चाहिए ॥ ४ ॥

१८२३ त्वे रायं इन्द्र तोशतमाः प्रणेतारः कस्य चिदृतायोः ।
ते षु णो मरुतो मृळयन्तु ये स्मा पुरा गातुयन्तीव देवाः ॥ ५ ॥
१८२४ प्रति प्र याहीन्द्र मीळ्हुषो नॄन् महः पार्थिवे सदने यतस्व ।
अध यदेषां पृथुबुध्नासु एता—स्तीर्थे नार्यः पौंस्यानि तस्थुः ॥ ६ ॥
१८२५ प्रति घोराणामेतानामयासां मरुतां शृण्व आयतामुपब्दिः ।
ये मर्त्यं पृतनायन्तमूमै—र्ऋणावानं न पतयन्त सर्गैः ॥ ७ ॥
१८२६ त्वं मानेभ्य इन्द्र विश्वजन्या रदा मरुद्भिः शुरुधो गोअग्राः ।
स्तवानेभिः स्तवसे देव देवै—र्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ८ ॥

अर्थ—[१८२३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वे) तुझमें (कस्य चित्) किसी भी (ऋता-योः) यज्ञकी इच्छावाले यजमानके (प्र-नेतारः) प्रेरक और (तोश-तमाः) अत्यन्त आनन्द-दायक (रायः) धन हैं। हे इन्द्र ! (ये स्म) जो (देवाः) देव (पुरा) पूर्वकालसे (गातुयन्ति इव) यज्ञमें आनेके मानो अभ्यासी हैं (ते) वे (मरुतः) मरुत् (नः) हमें (सु मृडयन्तु) बहुत सुखी करें ॥ ५ ॥

[१८२४ । हे । इन्द्र) इन्द्र ! तू (महः) बडे और (मीळ्हुषः) वर्षा करनेवाले (नॄन्) अग्रगामी मरुतोंके (प्रति) पास (प्र याहि) जा। और (पार्थिवे) पृथिवीके (सदने) स्थानोंमें (यतस्व) पराक्रम दिखा। (अध) तब (यत्) जोकि (एषां) इन मरुतोंके पृथु-बुध्नासः) मोटी पीठवाले ये (एताः) रंग-बिरंगे घोडे, (अर्यः) स्वामीकी (पौंस्यानि) सेनायें (तीर्थे न) जैसे उसके जानेके मार्गमें खडी रहती हैं, वैसे (तस्थुः) खडे हैं, उन पर बैठ ॥ ६ ॥

[१८२५] (ये) जो मरुत् (पृतना-यन्तं) युद्ध करनेकी इच्छावाले (मर्त्यं) मनुष्यको अपने (ऊमैः) रक्षा-साधनोंसे, (सर्गैः) रस्सीसे बांधकर गिरा देते हैं। जैसे (ऋणा-वानं) ऋण लेनेवाले अपराधीको वैसे ही (पतयन्त) गिराते हैं, उन (घोराणां) भयंकर (एतानां) शीघ्र-गामी, (अयासां) आक्रमण करने और (आयतां) घेरनेवाले (मरुतां) मरुतोंका (उपब्दिः) शब्द (प्रति शृण्वे) सुनाई देता है ॥ ७ ॥

[१८२६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं) तू (मरुत्-भिः) मरुतोंके साथ मिलकर अपनी (विश्वजन्या) विश्वको उत्पन्न करनेवाली शक्तिसे (मानेभ्यः प्रतिष्ठाके लिये (गो-अग्राः) गायोंको आगे रखनेवाली (शुरुधः) शोषक शत्रु-सेनाओंको (रद) काट दे। हे (देव) देव ! तेरी (स्तवानेभिः) स्तुति करनेवाले (देवैः) देवोंसे (स्तवसे) स्तुति होती है। हम तेरी कृपासे (इषं) अन्न (वृजनं) बल और (जीर-दानुं) जयके साधनको (विद्याम) प्राप्त करें ॥ ८ ॥

१ मानेभ्यः शुरुधः रद— अपने मानकी प्रतिष्ठाके लिए शत्रुओंका संहार करना चाहिए।

भावार्थ— इन्द्रके पास ऐसा धन है जो यजमानोंको सन्तुष्ट करके उन्हें यज्ञ-कार्यमें प्रेरित करता है। वैसे ही इन्द्रके साथी मरुत् भी यज्ञके प्रेरक हैं। क्योंकि वे सदा यज्ञमें जाकर यजमानोंको सुखी करते हैं ॥ ५ ॥

मरुत् पानी वर्षाते हैं। इन्द्र उनकी सहायता करता है और उनके घोडोंकी पंक्तिका निरीक्षण करता है ॥ ६ ॥

जिस प्रकार ऋणी मनुष्य साहुकारका धन नहीं देता तो उसे रस्सीसे बांध कर गिरा देते हैं। उसी प्रकार इन्द्रके साथी मरुत् भी असुरोंको शस्त्रोंसे जकड देते हैं और जकड कर नीचे गिरा देते हैं। यह मरुत् बहुत उत्साही हैं। ये भयंकर, शीघ्र-गामी, आक्रमण करनेवाले और शत्रुओंको घेरनेवाले हैं। ये प्रसन्न होकर ऐसे गरजते हैं, कि इनका शब्द दूर देने लगता है ॥ ७ ॥

इन्द्र यज्ञ चुरानेवाले शत्रुओंका नाश कर ऋषियोंको धनादि देता है। अपने मानकी प्रतिष्ठाके लिए इन्द्र शत्रुओंका संहार करता है। उसका वृत्रहन्ताके रूपमें बडा मान है अतः इन्द्र भी शत्रुओंको मार कर अपना मान बनाये रखता है। मान प्राणकी अपेक्षा भी महत्त्वपूर्ण है। अतः मनुष्यको भी चाहिए कि वह अपने मानको बचानेके लिये शत्रुओंको संहार करे ॥ ८ ॥

[१७०]

(ऋषिः- १, ३, ४ इन्द्रः, ४ अगस्त्यो वा; २, ५ अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- १ बृहती, २-४ अनुष्टुप्, ५ त्रिष्टुप् ।)

१८२७ न नूनमस्ति नो श्वः कस्तद् वेद यदद्भुतम् ।
अन्यस्य चित्तमभि संचरेण्यमुताधीतं वि नश्यति ॥ १ ॥

१८२८ किं न इन्द्र जिघांससि भ्रातरो मरुतस्तव ।
तेभिः कल्पस्व साधुया मा नः समरणे वधीः ॥ २ ॥

१८२९ किं नो भ्रातरगस्त्य सखा सन्नति मन्यसे ।
विद्मा हि ते यथा मनोऽस्मभ्यमिन्न दित्ससि ॥ ३ ॥

१८३० अरं कृण्वन्तु वेदिं समग्निमिन्धतां पुरः ।
तत्रामृतस्य चेतनं यज्ञं ते तनवावहै ॥ ४ ॥

---

[१७०]

अर्थ— [१८२७] जो आज प्राप्त होना चाहिये वह (नूनं) तो आज (न) नहीं मिल रहा (अस्ति) है, वह (श्वः) कल भी (नो) नहीं मिलनेवाला है। तब (यत्) जो अभी (अद्भुतं) अभूत, संकल्पमें भी नहीं आया, (तत्) उसे (कः) कौन (वेद) जानता है। (अन्यस्य) दूसरेका, (चित्तं) चित्त (अभि सं-चरेण्यं) चलायमान होत है (उत) और (आ-धीतं) संकल्पित विचार भी (वि नश्यति) नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

[१८२८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (नः) हमें (किं) क्यों (जिघांससि) मारना चाहता है? (मरुतः) मरुत् (तव) तेरे (भ्रातरः) भाई हैं। (तेभिः) उनसे (साधु-या) उत्तम व्यवहार (कल्पस्व) कर। तू (नः) हमें (सं अरणे) युद्धमें (मा वधीः) मत मार ॥ २ ॥

[१८२९] हे (भ्रातः) भाई (अगस्त्य) अगस्त्य ! तू हमारा (सखा) मित्र (सन्) होता हुआ (नः) हमारा (किं) क्यों (अति मन्यसे) अनादर करता है ? (ते) तेरा (मनः) मन (यथा) जैसा है उसे हम (विद्म हि) खूब जानते हैं तू हमारा भाग (अस्मभ्यं) हमें (इत्) तो (न) नहीं (दित्ससि) देना चाहता ॥ ३ ॥

[१८३०] हे इन्द्र ! ऋत्विक् लोग (वेदिं) वेदीको (अरं कृण्वन्तु) अलंकृत करें, सजायें। उसमें (पुरः) सर्व प्रथम (अग्निं) अग्निको (सं इन्धतां) प्रदीप्त करें। तब (तत्र) वहां मैं और तू दोनों (ते) तेरे लिये (अमृतस्य) अमरताको (चेतनं) जगानेवाले (यज्ञं) यज्ञका (तनवावहै) प्रारम्भ करें ॥ ४ ॥

१ अमृतस्य चेतनं यज्ञं— यज्ञ अमरताको जगानेवाला है।

भावार्थ— आज मुझे अपना भाग नहीं मिला, कल भी नहीं मिलेगा कब मिलेगा यह कौन जानता है क्योंकि वह अभी संकल्पमें भी नहीं आया। दूसरेका चित्त स्थिर नहीं होता अतः वह संकल्प करेगा तो भी बदल सकता है। जिस मनुष्यका चित्त स्थिर नहीं होता, वह कभी भी संकल्प नहीं कर सकता। उसके विचार हमेशां बदलते रहते हैं। अतः संकल्प करनेके लिए प्रथम चित्तको स्थिर करना आवश्यक है ॥ १ ॥

भाई भाईके लाभ पर ईर्ष्या नहीं करता क्योंकि उसे अपनेसे भिन्न नहीं मानता। हे इन्द्र ! मैं अपराधी नहीं हूँ, मुझे मारनेकी इच्छा मत कर। नेता सभीसे समानतापूर्वक व्यवहार करे। वह किसीसे भी द्वेष न करे ॥ २ ॥

इन्द्रने कहा अगस्त्य ! तू हमारा मित्र है फिर भी हमें हमारा भाग नहीं देना चाहता। अब मैं तेरे मनको जान गया। तू अब मुझे मनसे नहीं चाहता। तेरे चित्तमें परिवर्तन आ गया है। प्रजा भी राजाका भाग ईमानदारीसे दे देवे। तथा नेताका अनादर कभी न करे ॥ ३ ॥

जिस यज्ञमें अग्निको प्रज्ज्वलित करके उसमें श्रद्धा भक्तिपूर्वक आहुति दी जाती है, ऐसा श्रद्धा और भक्तिसे किया जानेवाला यज्ञ अमरताको प्रदान करता है ॥ ४ ॥

१८३१ त्वमीशिषे वसुपते वसूनां त्वं मित्राणां मित्रपते धेष्ठः ।
इन्द्र त्वं मरुद्भिः सं वदस्वाध प्राशान ऋतुथा हवींषि ॥ ५ ॥

[१७१]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- मरुतः; ३-६ मरुत्वानिन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१८३२ प्रति व एना नमसाहमेमि सूक्तेन भिक्षे सुमतिं तुराणाम् ।
रराणता मरुतो वेद्याभिर्नि हेळो धत्त वि मुचध्वमश्वान् ॥ १ ॥

१८३३ एष वः स्तोमो मरुतो नमस्वान् हृदा तष्टो मनसा धायि देवाः ।
उपेमा यात मनसा जुषाणा युयं हि ष्ठा नमस इद् वृधासः ॥ २ ॥

१८३४ स्तुतासो नो मरुतो मृळयन्त्वित स्तुतो मघवा शंभविष्ठः ।
ऊर्ध्वा नः सन्तु कोम्या वनान्यहानि विश्वा मरुतो जिगीषा ॥ ३ ॥

अर्थ— [१८३१] हे (वसु-पते) धनोंके स्वामी इन्द्र ! (त्वं) तू (वसूनां) धनोंका (ईशिषे) स्वामित्व करता है । हे (मित्र-पते) मित्रोंके रक्षक ! (त्वं) तू (मित्राणां) मित्रोंका (धेष्ठः) बड़ा धारक, आधार है । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं) तू (मरुद्भिः) मरुतोंके साथ (सं वद) प्रेमसे बोल । (अध) और (ऋतुथा) ऋतुके अनुसार, इनके साथ, हमारे दिये (हवींषि) हवियोंको (प्र अशान) खा ॥ ५ ॥

[१७१]

[१८३२] हे (मरुतः) मरुतो ! (अहं एना नमसा) मैं इस नमनसे तथा (सूक्तेन) सूक्तसे (वः प्रति एमि) तुम्हारे समीप आता हूँ । (तुराणां) वेगसे जानेवाले तुम वीरोंकी (सुमतिं) अच्छी बुद्धिकी मैं (भिक्षे) याचना करता हूँ । (वेद्याभिः) इन जानने योग्य स्तुतियोंसे (रराणता) आनन्दित हुए मनसे तुम अपना (हेळः निधत्तः) द्वेष एक ओर धर दो, तथा (अश्वान्) अपने रथके घोड़ोंको (वि मुचध्वं) मुक्त करो ॥ १ ॥

[१८३३] हे (मरुतः) मरुत् वीरो ! (एषः) यह (नमस्वान्) नम्रतासे तथा (हृदा तष्टः) मनःपूर्वक रचा गया (वः स्तोमः) तुम्हारा काव्य (मनसा धायि) मन लगाकर सुनो । हे (देवाः) तेजस्वी वीरो ! (मनसा हि) मनसे यह हमारा काव्य (जुषाणाः) स्वीकार कर तुम (उप आयात) हमारी ओर आओ । (यूयं हि) क्योंकि तुम (नमसः इत्) सत्कर्मोंकी ही (वृधासः) समृद्धि करनेवाले हो ॥ २ ॥

१ मरुतः नमसः इत् वृधासः— मरुत् वीर उत्तम कर्मोंको ही बढ़ावा देते हैं ।

[१८३४] (स्तुतासः मरुतः नः मृळयन्तु) स्तुत होकर मरुत् हमें सुखी करें (उत) और (शंभविष्ठः मघवा स्तुतः) सबके लिए सुखी होनेवाला ऐश्वर्यवान् इन्द्र भी स्तुत होकर हमें सुखी करे । हे (मरुतः) मरुतो ! (जिगीषा नः विश्वा अहानि) आगे आनेवाले हमारे सब दिन (ऊर्ध्वा) उन्नत तथा (कोम्या वनानि) स्पृहणीय और सबके द्वारा चाहे जाने योग्य (सन्तु) हों ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! हम यज्ञ करते हैं, उनमें तू हविका ग्रहण कर । अग्निमें यदि ऋतुके अनुसार सामग्री डालकर यज्ञ किया जाए तो वह अनेक तरहसे ऐश्वर्य प्रदान करनेवाला होता है ॥ ५ ॥

मैं इन वीरोंकी उपासना करना चाहता हूँ इनके निकट जाकर रहना चाहता हूँ और प्रयत्न करना चाहता हूँ कि इनकी अच्छी बुद्धिसे मैं लाभ उठा सकूं । वे हमपर कभी क्रोध न करें और वे प्रसन्नचित्त हो सतत हमारे पास रहें । यही मेरी अभिलाषा है ॥ १ ॥

हे वीरो ! हमने बड़ी भक्तिसे ये तुम्हारे स्तोत्र बनाये हैं, अतः मन लगाकर इसे सुनो । तथा हमारे सत्कर्मोंकी उन्नति करो । राष्ट्रमें सदा सत्कर्मोंको ही बढ़ावा मिलना चाहिए । उसीसे राष्ट्र उन्नत हो सकता है ॥ २ ॥

मरुत और इन्द्र दोनों हमसे स्तुत होकर हमें भी सुखी करें और इनकी कृपासे हमारे आगे-आनेवाले दिन उन्नत और हमें सुख देनेवाले हों ॥ ३ ॥

१८३५ अस्मादुहं तविषादीषमाण इन्द्राद् भिया मरुतो रेजमानः ।
युष्मभ्यं हव्या निशितान्यासन् तान्यारे चकृमा मृळता नः ॥ ४ ॥

१८३६ येन मानासश्चितयन्त उस्रा व्युष्टिषु शवसा शश्वतीनाम् ।
स नो मरुद्भिर्वृषभ श्रवो धा उग्र उग्रेभिः स्थविरः सहोदाः ॥ ५ ॥

१८३७ त्वं पाहीन्द्र सहीयसो नॄन् मवा मरुद्भिरवयातहेळाः ।
सुप्रकेतेभिः सासहिर्दधानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥

[१७२]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- मरुतः । छन्दः- गायत्री ।)

१८३८ चित्रो वोऽस्तु यामश्चित्र ऊती सुदानवः । मरुतो अहिमानवः ॥ १ ॥

अर्थ—[१८३५] हे (मरुतः) मरुतो ! (अस्मात् तविषात् इन्द्रात् अहं) इस बलवान् इन्द्रसे मैं (भिया ईषमाणः रेजमानः) डर कर भागता और काँपता हूँ । इसी डरके कारण (युष्मभ्यं) तुम्हारे लिए (हव्या निशितानि आसन्) हवियां तैय्यार करके रखी गई थीं, (तानि आरे चकृम) उन्हें हमने दूर कर दिया, इसलिए (नः मृळत) हमें सुखी करो ॥ ४ ॥

[१८३६] हे इन्द्र (येन शवसा) जिस तेरे बलसे (मानासः उस्राः) प्रकटकी गई किरणें (शश्वतीनां व्युष्टिषु) अनेक उषाओंके प्रकाशित होने पर (चितयन्ते) चमकने लगती हैं । हे (वृषभ) बलवान् इन्द्र ! (उग्रः उग्रेभिः स्थविरः सहोदाः सः) वीर, शक्तिवोंसे सर्वश्रेष्ठ तथा बल देनेवाला वह तू (मरुद्भिः) मरुतोंके साथ मिलकर (नः श्रवः धाः) हमें अन्न दे ॥ ५ ॥

[१८३७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं) तू (सहीयसः नॄन् पाहि) शत्रुओंका नाश करनेवाले नेताओंकी रक्षा कर, और (मरुद्भिः) मरुतोंके साथ रहनेवाला तू (अवयात हेळाः भव) गुस्सेसे रहित हो । (सुप्रकेतेभिः) उत्तम तेजोंसे युक्त तथा (सासहिः) शत्रुओंको नष्ट करनेवाले बलको तू (दधानः) धारण करनेवाला हो । हम भी (इषं वृजनं जीरदानुं विद्याम) अन्न, बल और शीघ्र दानके स्वभावको प्राप्त करें ॥ ६ ॥

[१७२]

[१८३८] हे (सुदानवः) अच्छे दानशूर और (अ-हि-मानवः) न थकनेवाले तेजसे युक्त (मरुतः) मरुतो ! (वः यामः चित्रः) तुम्हारी गति आश्चर्यकारक है तथा तुम्हारी (ऊती) संरक्षणक्षम शक्ति भी (चित्रः अस्तु) विलक्षण हो ॥ १ ॥

भावार्थ— हे मरुतो ! इस बलवान् इन्द्रके डरके कारण हम भयसे काँपते हुए इधर उधर भागनेके कारण असावधानीसे तुम्हारे लिए ही जानेवाली हवियोंकी तरफ ध्यान नहीं दे सके, इसलिए तुम हम पर नाराज न हो अपितु हमें सुखी करो ॥ ४ ॥

इसी इन्द्रकी शक्तिसे प्रेरित होकर किरणें उषःकालमें प्रकाशित होती हैं । ऐसे वीर और वीरताके कारण ही सबसे श्रेष्ठ इस इन्द्रकी कृपासे हम हर तरहका अन्न प्राप्त करें ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तू शत्रुओंको नष्ट करनेवाले नेताओंकी रक्षा कर और हम पर तू क्रोधित मत हो । क्रोधको दूर करके तू हमारे पास आ । तू उत्तम तेज धारण कर । हम भी अन्न और बल आदि धारण करें ॥ ६ ॥

इन्द्रदेव पर चढाई करनेकी वीरोंकी योजना बड़ी ... लक्षण है और रक्षण करनेकी शक्ति भी बहुत बड़ी है ॥ १ ॥

१८३९ आरे सा वः सुदानवो मरुत ऋञ्जती शरुः । आरे अस्मा यमस्यथ ॥ २ ॥
१८४० तृणस्कन्दस्य नु विशः परि वृङ्क्त सुदानवः । ऊर्ध्वान् नः कर्त जीवसे ॥ ३ ॥

[१७३]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप्; ४ विराट्स्थाना, विषमपदा वा ।)

१८४१ गायत् साम नभन्यं यथा वेरर्चाम तद् बाबृधानं स्वर्वत् ।
गावो धेनवो बर्हिष्यदघ्या आ यत् सद्मानं दिव्यं विवासान् ॥ १ ॥
१८४२ अर्चद् वृषा वृषभिः स्वेदुहव्यैर्मृगो न भीमो अति यज्जुगुर्यात् ।
प्र मन्दयुर्मनां गूर्त होता भरते मर्यो मिथुना यजत्रः ॥ २ ॥

अर्थ—[१८३९] हे (सु-दानवः मरुतः) भलीभांति दान देनेवाले वीर मरुतो ! (सा वः) वह तुम्हारा (ऋंजती) वेगसे शत्रुदल पर टूट पडनेवाला (शरुः) शस्त्र हमसे (आरे) दूर रहे । (यं अस्यथ) जिसे तुम शत्रुपर फेंकते हो, वह (अस्मा) वज्र भी हमसे (आरे) दूर ही रहे ॥ २ ॥

[१८४०] हे (सुदानवः) अच्छे दानशूर वीरो ! (तृणस्कन्दस्य) तिनकेके समान आसानीसे नष्ट होनेवाले (विशः) इन प्रजाजनोंका नाश (नु) शीघ्र ही (परि वृङ्क्त) दूर हटा दो अर्थात् उन प्रजाजनोंकी रक्षा करो । (नः जीवसे) हमारे बहुत दिनोंतक जीवित रहनेके लिए हमें (ऊर्ध्वान् कर्त) उच्च कोटिका बनाओ ॥ ३ ॥

[१७३]

[१८४१] (यत्) जब (धेनवः) इच्छा पूर्ण करनेवाली (अदघ्याः) न दबनेवाली (गावः) गौवें (बर्हिषि) यज्ञमें (सद्मानं) बैठे (दिव्यं) दिव्य इन्द्रकी (विवासान्) सेवा करती हैं तब तू (यथा) जैसा (वेः) जानता है, वैसा (नभन्यं) शत्रु-हिंसक (साम) साम (गायत्) गा । हम भी (तत्) वही (स्वः-वत्) सुख-दायी और (बाबृधानं) उन्नतिकारक साम इन्द्रके लिये (अर्चाम) कहते हैं ॥ १ ॥

[१८४२] (यत्) जब (अभ्रः) खानेकी इच्छावाला इन्द्र, (मृगः) हरिणके (न) समान, (अति जुगुर्यात्) हुत इच्छा करता है तब (वृषा) बलवान् यजमान (वृष-भिः) बलोंसे युक्त (स्व-इदुहव्यैः) अपने हव्य पदार्थोंसे इन्द्रकी (अर्चत्) पूजा करता है । हे (गूर्त) उद्यमी इन्द्र ! (मन्द्रयुः) स्तुति करनेवाला, (मर्यः) पुरुष, (यजत्रः) यज्ञकर्ता (होता) होता तेरे लिये (मनां) स्तुतिको (मिथुना) हवि आदिसे युक्त करके (प्र भरते) लाता है ॥ २ ॥

भावार्थ— शत्रुपर फेंका जाकर उनका विनाश करनेवाला मरुतोंका शस्त्र हमसे दूर रहे, अर्थात् हमपर वह शस्त्र जाकर न गिरे ॥ २ ॥

जो जनता तिनकेके समान नष्ट होती हो, उसे सुरक्षित करके उच्च पदतक ले जाओ और दीर्घायु सम्पन्न करो ॥ ३ ॥

इन्द्रके निमित्त उत्साहवर्धक साम गाया जाता है । तब यज्ञमें बैठे हुए इन्द्रकी गायें अपना दूध आदि देकर सेवा करती हैं अर्थात् यज्ञमें इन्द्रके लिए दूध घृतादि पदार्थ दिए जाते हैं ॥ १ ॥

जब इन्द्र हवि चाहता है तब ऋत्विज् लोग उसे दिया करते हैं । वह हवि स्वयं भी बलसे युक्त होकर दूसरोंको भी बलसे युक्त करती है ॥ २ ॥

१८४३ नक्षद्धोता परि सद्म मिता यन् भरद् गर्भमा शरदः पृथिव्याः ।
क्रन्ददश्वो नयमानो रुवद् गौ—रन्तर्दूतो न रोदसी चरद् वाक् ॥ ३ ॥

१८४४ ता कर्माणि तरास्मै प्र च्यौत्नानि देवयन्तो भरन्ते ।
जुजोषदिन्द्रो दस्मवर्चा नासत्येव सुग्म्यो रथेष्ठाः ॥ ४ ॥

१८४५ तमु ष्टुहीन्द्रं यो ह सत्वा यः शूरो मघवा यो रथेष्ठाः ।
प्रतीचश्चिद् योधीयान् वृषण्वान् ववध्रुषश्चित्तमसो विहन्ता ॥ ५ ॥

१८४६ प्र यदित्था महिना नृभ्यो अ—स्त्यरं रोदसी कक्ष्येव नास्मै ।
सं विव्य इन्द्रो वृजनं न भूमा भर्ति स्वधावाँ ओपशमिव द्याम् ॥ ६ ॥

अर्थ— [१८४३] वह (होता) दाता इन्द्र (मिता) निश्चित (सद्म) यज्ञगृहकी (परि यन्) ओर जानेपर हविर्भाग (नक्षत्) ग्रहण करता है। (शरदः) शरद् ऋतु और (पृथिव्याः) पृथिवीके (गर्भं) गर्भको (आ भरत्) भर देता है, पुष्ट करता है। उसे यज्ञकी तरफ (नयमानः) ले चलता हुआ (अश्वः) घोडा (क्रन्दत्) शब्द करता है और उसे आता देखकर (गौः) गाय (रुवत्) रंभाती है। वह (वाक्) स्तुतिको ग्रहण करता हुआ (रोदसी) दोनों लोकोंके (अन्तः) बीच (दूतः न) दूतके समान (चरत्) घूमता है ॥ ३ ॥

[१८४४] (देव-यन्तः) देवोंको चाहनेवाले ऋत्विक् इन्द्रको जो (च्यौत्नानि) शत्रु-नाशक हवि (प्र भरन्ते) देते हैं (ता) वे (अधतरा) बहुत उपयोगी हवि हम (अस्मै) इसके लिये (कर्म) देते हैं। वह (दस्म-वर्चाः) दर्शनीय तेज और (सुग्म्यः) उत्तम गतिवाला, (रथे-स्थाः) रथपर बैठा हुआ (इन्द्रः) इन्द्र (नासत्या-इव) अश्विदेवोंके समान हमारा हवि (जुजोषत्) सेवन करे ॥ ४ ॥

[१८४५] (यः ह) जो इन्द्र (सत्वा) शत्रु-नाशक (यः) जो (शूरः) शूर, जो (मघ-वा) धनवान्, (यः) जो (रथे-स्थाः) रथपर बैठनेवाला (प्रतीचः चित्) बहुत विरोधियोंसे भी डट कर (योधीयान्) लडनेवाला (वृषण्-वान्) अनेक बलोंसे युक्त और (ववध्रुषः चित्) आवरण करनेवाले (तमसः) अन्धकारका (वि-हन्ता) नाशक है (तं) उस (उ) ही (इन्द्रं) इन्द्रकी (स्तुहि) स्तुति कर ॥ ५ ॥

[१८४६] (यत्) जो इन्द्र (इत्था) इस प्रकार अपनी (महिना) महत्तासे (नृ-भ्यः) मनुष्योंका (प्र अस्ति) प्रभु है। (कक्ष्ये) कक्षके समान (रोदसी) दोनों लोक (अस्मै) इस इन्द्रके रहनेके लिये (अरं न) पर्याप्त नहीं हैं। वह (इन्द्रः) इन्द्र अपने (वृजनं न) बलके समान (भूम) भूमिको भी अपने भीतर (सं विव्ये) समेटता है। वही (स्वधा-वान्) अपनी धारकशक्तिसे युक्त इन्द्र, जैसे बैल (ओपशं-इव) सींगको, वैसे (द्यां) द्यौको (भर्ति) धारण करता है ॥ ६ ॥

भावार्थ— जैसे राजदूत कभी स्थिर नहीं बैठता वैसे इन्द्र भी जहां यज्ञ होते हैं वहां जाता है। इस इन्द्रसे सभी प्रेम करते हैं। उसे देखकर पशु भी अपना प्रेम जताते हैं। घोडा उसे यज्ञकी तरफ के चलता हुआ प्रेमसे शब्द करता है और गाय भी उसे आता देखकर प्रेमसे रंभाती है ॥ ३ ॥

इन्द्रको जो हवि दी जाती है वह बहुत बलकारी है। उससे इन्द्रमें शत्रुओंको गिरानेकी शक्ति आती है ॥ ४ ॥

इन्द्र बहुत वीर है। अपने असंख्य विरोधियोंसे भी निर्भीक होकर लडता है। वह उत्तम रथी है, अनेक बलोंसे युक्त है तथा अन्धकार फैलानेवालेको नष्ट करता है। इसी तरह राजा भी राष्ट्रमें अज्ञान अन्धकारको फैलानेवालेको नष्ट करे ॥ ५ ॥

इन्द्र द्यौ और भूमिका धारक है। इसीलिये वही सबका स्वामी है। वह इतना विशाल है कि द्युलोक और पृथ्वीलोक भी इसके रहनेके लिए छोटे पडते हैं ॥ ६ ॥

१८४७ समत्सु त्वा शूर सतामुराणं प्रपथिन्तमं परितंसयध्यै ।
सजोषस इन्द्रं मदे क्षोणीः सूरिं चिद् ये अनुमदन्ति वाजैः ॥ ७ ॥
१८४८ एवा हि ते शं सवना समुद्र आपो यत् ते आसु मदन्ति देवीः ।
विश्वा ते अनु जोष्या भूद् गौः सूरींश्चिद् यदि धिषा वेषि जनान् ॥ ८ ॥
१८४९ असाम यथा सुषखाय एन स्वभिष्टयो नरां न शंसैः ।
असद् यथा न इन्द्रो वन्दनेष्ठा स्तुरो न कर्म नयमान उक्था ॥ ९ ॥
१८५० विष्पर्धसो नरां न शंसैरस्माकासदिन्द्रो वज्रहस्तः ।
मित्रायुवो न पूर्पतिं सुशिष्टौ मध्यायुव उप शिक्षन्ति यज्ञैः ॥ १० ॥

अर्थ— [१८४७] (ये) जो (स-जोषसः) उत्साहसे युक्त लोग (मदे) आनंदमें (वाजैः) अन्नोंसे तुझ (सूरिं) ज्ञानी (इन्द्रं) इन्द्रको (क्षोणीः) मरुतोंके साथ (अनु-मदन्ति) प्रसन्न करते हैं, वे हे (शूर) शूर! (सतां) श्रेष्ठोंमें (उराणं) श्रेष्ठ (प्रपथिन्तमं) उत्तम मार्ग-दर्शक (त्वा) तुझ इन्द्रको (समत्-सु) युद्धोंमें भी (परि-तंसयध्यै) श्रेष्ठ स्थानपर रखते हैं ॥ ७ ॥

[१८४८] (यत्) जिस समय (देवीः) आकाशस्थानीय (आपः) जल (समुद्रे) समुद्रमें तथा (आसु) इन स्थानोंमें बरसानेके लिये (ते) तुझे (मदन्ति) आनंदित करते हैं, (एव हि) तब (ते) तेरे लिये ये (सवना) सवन (शं) सुखकारक होते हैं । तू (यदि) जब (सूरीन् चित्) ज्ञानी (जनान्) मनुष्योंको (धिषा) बुद्धिसे (वेषि) जानता है, तब उनकी (विश्वा) सारी (गौः) वाणी (ते) तेरे लिये (अनु जोष्या) सेवन करने योग्य (भूत्) होती है ॥ ८ ॥

[१८४९] हे (इन) स्वामी इन्द्र ! (नरां न) लोगोंके समान (शंसैः) स्तोत्रोंसे हम लोक (यथा) जिस प्रकार तेरे (सु-सखायः) उत्तम मित्र और (सु-अभिष्टयः) उत्तम धनवाले (असाम) हो सकें । (उक्था) स्तोत्रोंसे, (तुरः न) शीघ्र कार्य करनेवालेके समान (कर्म) कार्य (नयमानः) पूरा करता हुआ (इन्द्रः) इन्द्र (यथा) जिस प्रकार (नः) हमारी (वन्दने-स्थाः) वन्दनामें रहनेवाला (असत्) हो, वैसा ही करो ॥ ९ ॥

[१८५०] हम (नरां न) यज्ञ करनेवालोंके समान (शंसैः) स्तोत्रोंसे (वि-स्पर्धसः) स्पर्धा करते हैं कि जिससे (वज्र-हस्तः) हाथमें वज्र रखनेवाला (इन्द्रः) इन्द्र (अस्माक) हमारा (असत्) हो जाये । (मध्या-युवः) मध्यस्थ लोग (सु-शिष्टौ) उत्तम शिष्टताके समय (मित्रा-युवः न) मित्रता चाहनेवालोंके समान ही (पूः-पतिं) राष्ट्रके रक्षक इन्द्रको (यज्ञैः) यज्ञों द्वारा (उप शिक्षन्ति) दान दिया करते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ— इन्द्र मरुतोंके साथ सारी सेनाका नेतृत्व करता है । तब उत्साही वीर गण आनन्दसे भरकर अन्नोंसे इस ज्ञानी इन्द्रको प्रसन्न करते हैं । यह इन्द्र उत्तम मार्गदर्शक है अतः यह हमेशा सेनाके आगे रहता है ॥ ७ ॥

आकाशमें घिरे हुए जल नीचे गिरनेके लिये इच्छा करते हैं और प्रजा भी वृष्टिके लिये यज्ञ रचाती है उस समय ज्ञानी इन्द्रकी स्तुति करते हैं और इन्द्र उन्हें इष्ट फल देता है ॥ ८ ॥

इन्द्र स्तोताओंका उत्तम मित्र और अभीष्ट पूरक है । वह उनकी प्रार्थना पर ध्यान देता है । वह एक बार जिस काममें हाथ डाल देता है, उस कामको पूरा करके ही छोडता है ॥ ९ ॥

जो शत्रुओंका नाश करता है वह इन्द्रका मित्र बनता है यह देख कर दूसरे लोग भी इन्द्रकी मित्रताके लिये यज्ञ करते हैं । वह इन्द्र राष्ट्रका रक्षक है, इसलिए वह सबके लिए मित्रके समान है । ऐसे गुणवान् इन्द्रको अपना बनानेके लिए ज्ञानी जन स्पर्धा करते हैं ॥ १० ॥

१८५१ यज्ञो हि ष्मेन्द्रं कश्चिदृन्ध—ञ्जुहुराणश्चिन्मनसा परियन् ।
तीर्थे नाच्छा तातृषाणमोकोऽदीर्घो न सिध्रमा कृणोत्यध्वा ॥ ११ ॥

१८५२ मो षू ण इन्द्रात्र पृत्सु देवै—रस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नवयाः ।
महश्चिद् यस्य मीळ्हुषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः ॥ १२ ॥

१८५३ एष स्तोम इन्द्र तुभ्यमस्मे एतेन गातुं हरिवो विदो नः ।
आ नो ववृत्याः सुविताय देव विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १३ ॥

[१७४]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- इन्द्रः छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१८५४ त्वं राजेन्द्र ये च देवा रक्षा नृन् पाह्यसुर त्वमस्मान् ।
त्वं सत्पतिर्मघवा नस्तरुत्र—स्त्वं सत्यो वसवानः सहोदाः ॥ १ ॥

अर्थ— [१८५१] (कः चित्) हरकोई (यज्ञः हि स्म) यज्ञ (इन्द्रं) इन्द्रको (ऋन्धन्) बढाता है, (जुहुराणः चित्) कुटिलतासे किया गया कर्म तो इन्द्रके (मनसा) मनसे (परि-यन्) दूर चला जाता है । (तीर्थे न) जैसे तीर्थमें (अच्छ) समीपका (ओकः) घर (तातृषाणं) प्यासेको प्रसन्न करता है वैसे यज्ञ इन्द्रको प्रसन्न करता है । (दीर्घः) लम्बा (अध्वा न) मार्ग जैसे कष्ट पहुँचाता है वैसे कुटिल यज्ञ (सिध्रं) कुटिल फल (आ कृणोति) करता है ॥ ११ ॥

[१८५२] (यस्य) जिसकी (यव्या) जोडनेवाली (गीः) वाणी (महः चित्) बडे (मीळ्हुषः) सुख दायक (हविष्मतः) हविसे युक्त (मरुतः) मरुतोंकी भी (वन्दते) वन्दना करती है (अव-याः) वह स्तुति हे (शुष्मिन्) बलवाले इन्द्र ! (ते) तेरे लिये भी (अस्ति हि स्म) है । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अत्र) इस (पृत्-सु) युद्धमें (देवैः) देवोंके साथ तू (नः) हमें (मो सु) मत छोड ॥ १२ ॥

[१८५३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अस्मे) हमारा (एषः) यह (स्तोमः) स्तोम (तुभ्यं) तेरे लिये है । हे (हरि-वः) घोडोंसे युक्त ! तू (एतेन) इससे (नः) हमारे यज्ञके (गातुं) मार्गको (विदः) जान । हे (देव) देव ! धनादि (सुविताय) देनेके लिए (नः) हमारे साथ (आ ववृत्याः) कार्य कर, जिससे हम (जीर-दानुं) विजय देनेवाले वीर, (वृजनं) बल और (इषं) अन्नको (विद्याम) प्राप्त करें ॥ १३ ॥

[१७४]

[१८५४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं) तू सबका (राजा) राजा है । (ये च) जो (देवाः) देव हैं उनके साथ मिलकर तू (नृन्) मनुष्योंकी (रक्ष) रक्षा कर । हे (असुर) बलवान् ! (त्वं) तू (अस्मान्) हमारी (पाहि) रक्षा कर । (त्वं) तू (सत्-पतिः) सज्जनोंका पालक है । तू (मघ-वा) धनसे युक्त (नः) हमारा (तरुत्रः) तारनेवाला है । (त्वं) तू (सत्यः) सच्चा (वसवानः) आश्रय-दाता और (सहः दाः) बल-दाता है ॥ १ ॥

भावार्थ— यज्ञमें कपट रचकर भरी है वह तो लम्बे मार्गके समान बहुत कष्ट देनेवाला है । इसके विपरीत सत्य यज्ञ मनुष्यके लिए उसी प्रकार आनंददायक होता है, जिस प्रकार मार्गमें जानेवाले प्यासे पथिकको पासमें ही घर दीखने पर होता है ॥ ११ ॥

इन्द्र और मरुत् साथ साथ रहते हैं, इन्द्र राजा है और मरुत् उसके सहकारी सैनिक हैं । इसलिए मरुतोंकी उन्नति देखकर इन्द्र प्रसन्न होता है । और इसी कारण जो स्तुतियाँ मरुतोंकी होती हैं, उन्हींसे इन्द्र भी प्रसन्न होता है । स्वामी भी अपने सहकारियोंकी उन्नति देखकर खुश हों ॥ १२ ॥

इन्द्र स्तुतिसे प्रसन्न होकर स्तोताके साथ कार्य करता और उसे धनादि देता है ॥ १३ ॥

इन्द्र सबका राजा है । वह सबको शत्रुओंसे बचाता है । वही धन, घर और बलका दाता है । वह सज्जनोंका पालक है ॥ १ ॥

१८५५ दनो विशं इन्द्र मृधवाचः सप्त यत् पुरः शर्म शारदीर्दर्द ।
ऋणोरपो अनवद्यार्णा यूने वृत्रं पुरुकुत्साय रन्धीः ॥ २ ॥
१८५६ अजा घृतं इन्द्र शूरपत्नी—र्द्यां च येभिः पुरुहूत नूनम् ।
रक्षो अग्निमशुषं तूर्वयाणं सिंहो न दमे अपांसि वस्तोः ॥ ३ ॥
१८५७ शेषन् नु त इन्द्र सस्मिन् योनौ प्रशस्तये पवीरवस्य मह्ना ।
सृजदर्णांस्यव यद् युधा गा—स्तिष्ठद्धरी धृषता मृष्ट वाजान् ॥ ४ ॥
१८५८ वह कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन् त्स्यूमन्यू ऋज्रा वातस्याश्वा ।
प्र सूरश्चक्रं वृहतादभीके ऽभि स्पृधो यासिषद् वज्रबाहुः ॥ ५ ॥

अर्थ—[१८५५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत्) जब तूने (सप्त) सात (शारदीः) शरद् ऋतुके योग्य (पुरः) शत्रुके नगरोंके (शर्म) घरोंको (ददर्द) नष्ट किया, उसी समय (मृध—वाचः) दुःखानेवाली वाणी बोलनेवाले (विशः) शत्रुके सैनिकोंको भी (दनः) नष्ट कर दिया। हे (अनवद्य) निन्दा-रहित इन्द्र ! तूने (अर्णाः) बहनेवाले (अपः) जलोंको (ऋणोः) बढ़ाया और (यूने) जवान (पुरु—कुत्साय) पुरुकुत्सके लिये (वृत्रं) वृत्रका (रन्धीः) नाश किया ॥ २ ॥

[१८५६] हे (पुरु-हूत) बहुतों द्वारा प्रार्थित (इन्द्र) इन्द्र ! तू (नूनं) निश्चयसे (येभिः) जिन मरुतोंके साथ युद्धके लिये (द्यां च) द्युलोकको आता है उनसे मिलकर (शूर-पत्नीः) वीरोंसे रक्षित होकर तू (घृतः) शत्रुकी दीवारोंको (अज) नष्ट कर देता है और हमारे (दमे) घरमें (अपांसि) जलोंको (वस्तोः) स्थिरताके लिये (सिंहः न) सिंहके समान वीरतासे इस (अशुषं) सुखानेवाले (तूर्वयाणं) वेगवान् (अग्निं) अग्निकी (रक्षः) रक्षा कर ॥ ३ ॥

[१८५७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते) वे असुर तेरा (प्र—शस्तये) महत्व बढ़ानेके लिये (पवीरवस्य) वज्रके (मह्ना) प्रतापसे (सस्मिन्) उसी (योनौ) युद्ध—स्थलमें (शेषन् नु) सो गये। (यत्) जब तूने (अर्णो-सि) जलोंको (अव सृजत्) बहाया और (युधा) युद्ध करते हुए शत्रुके पास (गाः) गया, उस समय तू अपने (हरी) दोनों घोड़ों पर (तिष्ठत्) बैठा। तू अपने (धृषता) धर्षक, शत्रु—नाशक बलसे (वाजान्) वीरोंको (मृष्ट) पवित्र बना ॥ ४ ॥

[१८५८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (यस्मिन्) जिसके यज्ञमें हवि (चाकन्) चाहता है, (स्यूमन्यू) सुखके अभिलाषी (ऋज्रा) सीधा चलनेवाले (वातस्य) वायुके समान वेगवाले (अश्वा) घोड़ोंको, (कुत्सं) कुत्सकी ओर (वह) ले जा। (सूरः) सूर्य उसके (अभीके) समीप अपना (चक्रं) चक्र (प्रवृहतात्) चलाये और (वज्र-बाहुः) हाथमें वज्र धारनेवाला इन्द्र (स्पृधः) शत्रुओंकी (अभि) ओर (यासिषत्) जाये ॥ ५ ॥

भावार्थ— शत्रुके नगर कई प्रकारके हैं उनमें कुछ शरद् ऋतुके लिये भी हैं। इन्द्र उनको नष्ट कर वृत्र और उसके साथियोंको मारता है ॥ २ ॥

अग्नि सुखाता और शीघ्र चलता है। अग्निसे ही घरके सारे काम होते हैं। इन्द्र इस अग्निकी रक्षा करता है। और शत्रुके किलोंको दीवारोंको तोड़ता है। शरीरमें अग्नि रोगजन्तुओंको सुखाकर उन्हें नष्ट करता है और शरीरको स्वस्थ बनाकर उसे चलने फिरने योग्य बनाता है ॥ ३ ॥

जब शत्रु मरकर पृथिवी पर गिरते हैं तो उससे इन्द्रका गौरव बढ़ता है क्योंकि शत्रुको मारना वीरका ही काम है। वह अपने बलसे अपने वीरोंको भी दोष—रहित रखता है ॥ ४ ॥

इन्द्र अपने घोड़ोंको यज्ञमें ले जा। कुत्सके युद्धमें सूर्य सहायता करता है और इन्द्र शत्रुकी ओर दौड़ता है। इसी प्रकार यदि राजा सम्मान चाहे तो वह राष्ट्रसे (कु—रस) बुराईको दूर करनेवाले सज्जनकी रक्षा करे और उसे ही हर प्रकारकी सहायता प्रदान करे ॥ ५ ॥

१८५९ जघन्वाँ इन्द्र मित्रेरू॒ ओदप्रवृद्धो हरिवो अदाशून् ।
प्र ये पश्यन्नर्यमणं सचायो॒स्त्वया शूर्ता वहमाना अपत्यम् ॥ ६ ॥
१८६० रपत् कविरिन्द्रार्कसातौ क्षां दासायोप॒बर्हणीं कः ।
करत् तिस्रो मघवा दानुचित्रा नि दुर्योणे कुयवाचं मृधि श्रेत् ॥ ७ ॥
१८६१ सना ता ते इन्द्र नव्या आगुः सहो नभोऽविरणाय पूर्वीः
भिनत् पुरो न भिदो अदेवी॒र्नन॒मो वधरदेवस्य पी॒योः ॥ ८ ॥
१८६२ त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमती॒र्ऋणोरपः सीरा न स्रवन्तीः ।
प्र यत् समुद्रमति शूर पर्षि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति ॥ ९ ॥

अर्थ—[१८५९] हे (हरि--वः) घोड़ोंवाले (इन्द्र) इन्द्र ! (ओद--प्रवृद्धः) उत्साहसे वृद्धिको प्राप्त हुए तूने (मित्रेरून्) मित्रोंके वैरी (अदाशून्) अदाता शत्रुओंको (जघन्वान्) मारा (ये) जिन्होंने (आयोः) अजके (सचा) साथ तुझ (अर्यमणं) दानीको (प्र पश्यन्) देखा, वे (अपत्यं) सन्तानको (वहमानाः) प्राप्त करते हुए (त्वया) तेरे द्वारा (शूर्ताः) वीर बनाये गये ॥ ६ ॥

१ मित्रेरून् अदाशून् जघन्वान्— इन्द्रने मित्रके समान हित करनेवाले सज्जनोंके वैरी और दान न देनेवालोंको मारा ।

[१८६०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (कविः) कविने (अर्क--सातौ) स्तुति करनेके समय तेरी (रपत्) प्रशंसा की । तूने (क्षां) पृथिवीको (दासाय) शत्रुके लिये (उप--बर्हणी) शय्या (कः) बना दी— शत्रुको मारा । (मघवा) धनी इन्द्रने (तिस्रः) तीनों स्थानोंको (दानु--चित्राः) देने योग्य पदार्थोंसे सुशोभित (करत्) कर दिया । (दुर्योणे) दुर्योणके (मृधि) युद्धमें (कुयवाचं) कुयवाचको (नि श्रेत्) नष्ट किया ॥ ७ ॥

[१८६१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नव्याः) नये ऋषियोंने (ते) तेरे (ता) उन (सना) सनातन स्तोत्रोंको फिर (आ अगुः) गाया । तूने (अवि--रणाय) युद्ध रोकनेके लिये (पूर्वीः) पुरानी (नभः) हिंसक शक्तियोंको (सहः) दबाया है । शत्रुके (पुरः न) नगरोंके समान उनके (अदेवीः) आसुरी (भिदः) भेदक बलोंको भी तूने (भिनत्) तोड़ दिया । (अदेवस्य) असुर (पीयोः) हिंसक शत्रुके (वधः) शस्त्रास्त्रोंको भी (ननमः) तूने नीचा कर दिया ॥ ८ ॥

[१८६२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं) तू शत्रुओंको (धुनिः) कँपानेवाला है, इन (स्रवन्तीः) बहती हुई (सीराः न) नदियोंके समान तटको (धुनि--मतीः) तोड़नेवाले (अपः) जलोंको (ऋणोः) तूने प्रवाहित कर दिया है । हे (शूर) पराक्रमी इन्द्र ! (यत्) जब तू (समुद्रं) समुद्रको जलसे (प्र अति पर्षि) पूरा भर देता है तब (तुर्वशं) तुर्वश और (यदुं) यदुको (स्वस्ति) कुशलतासे (पारय) पार कर ॥ ९ ॥

भावार्थ— इन्द्रके बहुतसे मित्र हैं । जो लोग उनसे शत्रुता करते हैं, इन्द्र उन्हें मारता है । जो उस इन्द्रको भज लेता है, इन्द्र उसे पुत्र और वीरता देता है ॥ ६ ॥

स्तुतिके स्थानमें इन्द्रका स्तोत्र गाया जाता है । वह इन्द्र शत्रुको मारकर पृथिवी पर सुला देता है । यागोंके स्थानों में भरपूर दान करता और दुर्योणके मित्र कुयवाचको मारता है । जो बुरे स्थान पर रहता है, वह दुर्योण और जो दुष्टवाणी बोलता है वह कुयवाच है । इन दोनोंको इन्द्र मारता है ॥ ७ ॥

इन्द्र शत्रुओंको मार कर युद्ध रोकता है । तब उसके पराक्रमकी प्रशंसा करनेके लिए ऋषि उसके स्तोत्र गाते हैं ॥ ८ ॥

इन्द्र रुके हुए जल प्रवाहित करता, समुद्रको भरता और तुर्वश आदिका पालन करता है । जब वह जलोंका प्रवाह छोड़ देता है, तब नदियां अपने किनारोंको तोड़कर बहने लगती हैं, वे नदियां समुद्रको भरती हैं ॥ ९ ॥

१८६३ त्वमस्माकमिन्द्र विश्वध स्या अवृकतमो नरां नृपाता ।
स नो विश्वासां स्पृधां सहोदा विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० ॥

[१७५]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- स्कंधोग्रीवी बृहती; २-५ अनुष्टुप, ६ त्रिष्टुप् ।)

१८६४ मत्स्यपाय्यि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।
वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः ॥ १ ॥

१८६५ आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः ।
सहावाँ इन्द्र सानसिः पृतनाषाळमर्त्यः ॥ २ ॥

१८६६ त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् ।
सहावान् दस्युमव्रत ओषः पात्रं न शोचिषा ॥ ३ ॥

अर्थ— [१८६३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं) तू (विश्व-ध) सर्वदा (अस्माकं) हमारा (अवृक-तमः) बहुत कपटरहित (नरां नृ-पाता) प्रजा-रक्षक है । (सः) वह तू (नः) हमारी (विश्वासां) सारी (स्पृधां) सेनाओंका (सहः-दाः) बल बढानेवाला बन, जिससे हम (इषं) अन्न (वृजनं) बल और (जीर-दानुं) दीर्घ जीवन (विद्याम) प्राप्त कर सकें ॥ १० ॥

१ अवृकतमः नृपाता— यह इन्द्र छल कपटसे रहित मनुष्योंका पालक है ।

[१७५]

[१८६४] हे (हरि-वः) घोडोंवाले इन्द्र ! (ते) तेरा (महः) महान् सोम तेरे द्वारा (अपायि) पिया गया है, तू उससे (मत्सि) तृप्त हो । यह (मदः) आनंद देनेवाला सोम अन्य (पात्रस्य इव) पात्रोंमें रखे सोमोंके समान ही (मत्सरः) आनंदकारक है । (ते) तुझ (वृष्णे) दानशील इन्द्रके लिये यह (वाजी) बल बढानेवाला (सहस्र-सातमः) सहस्रोंकी संख्यामें अन्न प्राप्त करानेमें [illegible] (वृषा) बलवर्धक (इन्दुः) सोम है ॥ १ ॥

[१८६५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नः) हमारा (वृषा) बलवर्धक (मत्सरः) आनन्ददायक (वरेण्यः) उत्तम (सहवान्) शत्रु-नाशक शक्तिसे युक्त (सानसिः) दानशील (पृतनाषाद्) शत्रुसेनाको परास्त करनेवाला (अमर्त्यः) अमर (मदः) सोम (ते) तेरे पास (आगन्तु) आवे ॥ २ ॥

[१८६६] हे इन्द्र ! (त्वं हि) तू ही (शूरः) वीर, धनोंका (सनिता) दाता है । तूने ही (मनुषः) मनुष्यके (रथं) रथको (चोदयः) प्रेरणा दी है । (सहवान्) बलसे युक्त तू अपने (शोचिषा) तेजसे, आग पर चढे (पात्रं न) बर्तनके समान, (अव्रतं) व्रतहीन (दस्युं) असुरको (ओषः) जला दिया ॥ ३ ॥

भावार्थ— इन्द्र कपट रहित होकर प्रजाकी रक्षा करता है । और सारी सेनाओंको बल प्रदान करता है ॥ १० ॥

सोम उत्साहवर्धक होता है, इन्द्र जिसे पीकर तृप्त होता और असंख्य धन जीतता है ॥ १ ॥

सोम इन्द्रमें उपर्युक्त सारे गुण बढाता है सोम स्वयं भी आनन्ददायक उत्तम और शत्रुनाशक शक्तिसे युक्त है ॥ २ ॥

यह इन्द्र मनुष्यके रथको प्रेरित करता है और शत्रुओंको उसी प्रकार सुखा देता है, जिस प्रकार चूल्हे पर चढे हुए बर्तनको अग्नि । शरीरमें यह इन्द्र--आत्मा इस मनुष्य शरीररूपी रथको प्रेरित करता है, यदि यह इन्द्र न हो तो रथ न चले ॥ ३ ॥

१८६७ मुषाय सूर्यं कवे चक्रमीशान ओजसा ।
वह शुष्णाय वधं कुत्सं वातस्याश्वैः ॥ ४ ॥

१८६८ शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः ।
वृत्रघ्ना वरिवोविदा मंसीष्ठा अश्वसातमः ॥ ५ ॥

१८६९ यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्यं इन्द्र मय इवापो न तृष्यते बभूथ ।
तामनु त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥

[१७६]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- अनुष्टुप् : ६ त्रिष्टुप् ।)

१८७० मत्सि नो वस्य इष्टय इन्द्रमिन्दो वृषा विश ।
ऋघायमाण इन्वसि शत्रुमन्ति न विन्दसि ॥ १ ॥

अर्थ—[१८६७] हे (कवे) मेधावी इन्द्र! सबके (ईशानः) स्वामी तूने अपने (ओजसा) बलसे (सूर्य) सूर्यका (चक्रं) चक्र (मुषाय) छीन लिया । तू (वातस्य) वायुके (अश्वैः) घोड़ों द्वारा (शुष्णाय) शुष्णके मारनेके लिये (कुत्सं) कुत्सके पास अपना (वधं) मारक वज्र (वह) ले जा ॥ ४ ॥

[१८६८] हे इन्द्र ! (ते) तेरा (मदः) आनन्द (शुष्मिन्तमः) उत्तम बलकारक है (उत) और तेरा (क्रतुः) कर्म (द्युम्निन्तमः) बहुत अन्न देनेवाला है । (अश्वसातमः) घोड़े देनेवालोंमें प्रसिद्ध तू हमारे लिये (वृत्र-घ्ना) वृत्रको मारनेवाले और (वरिवः-विदा) धन देनेवाले शस्त्रोंको (मंसीष्ठाः) दे ॥ ५ ॥

[१८६९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यथा) जिस प्रकार तू (पूर्वेभ्यः) पहले (जरितृभ्यः) स्तोताओंके लिये, (तृष्यते) प्यासेके लिये (आपः न) जलके समान और दुःखीके लिये (मयः इव) सुखके समान आनन्दप्रद (बभूथ) हुआ, मैं उस (त्वा) तुझ इन्द्रको (तां) वह पुरानी (नि-विदं) स्तुति (अनु जोहवीमि) बार-बार कहता हूँ । हम (इषं) अन्न (वृजनं) बल और (जीर-दानुं) दीर्घजीवन (विद्याम) प्राप्त करें ॥ ६ ॥

[१७६]

[१८७०] हे इन्द्र ! तू (नः) हमें (वस्यः-इष्टये) धनकी प्राप्तिके लिये (मत्सि) आनंदित कर । तथा हे (इन्दो) सोम ! (वृषा) बलदाता तू (इन्द्रं) इन्द्रके देहमें (आ विश) प्रवेश कर । शत्रुओंको (ऋघायमाणः) मारते हुए देवोंके देहमें (इन्वसि) तू व्याप्त होता है और (शत्रुं) शत्रुको (अन्ति) समीप (न) नहीं (विन्दसि) आने देता है ॥ १ ॥

भावार्थ— इन्द्र कुत्सकी रक्षाके लिये उसे वज्रकी सहायता पहुँचाता है ॥ ४ ॥

इन्द्र कर्मसे फल और अन्न-धन प्राप्त करता है । उसका आनन्द भी सबको बल देनेवाला होता है ॥ ५ ॥

प्यासेको जल और दुःखीको सुख मिलनेके समान इन्द्र स्तोताओंका आनन्ददाता और प्रिय है । उसकी कृपासे हम अन्न, बल और दीर्घजीवन प्राप्त करें ॥ ६ ॥

इन्द्रादि देव सोम पीकर शत्रुओंको बहुत दूर भगा देते हैं । शरीरमें यह इन्द्र-आत्मा काम-क्रोधादि शत्रुओंको मारते हुए देवों अर्थात् इन्द्रियोंमें प्रविष्ट होता है अर्थात् उन्हें शक्ति प्रदान करता है ॥ १ ॥

१८७१ तस्मिन्ना वेशया गिरो य एकश्चर्षणीनाम् ।
अनु स्वधा यतुष्पते यवं न चक्रुषद् वृषा ॥ २ ॥
१८७२ यस्य विश्वानि हस्तयोः पञ्च क्षितीनां वसु ।
स्पाशयस्व यो अस्मध्रुग्दिव्येवाशनिर्जहि ॥ ३ ॥
१८७३ असुन्वन्तं समं जहि दूणाशं यो न ते मयः ।
अस्मभ्यमस्य वेदनं दृढ्हि सूरिश्चिदोहते ॥ ४ ॥
१८७४ आवो यस्य द्विबर्हसो ऽर्केषु मानुषेषसत् ।
आजाविन्द्रस्य इन्दो प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ५ ॥

अर्थ—[१८७१] (यः) जो इन्द्र मागो (चर्षणीनां) प्रजाओंका (एकः) अकेला स्वामी है, (यं अनु) जिसको (स्वधा) अन्न (उप्यते) दिया जाता है, जो (वृषा) बलवान् इन्द्र शत्रुओंका वध (यवं न) यवके समान (चक्रुषत्) काट डालता है; तू (तस्मिन्) उसमें अपना (गिरः) स्तुतियोंका (आ वेशय) प्रवेश करा। उसकी स्तुति कर ॥ २ ॥

[१८७२] हे इन्द्र ! (पञ्च) पांचों प्रकारकी (क्षितीनां) प्रजाओंका (विश्वानि) सारा (वसु) धन (यस्य) जिस तुझ इन्द्रके (हस्तयोः) हाथोंमें है, वह तू (यः) जो (अस्मध्रुक्) हमारा द्रोही है, उसे (स्पाशयस्व) पाशोंसे बांध और (दिव्या अशनेः इव) आकाशसे गिरनेवाली बिजलीके समान उसका (जहि) नाश कर दे ॥ ३ ॥

[१८७३] हे इन्द्र ! (यः) जो (ते) तेरे लिये (मयः) सुख (न) नहीं देता, उस (समं) सारे (दुःनाशं) कठिनतासे नष्ट होनेवाले, (असुन्वन्तं) यज्ञ न करनेवालेका जहि) मार। (अस्य) इसका (वेदनं) धन (अस्मभ्यं) हमें दृढि) दे, क्योंकि वह धन (सूरिः) ज्ञानी (चित्) ही (ओहते) प्राप्त करता है ॥ ४ ॥

[१८७४] अर्केषु) स्तोत्र पढ़ते समय सानुषक्) सदैव (असत्) विद्यमान रहते हुए तूने यस्य) जिस (द्वि-बर्हसः) दो प्रकारके यज्ञोंको करनेवाले यजमानकी (आवः) रक्षा की, उसके समान हे (इन्दो) सोम ! (आजौ) युद्धमें (इन्द्रस्य) इन्द्रकी तथा दूसरे (वाजेषु) युद्धोंमें अन्य (वाजिनं) वीरकी (प्र आवः) रक्षा कर ॥ ५ ॥

भावार्थ—स्तोता उसकी स्तुति करते हैं जो सबका एक शासक और शत्रुओंका नाश करनेवाला है। वह शत्रुओंको उतनी ही आसानीसे काटता है जितनी आसानीसे किसान औंधा फसलको काटते हैं ॥ २ ॥

संसारका सारा धन इन्द्रके हाथमें है। वह धन जो चाहता है उसको इन्द्र प्राप्त करा सकता है। इन्द्रके उपासकोंसे जो द्रोह करता है, वह नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

जो इन्द्रको आनंद नहीं देता अथवा यज्ञ नहीं करता, वह उसका भागी नहीं है। इन्द्र उसे मारता और उसका धन यज्ञकर्ताको देता है ॥ ४ ॥

सोमने युद्धमें इन्द्रका रक्षण किया। सोम पीनेसे इन्द्रका उत्साह बढ़ा और उससे इन्द्र विजयी हुआ ॥ ५ ॥

१८७५ यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्यं इन्द्र मयं इवापो न तृष्यते बभूथ ।
तामनु त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥

[१७७]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१८७६ आ चर्षणिप्रा वृषभो जनानां राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः ।
स्तुतः श्रवस्यन्नवसोप मद्रिग्युक्त्वा हरी वृषणा याह्यर्वाङ् ॥ १ ॥
१८७७ ये ते वृषणो वृषभासः इन्द्र ब्रह्मयुजो वृषरथासो अत्याः ।
तॉं आ तिष्ठ तेभिरा याह्यर्वाङ् हवामहे त्वा सुत इन्द्र सोमे ॥ २ ॥
१८७८ आ तिष्ठ रथं वृषणं वृषा ते सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि ।
युक्त्वा वृषभ्यां वृषभ क्षितीनां हरिभ्यां याहि प्रवतोप मद्रिक् ॥ ३ ॥

अर्थ— [१८७५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यथा) जिस प्रकार तू (पूर्वेभ्यः) पहले (जरितृभ्यः) स्तोताओंके लिए (तृष्यते आपः न) प्यासेके लिए जलके समान और दुःखीके लिए (मयः इव) सुखके समान आनन्दप्रद (बभूथ) हुआ, मैं उस (त्वा) तुझ इन्द्रको (तां निविदं) वह पुरानी स्तुति (अनु जोहवीमि) बार बार कहता हूँ । हम (इषं वृजनं जीरदानुं विद्याम) अन्न, बल और दीर्घजीवन प्राप्त करें ॥ ६ ॥

[१७७]

[१८७६] तू (इन्द्रः) इन्द्र (चर्षणि-प्राः) प्रजाका रक्षक (जनानां वृषभः) मनुष्योंमें बलवान् (कृष्टीनां) प्रजाओंका (राजा) स्वामी और (पुरुहूतः) बहुतोंसे सहायतार्थ प्रार्थित (आ) है । तू (स्तुतः) प्रशंसित होकर हमारे लिये (श्रवस्यन्) यश चाहता हुआ (अवसा) रक्षाके साथ (उप मद्रिक्) हमारी ओर, (वृषणा) बलवान् (हरी) घोड़े रथमें (युक्त्वा) जोड़ कर (अर्वाङ्) हमारे समीप (आ याहि) आ ॥ १ ॥

[१८७७] हे (इन्द्रः) इन्द्र ! (ये) जो (ते) तेरे (वृषणः) बलवान् (वृषभासः) सामर्थ्यवान् (ब्रह्म-युजः) शब्दके इशारेसे रथमें जुड़नेवाले (वृषरथासः) उत्तम सामर्थ्ययुक्त रथमें जुड़नेवाले (अत्याः) घोड़े हैं (तान्) उन पर (आ तिष्ठ) बैठ । (तेभिः) उनके द्वारा (अर्वाङ्) हमारी ओर (आ याहि) आ । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सोमे) सोमके (सुते) बनाने पर हम (त्वा) तुझे (हवामहे) बुलाते हैं ॥ २ ॥

[१८७८] हे इन्द्र ! तू (वृषणं) बलवर्धक (रथं) रथ पर (आ तिष्ठ) बैठ । (ते) तेरे लिये (वृषा) बलवर्धक (सोमः) सोम (सुतः) निचोड़ा गया है और उसमें (मधूनि) मीठे पदार्थ (परिसिक्ता) मिलाये गये हैं । हे (वृषभ) बलवान् इन्द्र ! तू (वृषभ्यां) बलवान् (हरिभ्यां) घोड़ोंसे रथको (युक्त्वा) जोड़कर उस (प्र-वता) विशेष गतिवाले रथसे अपनी (क्षितीनां) प्रजाओंके (मद्रिक्) पास (उप याहि) आ ॥ ३ ॥

भावार्थ— प्यासेको जल और दुःखीको सुख मिलनेसे जो आनन्द होता है, उसीके समान इन्द्र स्तोताओंको आनन्द-दाता और प्रिय है । उसकी कृपासे हम भी अन्न, बल और दीर्घजीवन प्राप्त करें ॥ ६ ॥

इन्द्र प्रजापालक, बलवान्, तेजस्वी, बहुत प्रतिष्ठित और प्रजाओंका स्वामी है, क्योंकि उसे यश पानेके लिये सभी लोग बुलाते हैं ॥ १ ॥

इन्द्र अपने बलवान् घोड़े रथमें जोड़कर आता है । उसके घोड़े बलवान्, शक्तिशाली और शब्दके इशारेसे रथमें जुड़ जानेवाले हैं । ऐसे सुशिक्षित घोड़े इन्द्रके हैं ॥ २ ॥

इन्द्रके लिये सोममें मीठे पदार्थ मिलाये जाते हैं, जिन्हें पीनेके लिये वह स्तोताओंके पास आता है ॥ ३ ॥

१८७९ अ॒यं य॒ज्ञो दे॑व॒या अ॒यं मि॒येध॑ इ॒मा ब्रह्मा॑ण्य॒यमि॑न्द्र॒ सोमः॑ ।
स्ती॒र्णं ब॒र्हिरा तु श॑क्र॒ प या॑हि॒ पिबा॑ नि॒षद्य॒ वि मु॑चा॒ हरी॑ इ॒ह ॥ ४ ॥

१८८० ओ सुष्टु॑त इन्द्र याह्य॒र्वा॒ङुप॒ ब्रह्मा॑णि मा॒न्यस्य॑ का॒रोः ।
वि॒द्याम॒ वस्तो॒रव॑सा गृ॒णन्तो॑ वि॒द्यामे॒षं वृ॒जनं॑ जी॒रदा॑नुम् ॥ ५ ॥

[१७८]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१८८१ यद्ध॒ स्या त॑ इन्द्र श्रु॒ष्टिरस्ति॒ यया॑ ब॒भूथ॑ जरि॒तृभ्य॑ ऊ॒ती ।
मा नः॒ कामं॑ म॒हय॑न्त॒मा ध॒ग्विश्वा॑ ते अश्यां॒ पर्याप॑ आ॒योः ॥ १ ॥

१८८२ न घा॒ राजेन्द्र॒ आ द॑भन्नो॒ या नु स्वसा॑रा कृ॒णव॑न्त॒ योनौ॑ ।
आप॑श्चिदस्मै सु॒तुका॑ अवेष॒न् गम॑न्न॒ इन्द्रः॑ सख्या॒ वय॑श्च ॥ २ ॥

अर्थ— [१८७९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अयं) यह (देवयाः) देवोंको प्राप्त होनेवाला (यज्ञः) यज्ञ, (अयं) यह (मियेधः) पवित्र दूध देनेवाला पशु, (इमा) ये (ब्रह्माणि) स्तोत्र और (अयं) यह (सोमः) सोम तेरे लिये है। (बर्हिः) आसन (स्तीर्णं) बिछा हुआ है, हे (शक्र) सामर्थ्यवान् इन्द्र ! तू (आ प्र याहि तु) समीप आ इस पर (नि-सद्य) बैठ कर सोम (पिब) पी और (इह) यहां ही अपने (हरी) घोडे (विमुच) खोल ॥ ४ ॥

[१८८०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सु-स्तुतः) भली भाँति स्तुति किया हुआ तू (मान्यस्य) प्रतिष्ठा योग्य (कारोः) स्तोताके (ब्रह्माणि उप) स्तोत्रोंके समीप हमारे (अर्वाङ्) यहां (आ-उ याहि) आ । हम (वस्तोः) प्रत्येक दिन तेरी (अवसा) रक्षासे तेरी (गृणन्तः) प्रशंसा करते हुए धनादिको (विद्याम) प्राप्त करें और (इषं) अन्न, (वृजनं) बल और (जीरदानुं) विजयशील दान (विद्याम) प्राप्त करें ॥ ५ ॥

[१७८]

[१८८१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत् ह) जो कि (ते) तेरा (स्या) वह (श्रुष्टिः) धन है (यया) जिससे तू (जरितृभ्यः) स्तोताओंका (ऊती) रक्षक (बभूथ) हुआ है वह हमें दे । (नः) हमारी (महयन्तं) बढती हुई (कामं) कामनाको (मा धक्) नष्ट मत कर । मैं (ते) तेरे (आयोः) मानवके योग्य (विश्वा) सारे (आपः) धनोंको (परि अश्यां) सब ओरसे भोगूँ ॥ १ ॥

[१८८२] हमारी (स्वसारा) अंगुलियोंने (या नु) जिन कार्योंको (योनौ) यज्ञ-स्थानमें (कृणवन्त) किया, (नः) हमारे उन कार्योंको (राजा) तेजस्वी (इन्द्रः) इन्द्र, (न घ) मत (आ दभत्) नष्ट करे । (आपः चित्) जल भी (अस्मै) इसके लिये (सु-तुकाः) अच्छी गतिवाले होकर (अवेषन्) प्राप्त हों । (इन्द्रः) इन्द्र (नः) हमें (सख्या) मित्रता (वयः च) और अन्न (गमत्) दे ॥ २ ॥

भावार्थ— इन्द्रके लिये यज्ञ रचाया जाता है, वहाँ सोम बनता और आसन बिछाया जाता है जिस पर बैठ कर वह सोम पीता है ॥ ४ ॥

इन्द्र स्तुतिके स्थान पर आता और स्तोताओंको धनादि देता है । वह इन्द्र प्रतिष्ठाके योग्य है, सभी इसका मान करते हैं ॥ ५ ॥

इन्द्र स्तोताकी इच्छाको बीचमें ही नष्ट नहीं करता, उसे बढाता है । हे इन्द्र ! जिस धनसे तू स्तोताओंकी रक्षा करता है, उसे हमें दे । मैं तेरे सभी धनोंका उपभोग करूं ॥ १ ॥

हमारी उंगलियोंने जिस यज्ञ रूप कर्मको शुरु किया है, राजा इन्द्र उसे बीचमें नष्ट न कर दे । उसे हर तरहके पहाडे हम प्रदान करते हैं । अतः वह प्रसन्न होकर हमें उत्तम अन्न प्रदान करे ॥ २ ॥

१८८३ जेता नृभिरिन्द्रः पृत्सु शूरः श्रोता हवं नाधमानस्य कारोः ।
प्रभर्ता रथं दाशुषे उपाके उद्यन्ता गिरो यदि च त्मना भूत ॥ ३ ॥
१८८४ एवा नृभिरिन्द्रः सुश्रवस्या प्रखादः पृक्षो अभि मित्रिणो भूत ।
सभर्य इषः स्तवते विवाचि सत्राकरो यजमानस्य शंसः ॥ ४ ॥
१८८५ त्वया वयं मघवन्निन्द्र शत्रूनभि ष्याम महतो मन्यमानान् ।
त्वं त्राता त्वमु नो वृधे भूर्विश्यामैषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ५ ॥

[१७९]

(ऋषिः- १-२ लोपामुद्राः ३-४ अगस्त्यो मैत्रावरुणिः ५-६ अगस्त्यशिष्यो ब्रह्मचारी । देवता- रतिः । छन्दः- त्रिष्टुप्, ५ बृहती ।)

१८८६ पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा दोषा वस्तोरुषसो जरयन्तीः ।
मिनाति श्रियं जरिमा तनूना मप्यू नु पत्नीर्वृषणो जगम्युः ॥ १ ॥

अर्थ—[१८८३] (शूरः) पराक्रमी (इन्द्रः) इन्द्र (पृत्-सु) युद्धोंमें (नृभिः) सैनिकोंके साथ धनका (जेता) जीतनेवाला; (नाधमानस्य) याचना करते हुए (कारोः) स्तोताकी (हवं) पुकारको (श्रोता) सुननेवाला; (दाशुषः) दानशील यजमानके (उपाके) समीप (रथं) रथको (प्र-भर्ता) ठहरानेवाला (यदि च) और यदि यजमान (त्मना) मनसे स्तुति करनेवाला (भूत्) हो तो उसकी (गिरः) वाणियोंको (उत्-यन्ता) ऊपर उठानेवाला होता है ॥ ३ ॥

[१८८४] (सु-श्रवस्या) उत्तम कीर्तिवाला (इन्द्रः) इन्द्र (एव) इस प्रकार (नृभिः) वीरोंके साथ (मित्रिणः) मित्रके (पृक्षः अभि) अन्नको (प्र-खादः) खानेवाला (भूत्) होता है । स्तोताकी इच्छाको (सत्रा करः) सत्य करनेवाला और (यजमानस्य) यजमानका (शंसः) हितैषी इन्द्र (वि-वाचि) महावीर एक दूसरे के विरुद्ध बोलते हैं ऐसे (स-मर्ये) युद्धमें (इषः) अन्नोंकी (स्तवते) स्तुति करता है ॥ ४ ॥

[१८८५] हे (मघवन्) धनवान् (इन्द्र) इन्द्र ! (वयं) हम लोग (महतः) बड़े (मन्यमानान्) घमण्डी (शत्रून्) शत्रुओंको (त्वया) तेरे साथ मिल कर (अभि स्याम) हरा दें । (त्वं) तू हमारा (त्राता) रक्षक और (त्वं उ) तू ही (नः) हमारी (वृधे) वृद्धि, उन्नतिका कारण (भूः) बन । जिससे हम (इषं) अन्न, (वृजनं) बल और (जीर-दानुं) जीवन (विद्याम) प्राप्त करें ॥ ५ ॥

[१७९]

[१८८६] (पूर्वीः शरदः) अनेकों वर्षोंतक (दोषा वस्तोः दिन रात और उषसः) उषाओंमें काम करती हुई अब (जरयन्तीः) वृद्ध हो जानेके कारण (अहं शश्रमाणा) मैं थक गई हूँ । अब (जरिमा) बुढापा (तनूनां श्रियं मिनाति) मेरे अंगोंकी शोभाको नष्ट कर रहा है, इसलिए (वृषणः पत्नीः जगम्युः) तरुण और वीर्यवान् व्यक्ति ही पत्नियोंके समीप जायें ॥ १ ॥

भावार्थ— इन्द्र वीरोंका साथी, विपदामें पड़े हुओंका सच्चा सहायक और भक्तिका-उपकारका सच्चा फल देनेवाला है ॥ ३ ॥

यजमानकी इच्छा पूर्ण करता और उसे युद्धमें अन्न-धन प्राप्त कराता है । वह इन्द्र सदा अपने मित्रके अन्नको ही खाता है । और जहां वीर परस्पर आह्वान करते हैं, ऐसे युद्धमें वह इन्द्र अपने मित्रकी रक्षा करता है ॥ ४ ॥

इन्द्रके सहायक बनने पर बड़े-बड़े घमण्डियोंका सिर नीचा हो जाता है । हे इन्द्र । तू ही हमारा रक्षक और उन्नति करनेवाला बन । हम दूसरेके पास न जायें ॥ ५ ॥

अनेकों वर्षोंतक दिन रात लगातार काम करनेके कारण जो बुढापा आने पर थक जाती है, और उस समय वह बुढापा उस स्त्रीकी सारी सुन्दरता और शोभा हर लेता है और उस समय उसमें प्रजनन शक्ति भी नहीं रह जाती, इसलिए सन्तान प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले जो पुरुषोंको चाहिए कि वे तारुण्यावस्थामें ही सन्तान प्राप्तिके लिए प्रयत्न करें ॥ १ ॥

१८८७ ये चिद्धि पूर्व ऋतसाप आसन् साकं देवेभिरवदन्नृतानि ।
ते चिदवासुर्नह्यन्तमापुः सम् नु पत्नीर्वृषभिर्जगम्युः ॥ २ ॥
१८८८ न मृषा श्रान्तं यदवन्ति देवा विश्वा इत् स्पृधो अभ्यश्नवाव ।
जयावेदत्रं शतनीथमाजिं यत् सम्यञ्चा मिथुनावभ्यजाव ॥ ३ ॥
१८८९ नदस्य मा रुधतः काम आगन्नित आजातो अमुतः कुतश्चित् ।
लोपामुद्रा वृषणं नी रिणाति धीरमधीरा दयते श्वसन्तम् ॥ ४ ॥
१८९० इमं नु सोममन्तितो हृत्सु पीतमुप ब्रुवे ।
यत् सीमागश्चकृमा तत् सु मृळतु पुलुकामो हि मर्त्यः ॥ ५ ॥

अर्थ— [१८८७] (ये चित् हि) जो भी (पूर्वे ऋतसापः आसन्) पहले सत्यबोलनेवाले ऋषि थे, वे (देवेभिः साकं ऋतानि अवदन्) देवोंके साथ सत्य बोलते थे, वे भी (अव असुः) वीर्य सिंचन करते थे, (न हि अन्तं आपुः) वे भी ब्रह्मचर्यका अन्त नहीं पा सके । (पत्नीः वृषभिः आ जगम्युः) पत्नियाँ उन बलवान् और वीर्य सिंचनमें समर्थ अपने पतियोंसे जाकर मिलीं ॥ २ ॥

[१८८८] (न मृषा श्रान्तं) हमारा परिश्रम व्यर्थ ही नहीं है, (यत् देवाः अवन्ति) क्योंकि देवगण हमारी रक्षा करते हैं । इसीलिए हमने (विश्वा इत् स्पृधः अभ्यश्नवाव) सारे संग्राम जीत लिए हैं । (यत्) यदि (सम्यञ्चा मिथुनौ) परस्पर प्रेमपूर्वक रहनेवाले हम दम्पती (अभ्यजाव) पुत्र उत्पन्न करें, तो (अत्र शतनीथं आजिं जयाव) इस संसारमें सैकड़ों प्रकारके भोग साधनोंसे-युक्त संग्रामको जीतें ॥ ३ ॥

[१८८९] (रुधतः नदस्य) रोकी हुई नदीके पानीके समान (इतः अमुतः कुतश्चित् आजातः) इधरसे, उधरसे, कहींसे और चारों ओरसे उत्पन्न (कामः आगत्) काम आ गया है, (लोपामुद्रा वृषणं निरिणाति) लोपामुद्रा बलवान्‌के साथ संयुक्त होती है, और (अधीरा) चंचल मनवाली वह (श्वसन्तं धीरं धयति) दीर्घ सांस लेनेवाले धीरका उपभोग करती है ॥ ४ ॥

[१८९०] (हृत्सु पीतं) मनःपूर्वक पीए गए (इमं सोमं अन्तितः) इस सोमके पास जाकर (उप ब्रुवे) मैं प्रार्थना करता हूँ, (यत् किं (यत् सीं आगः चकृम) हमने जो कुछ भी पाप किया हो, (तत् सु मृळतु) उसे सोम सुखी करे । (हि) क्योंकि (पुलुकामो मर्त्यः) मनुष्य अनेकों कामनाओंवाला होता है ॥ ५ ॥

भावार्थ— कामका प्रभाव इतना तीव्र है कि इसके प्रभावसे कोई भी अछूता नहीं रहा । बड़े बड़े महर्षि भी ब्रह्मचर्यको पालन करनेमें असमर्थ रहे । तब साधारण मनुष्योंकी तो बात ही क्या ? उन समर्थ ऋषियोंसे उनकी पत्नियाँ मिलीं ॥ २ ॥

दम्पतियोंका परिश्रम वृथा नहीं होता, क्योंकि उनकी देवगण रक्षा करते हैं । यदि परस्पर प्रेमपूर्वक व्यवहार करनेवाले तथा उत्तम मार्गसे जानेवाले दम्पती उत्तम पुत्र पैदा करें, तो उस उत्तम पुत्रके कारण वे दोनों इस संसारमें हर तरहके कठिनाईयोंको जीत सकते हैं ॥ ३ ॥

जिस प्रकार रोक दी गई नदीका पानी इधर उधर अर्थात् चारों ओर फैल जाता है, उसी तरह मनुष्यमें काम सभी ओर फैलता है । उस समय की पुरुषका मन चंचल हो जाता है और उनका सांस तेज होने लगती है और हृदयकी धड़कन भी तेज हो जाती है । तब स्त्री उस बेचैनी पुरुषके साथ संयुक्त होती है ॥ ४ ॥

मनुष्यकी कामनायें अनेक होती हैं, और उन कामनाओंको पूर्ण करनेके लिए वह अनेक तरहके पाप भी कर सकता है । अतः यदि कोई पाप वह कर भी दे, तो ज्ञानी जन उसे क्षमा करें ॥ ५ ॥

१८९१ अगस्त्यः खनमानः खनित्रैः प्रजामपत्यं बलमिच्छमानः ।
उभौ वर्णावृषिरुग्रः पुपोष सत्या देवेष्वाशिषो जगाम ॥ ६ ॥

[१८०]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१८९२ युवो रजांसि सुयमासो अश्वा रथो यद् वां पर्यर्णांसि दीयत् ।
हिरण्यया वां पवयः प्रुषायन् मध्वः पिबन्ता उषसः सचेथे ॥ १ ॥

१८९३ युवमत्यस्यावे नक्षथो यद् विपत्मनो नर्यस्य प्रयज्योः ।
स्वसा यद् वां विश्वगूर्ती भरति वाजायेट्टे मधुपाविषे च ॥ २ ॥

अर्थ—[१८२१] (अगस्त्यः) अगस्त्यने (खनित्रैः खनिमानः) कुदाल आदिसे खोदते हुए (प्रजां अपत्यं बलं इच्छमानः) उत्तम सन्तानकी कामना की। (उग्रः ऋषिः) उस वीर ऋषिने (उभौ वर्णौ पुपोष) दोनों वर्णोंको पुष्ट किया और (देवेषु सत्याः आशिषः जगाम) देवोंसे उत्तम आशीर्वादोंको प्राप्त किया ॥ ६ ॥

[१८०]

[१८९२] (यत् वां रथः) जब तुम दोनोंका रथ (अर्णांसि परि दीयत्) समुद्रमें या अन्तरिक्षमें संचार करने लगता है तब (युवोः अश्वाः) तुम दोनोंके घोडे (रजांसि सुयमासः) अन्तरिक्षमें नियमपूर्वक चलते हैं तब (वां हिरण्ययाः पवयः) तुम्हारे सुवर्णमय पहियोंके अरे (प्रुषायन्) गीले होने लगते हैं, (उषसः) उषःकालमें (मध्वः पिबन्ता सचेथे) मीठे सोमरसको पीते हुए तुम दोनों इकट्ठे होकर आते हो ॥ १ ॥

[१८९३] हे (विश्व-गूर्ती) सबसे प्रशंसनीय तथा (मधुपौ) मधु पीनेवाले अश्विदेवो ! (युवं) तुम दोनों (यत् अत्यस्य) जब गतिशील (विपत्मनः) आकाशमें संचार करनेवाले (नर्यस्य प्रयज्योः) मानवोंके हितकारी और अत्यन्त पूजनीय सूर्यके (अव नक्षथः) पूर्व ही पहुंचे हो (यत् वां स्वसा) तब तुम्हारी बहन उषा (भरति) तुम्हारा पोषण करती है और (वाजाय इषे च) बल तथा अन्न पानेके लिए तुम्हारा ही (ईट्टे) स्तवन मानव करता है ॥ २ ॥

भावार्थ— प्रजा उत्पन्न करनेके बाद उनके भरण पोषणके लिए अगस्त्यने अन्नादि उत्पन्न करके अपने सन्तानोंको पुष्ट किया और इस प्रकार देवोंका आशीर्वाद उसने प्राप्त किया। प्रजाको उत्पन्न करके उनका भली प्रकार पालन पोषण करना चाहिए। तभी देव प्रसन्न होते हैं ॥ ६ ॥

हे अश्विदेवो ? जब तुम्हारा रथ समुद्रमें अथवा अन्तरिक्षमें संचार करने लगता है, तब उस रथको चलानेवाले अन्य संज्ञक गति साधन भी अन्तरिक्षमें अपने नियमानुसार चलने लगते हैं। तुम्हारे रथके सुवर्ण जैसे चमकनेवाले पहिये भी अन्तरिक्षस्थ मेघमण्डलके जलसे भीगने लगते हैं तथा समुद्रमें जलसे भीगते हैं। तुम तो मधुर सोमरस पीकर उषःकालमें ही संचार करने लगते हो ॥ १ ॥

सर्वदा प्रशंसनीय तथा मधुर सोमरसका पान करनेवाले अश्विदेवो ! सतत गतिमान, आकाश संचारी, मानवोंका हितकारी पूजायोग्य सूर्यके आनेके पूर्वही तुम दोनों आते हो। तब उषा तुम्हारी सहायता करती है और यज्ञमें यजमान बल बढाने और अन्न मिलनेके लिए तुम दोनोंकी प्रशंसा करते हैं। सूर्य मनुष्योंका हित करता है। उसके आनेके पूर्व उठो, उषः-कालमें तैयार रहो। अपना बल बढानेके लिए तथा पर्याप्त अन्न कमानेके लिए बलवान् हो जाओ ॥ २ ॥

१८९४ युवं पयं उस्रियायामधत्तं पक्वमामायामव पूर्व्यं गोः ।
अन्तर्यद् वनिनो वामृतप्सू हारो न शुचिर्यजते हविष्मान् ॥ ३ ॥
१८९५ युवं ह घर्मं मधुमन्तमत्रये ऽपो न क्षोदोऽवृणीतमेषे ।
तद् वां नरावश्विना पश्वहुष्टी रथ्येव चक्रा प्रति यन्ति मध्वः ॥ ४ ॥
१८९६ आ वां दानाय ववृतीय दस्रा गोरोहेण तौर्व्यो न जिह्वीः ।
अपः क्षोणी सचते माहिना वां जूर्णो वामक्षुरंहसो यजत्रा ॥ ५ ॥
१८९७ नि यद् युवेथे नियुतः सुदानू उप स्वधाभिः सृजथः पुरन्धिम् ।
प्रेषद् वेषद् वातो न सूरिरा महे ददे सुव्रतो न वाजम् ॥ ६ ॥

अर्थ—[१८९४] हे (ऋतप्सू) सत्यस्वरूप अश्विदेवो ! (युवं) तुम दोनोंने (उस्रियायां पयः) गौमें दूध (अधत्तं) रखा है तथा (गोः अमायां) अपरिपक्व गौमें भी (पक्वं पूर्व्यं अव) परिपक्व दूध पहिलेसे ही रखा है। (यत् वां) तुम दोनोंके लिए, (वनिनः अन्तः) जंगलोंके भीतर (ह्वारः न) सांपके तुल्य अत्यन्त सावधान रहकर (हविष्मान् शुचिः यजते) हविर्द्रव्य साथ रखनेवाला पवित्र यजमान उस दूधका यज्ञ करता है ॥ ३ ॥

[१८९५] हे (नरा) नेता अश्विदेवो ! (एषे अत्रये) सुख चाहनेवाले अत्रिके लिए (युवं ह) तुम दोनोंने निश्चयपूर्वक (घर्मं) गर्मीको (अपः क्षोदः न) जलके प्रवाहके समान (मधुमन्तं अवृणीतं) मिठास युक्त कर दिया। गर्मीका निवारण करके शीत बनाया। (तत्) इसलिये (वां) तुम दोनोंके समीप (पश्वहुष्टिः मध्वः) यज्ञ और मधुसंभार (रथ्या चक्रा इव) रथके पहियोंके समान (प्रति यन्ति) चले जाते हैं ॥ ४ ॥

[१८९६] हे (दस्रा) शत्रुविनाशक तथा (यजत्रा) पूजनीय अश्विदेवो ! (जिह्वीः) विजयका इच्छुक (तौर्व्यः न) तुग्रका पुत्र जैसे (गोः ओहेन) वाणीसे प्रशंसा द्वारा (वां दानाय) तुम दोनोंसे दान ले लेनेके लिए प्रवृत्त हुआ वैसा (आ ववृतीय) मैं तुम्हारी ओरसे दान लेनेके लिए प्रवृत्त होजाऊं; (वां माहिना) तुम दोनोंकी महिमासे तो (अपः क्षोणी सचते) अन्तरिक्ष और भूलोक व्याप्त हुए हैं, मैं इस कारण (जूर्णः) वृद्ध होता हुआ भी (वां) तुम दोनोंकी कृपासे (अंहसः) जरारूपी कष्टसे मुक्त हो (अक्षुः) दीर्घजीवी बनूँ। इसलिये तुम्हारी प्रार्थना करता हूँ ॥ ५ ॥

[१८९७] हे (सुदानू) अच्छे दान देनेवाले अश्विदेवो ! (यत्) जब (नियुतः नि युवेथे) घोडोंको रथमें जोतते हो, तब (पुरन्धिं) बहुतोंको धारण करनेवाली बुद्धिको (स्वधाभिः उप सृजथः) अन्नोंसे संयुक्त कर डालते हो; (सुव्रतः न) अच्छे कार्य करनेवालोंके समान (सूरिः) विद्वान् पुरुष (महे) महत्त्वके लिए (वाजं आ ददे) अन्नका ग्रहण करता है, (प्रेषत्) तुम्हें तृप्त करता है और (वातः न) वायुके समान (वेषत्) तुम्हें शीघ्र प्राप्त हो जाता है ॥ ६ ॥

भावार्थ— सत्य पालक अश्विदेवो ! तुमने गौमें दूध उत्पन्न किया है। अपक्व गायमें भी उत्तम परिपक्व दूध उत्पन्न किया है। इसी दूधसे, जंगलके अन्दर सांप जैसा सावधान रहता है, वैसा सावधान रहकर, शुचि होकर यजमान अश्विदेवोंके उद्देश्य सेही यज्ञ करता है ॥ ३ ॥

हे नेता अश्विदेवो ! अत्रि ऋषिको सुख देनेके लिए तुम दोनोंने गर्मीको जलके समान शीतल और मिठासके समान सुखकारक बना दिया। तब तुम्हारे लिये वह यज्ञ किया जाता है। चक्रके समान बारंबार चलकर यज्ञ तुम्हारे पास आता है। अनुयायियोंको सुख देनेके लिये नेता यत्न करे, और अनुयायी भी नेताका हित करें ॥ ४ ॥

हे शत्रुविनाशक पूजायोग्य अश्विदेवो ! जिस तरह विजयकी इच्छा करनेवाला तुग्रका पुत्र भुज्यु तुम्हारी स्तुति करनेसे मृत्युसे बच गया, ऐसी तुम्हारी महिमा तो सब द्यावापृथिवीमें प्रसिद्ध है। इसलिए अति वृद्ध हुआ मैं तुम्हारी कृपासे बुढापेको दूर करके दीर्घायु बनना चाहता हूं ॥ ५ ॥

१८९८ वयं चिद्धि वां जरितारः सत्या विपन्यामहे वि पणिर्हितावान् ।
अधा चिद्धि ष्माश्विनावनिन्द्या पाथो हि ष्मा वृषणावन्नितेदवम् ॥ ७ ॥

१८९९ युवां चिद्धि ष्माश्विनावनु द्यून् विरुद्रस्य प्रस्रवणस्य सातौ ।
अगस्त्यो नरां नृषु प्रशस्तः कारांधुनीव चितयत् सहस्रैः ॥ ८ ॥

१९०० प्र यद् वहेथे महिना रथस्य प्र स्पन्द्रा याथो मनुषो न होता
धत्तं सुरिभ्यो उत वा स्वश्व्यं नासत्या रयिषाचः स्याम ॥ ९ ॥

अर्थ— [१८९८] हे (वृषणौ) बलवान् (अनिन्द्या) अनिन्दनीय अश्विदेवो ! (वयं) हम (सत्या) सत्य होकर (वां चित् हि जरितारः) तुम दोनोंकी ही प्रशंसा करनेकी इच्छासे (वि पन्यामहे) बहुत स्तुति करते हैं, परन्तु (हितावान् पणिः वि) धनसंग्रह करनेवाला व्यापारी यज्ञसे विरुद्ध हो रहा है । (अधा चित्) अब (अन्ति देवं) देवताके देने योग्य सोम (पाथः हि स्म) को ही तुम दोनों पीते हो ॥ ७ ॥

[१८९९] हे (अश्विनौ) अश्विदेवो ! (नृषु नरां) मानवों और नेताओंमें (प्रशस्तः अगस्त्यः) प्रशंसनीय अगस्त्य ऋषि (अनु द्यून्) प्रति दिन (वि-रुद्रस्य प्रस्रवणस्य सातौ) विशेष गर्जना करनेवाले झरनेवाले को पानेके लिए (युवां चित् हि) तुम दोनोंकी ही (कारांधुनी इव) बड़ी ध्वनि करनेवाले वाद्यके समान (सहस्रैः चितयत्) सहस्रों श्लोकोंसे स्तुति करता है ॥ ८ ॥

[१९००] हे (नासत्या स्पन्द्रा) सत्यपालक और गतिशील अश्विदेवो ! (यत्) जो (रथस्य महिना) रथकी महनीयताके कारण (प्रवहेथे) तुम दोनों उत्कृष्ट वेगसे आगे बढ़ते हो, (मनुषः होता न) मानवोंमें हवनकर्ताके समान तुम दोनों (प्रयाथः) यात्रा करते हो, ऐसे तुम (सुरिभ्यः वा) विद्वानोंको भी (सु अश्व्यं धत्तं) सुन्दर घोड़ोंसे पूर्ण धन दो (उत रयिषाचः स्याम) और हम भी धनसे युक्त हों ॥ ९ ॥

भावार्थ— अच्छा दान देनेवाले हे अश्विदेवो ! तुम दोनों जब घोड़ोंको अपने रथमें जोतते हो तब बहुतोंका पालन पोषण करनेकी बुद्धि विपुल अन्नोंके साथ अपने भक्तोंमें उत्पन्न करते हो । सत्कर्म करनेवाला विद्वान् इस महत्त्वपूर्ण कार्यके लिए जब अन्न प्राप्त करता है, तब उसके दानसे वह तुम्हें तृप्त करता है और वायुके गतिसे वह तुम्हें प्राप्त होता है । नेता स्वयं बहुत दान करे, और अपने अनुयायियोंको पर्याप्त अन्न देकर उनमें बहुतोंका पालन पोषण करनेकी उदार बुद्धि उत्पन्न करे । विद्वान् लोग इस तरह बहुतोंके पालन पोषण करनेके शुभ कर्म करें और अपनी उदारतासे देवत्वको प्राप्त हों ॥ ६ ॥

हे बलवान् अभिनन्दनीय अश्विदेवो ! हम तुम्हारे सत्य भक्त हैं अतः तुम्हारे गुणोंका वर्णन करते हैं । परन्तु यह पूंजीपति धनका केवल संग्रह करता है, परन्तु यज्ञ करता ही नहीं ! आप तो यज्ञकर्ताके पास जाते हैं और देवोंके ही पीने योग्य सोमरसका पान करते हैं । अर्थात् इस अयाजक धनाढ्यके पास तुम जाते भी नहीं । जो यज्ञ नहीं करता, उस धनाढ्यके धनका कोई उपयोग नहीं है अतः जो धन अपने पास हो उसको यज्ञमें समर्पण करना चाहिये ॥ ७ ॥

मनुष्यों और नेताओंमें सुप्रसिद्ध अगस्त्य ऋषि प्रति दिन विशेष वेगवान् जल प्रवाहको प्राप्त करनेके लिए, बांसुरी कुशलतासे बजानेवालेके समान, कोमल ध्वनिसे सहस्रों श्लोकोंसे तुम्हारी ही स्तुति गाता है ॥ ८ ॥

हे सत्यके पालनकर्ता और सर्वत्र संचार करनेवाले अश्विदेवो ! तुम दोनों अपने उत्तम रथके वेगसे यज्ञकर्ताके पास मनुष्य-लोकमें गमन करते हो, अतः जो उत्तम विद्वान् है, उसको उत्तम घोड़े और धन दो और हमें भी धन दो ॥ ९ ॥

१९०१ तं वां॒ रथं॑ व॒यम॒द्या हु॑वेम॒ स्तोमै॑रश्विना सुवि॒ताय॒ नव्य॑म् ।
अरि॑ष्टनेमिं॒ परि॒ द्यामि॑या॒नं वि॒द्यामे॒षं वृ॒जनं॑ जी॒रदा॑नुम् ॥ १० ॥

[१८१]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१९०२ कदु॒ प्रेष्ठा॑वि॒षां रयी॒णा--म॑ध्व॒र्यन्ता॒ यदु॑न्निनी॒थो अ॒पाम् ।
अ॒यं वां॑ य॒ज्ञो अ॑कृत॒ प्रश॑स्तिं॒ वसु॑धिती॒ अवि॑तारा जनानाम् ॥ १ ॥

१९०३ आ वा॒मश्वा॑सः॒ शुच॑यः पय॒स्पा वात॑रंहसो दि॒व्यासो॒ अत्याः॑ ।
म॒नो॒जुवो॒ वृष॑णो वी॒तपृ॑ष्ठा॒ एह स्व॒राजो॑ अ॒श्विना॑ वहन्तु ॥ २ ॥

१९०४ आ वां॒ रथो॒ऽवनि॒र्न प्र॒वत्वा॑न् त्सृ॒प्रव॑न्धुरः सुविताय॑ गम्याः ।
वृष्णः॑ स्थातारा॒ मन॑सो॒ जवी॑या--नहपू॒र्वो य॑ज॒तो धि॑ष्ण्या॒ यः ॥ ३ ॥

अर्थ— [१९०१] हे (अश्विना) अश्विनौ ! (अद्य सुविताय) आज सुविधाके लिये (वां तं नव्यं) तुम दोनोंके उस नये, (द्यां परि इयानं) द्युलोकके चारों ओर जानेवाले (अरिष्टनेमिं रथं) न बिगडनेवाली नेमिसे युक्त रथको (स्तोमैः) स्तोत्रोंकी सहायतासे (वयं हुवेम) हम इधर बुलाते हैं, (जीर-दानुं) शीघ्र दानको (इषं वृजनं) अन्न तथा बलको (विद्याम) हम प्राप्त करें ॥ १० ॥

[१८१]

[१९०२] हे (जनानां अवितारा) जनोंके रक्षक तथा (वसुधिती) धनोंको देनेहारे अश्विदेवो ! (अयं यज्ञः) यह यज्ञ (वां प्रशस्तिं अकृत) तुम दोनोंकी सराहना कर चुका है; (अध्वर्यन्ता प्रेष्ठौ) हे अध्वरमें जानेहारे अत्यन्त प्यारे अश्विदेवो ! (यत्) जो (अपां रयीणां इषां) जलोंको, धन संपदाओंको और अन्नोंको (उत् निनीथः) तुम दोनों ले चलते हो (कत् उ) वह कार्य अब किस समय शुरू होनेवाला है ? ॥ १ ॥

[१९०३] हे अश्विदेवो ! (शुचयः) विशुद्ध, (दिव्यासः,) दिव्य श्रेष्ठ, (अत्याः) गमनशील, (वात-रंहसः) वायुके तुल्य वेगवाले (पयः-पाः) दूध पीनेवाले, मनो-जुवः) मनके समान वेगयुक्त, (वृषणः) बलिष्ठ (वीत-पृष्ठः) चमकीले पीठवाले (स्व-राजः अश्वासः) और स्वयं तेजस्वी घोडे (वां) तुम दोनोंको (इह आ वहन्तु) इधर ले आयँ ॥ २ ॥

[१९०४] हे (धिष्ण्या) ऊँचे स्थानपर रहनेयोग्य (स्थातारा) अपने पदपर रहनेवाले अश्विदेवो ! (वां यः) तुम दोनोंका जो (वृष्णः मनसः जवीयान्) प्रबल और मनसे भी अधिक वेगवान् (यजतः) पूजनीय, (सृप्रव-न्धुरः) सुन्दर अग्रभागवाला, (अवनिः न) भूमिके तुल्य (प्रवत्वान्) अति विस्तृत, (अहंपूर्वः रथः) अहमह-मिकासे आगे बढनेवाला रथ है वह (सुविताय आ गम्याः) भलाईके लिए हमारे पास आ जाय ॥ ३ ॥

भावार्थ— अश्विदेवो ! आज ही हमें सुखकी प्राप्ति हो, इसलिये तुम्हारी प्रार्थना करते हैं, कि तुम्हारा कभी न बिगडनेवाला रथ हमारे पास आ जाय और हमें अन्न, बल तथा धन प्राप्त हो ॥ १० ॥

हे जनोंके संरक्षक और उनको धन देनेहारे देवो ! यह यज्ञ हम तुम्हारे लिये ही करते हैं । हे यज्ञमें जानेवाले और प्रेमसे उसकी पूर्णता करनेवाले देवो ! जो तुम जल, धन और अन्नका दान करते हो वह कार्य तुम कब करोगे ? हम उससे लाभ प्राप्त करना चाहते हैं ॥ १ ॥

अश्विदेवोंके घोडे विशुद्ध, दिव्य, गमनशील, वायुके तुल्य वेगवान्, बलिष्ठ और तेजस्वी होते हैं। वे उनको हमारे यज्ञमें ले आवें ॥ २ ॥

अश्विदेवोंका मनसे भी वेगवान्, पूज्य भूमिके समान विस्तृत और अहमहमिकासे आगे बढनेवाला रथ हमारे यज्ञके समीप आ जाय ॥ ३ ॥

१९०५ इहेह जाता समवावशीता—रेपसा तन्वा३ नामभिः स्वैः ।
जिष्णुर्योमन्यः सुमखस्य सूरि—र्दिवो अन्यः सुभगः पुत्र ऊहे ॥ ४ ॥
१९०६ प्र वां निचेरुः ककुहो वशाँ अनु पिशङ्गरूपः सदनानि गम्याः ।
हरी अन्यस्य पीपयन्त वाजै—र्मधा रजांस्यश्विना वि घोषैः ॥ ५ ॥
१९०७ प्र वां शरद्वान् वृषभो न निष्षाट् पूर्वीरिषश्चरति मध्वः इष्णन् ।
एवैरन्यस्य पीपयन्त वाजै—र्वेषन्तीरूर्ध्वा नद्यो न आगुः ॥ ६ ॥
१९०८ असर्जि वां स्थविरा वेधसा गी—र्बाळ्हे अश्विना त्रेधा क्षरन्ती ।
उपस्तुताववतं नाधमानं यामन्नयामञ्छृणुतं हवं मे ॥ ७ ॥

अर्थ— [१९०५] (अरेपसा तन्वा) दोषरहित शरीरसे तथा (स्वैः नामभिः जाता) अपनेही नामोंसे प्रसिद्ध हुए तुम दोनों (इह-इह सं अवावशीतां) इधर ही भली भाँति प्रशंसित हो चुके हो; (वां अन्यः) तुम दोनोंमेंसे एक (जिष्णुः सुमखस्य सूरिः) जयिष्णु और श्रेष्ठ यज्ञका प्रेरक है, (अन्यः) दूसरा (सुभगः) अच्छे ऐश्वर्यवाला, (दिवः पुत्रः ऊहे) द्युलोकका पुत्र जैसा वीर सब कार्योंको निभाता है ॥ ४ ॥

[१९०६] हे अश्विदेवो ! (वां) तुम दोनोंमेंसे एकका (पिशङ्गरूपः) पीतवर्णवाला अर्थात् सुनहरा और (निचेरुः) सभी जगह जानेवाला रथ (वशान् ककुहः अनु) वशीभूत दिशाओंमें स्थित (सदनानि प्र गम्याः) यज्ञस्थानोंमें चला जावे, (अन्यस्य हरी) दूसरेके घोडे (मधा) विलोडनेसे उत्पन्न वाजैः) अन्नोंसे तथा (घोषैः) घोषणाओंसे (रजांसि वि पीपयन्त) लोकोंको विशेष ढंगसे पुष्ट करते हैं ॥ ५ ॥

[१९०७] (वां) तुम दोनोंमेंसे एक (शरद्वान् वृषभः न) पुरातन, बलवान्, जैसा वीर (निष्षाट्) शत्रु-दलको हटानेवाला है और (मध्वः इष्णन्) मीठे सोमको चाहता हुआ (पूर्वीः इषः प्रचरति) बहुतसी अन्न सामग्रियोंको साथ लेकर संचार करता है । (अन्यस्य) दूसरेके (एवैः) गमनशील (वाजैः) अन्नोंके साथ (वेषन्तीः) फैलती हुई (ऊर्ध्वाः) ऊपरकी ओर बढनेवाली (नद्यः) नदियाँ सबको (पीपयन्त) पुष्ट करती हैं वे (नः आ अगुः) हमारे समीप आ जायँ ॥ ६ ॥

[१९०८] हे (वेधसा) कार्यकर्ता अश्विदेवो ! (वां) तुम दोनोंके लिए (स्थविरा गीः) प्राचीन वाणी-स्तुति (त्रेधा क्षरन्ती) तीन प्रकारसे तुम्हें प्राप्त होती हुई (बाळ्हे असर्जि) बल बढानेके लिए उत्पन्न हुई है । (मे हवं) मेरी प्रार्थनाको (यामन् अयामन्) गमनके समय या गमन न करनेके समय तुम (शृणुतं) सुन लो । और (उपस्तुतौ) प्रशंसित होनेपर इस (नाधमानं अवतं) भक्तकी रक्षा करो ॥ ७ ॥

भावार्थ— अश्विदेव निर्दोष होनेके कारण प्रसिद्ध हैं । इस लोकमें भी उनकी प्रशंसा हुई है । इनमेंसे एक विजयी यज्ञका प्रेरक है और दूसरा अन्य सब कार्य निभाता रहता है ॥ ४ ॥

अश्विदेव दो हैं । उनमेंसे एकका रथ सुनहरा है जो दिशाउपदिशाओंके यज्ञस्थानोंमें जाता है । दूसरेके घोडे विलोडनेसे उत्पन्न घृतादि अन्नोंको साथ लेकर सबको पुष्ट करते हुए चलते हैं ॥ ५ ॥

अश्विदेवोंमेंसे एक पुरातन वीर शत्रुको परास्त करता है और मीठा अन्नरस अपने साथ लेकर सर्वत्र संचार करता है। दूसरा अन्नोंको बढानेवाली नदियोंको वेगसे बहाता है । एक अन्नमें मीठे रसकी उत्पत्ति करता है और दूसरा नदियोंको महापूरसे भरपूर कर देता है ॥ ६ ॥

हे रचनाकार्यमें कुशल अश्विदेवो ! यह प्राचीनकालसे चली आयी स्तुति तीन प्रकारोंसे बल प्राप्त करनेके लिये तुम्हारे पास पहुंचती है । मेरी की हुई इस प्रार्थनाको तुम सुन लो और प्रसन्नचित्त होकर मेरी रक्षा करो ॥ ७ ॥

१९०९ उत स्या वां रुशंतो वप्समो गी—र्त्रिर्बर्हिषि सदसि पिन्वते नृन् ।
वृषा वां मेघो वृषणा पीपाय गोर्न सेके मनुषो दशस्यन् ॥ ८ ॥

१९१० युवां पूषेवाश्विना पुरंधि—रग्निमुषां न जरते हविष्मान् ।
हुवे यद् वां वरिवस्या गृणानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ९ ॥

[१८२]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- जगती; ६-८ त्रिष्टुप् ।)

१९११ अभूदिदं वयुनमो षु भूषता रथो वृषण्वान् मदता मनीषिणः ।
धियंजिन्वा विष्ण्या विश्पलावसू दिवो नपाता सुकृते शुचिव्रता ॥ १ ॥

अर्थ— [१९०९] (उत वां) और तुम दोनोंके (रुशतः वप्ससः) चमकवाले स्वरूपका वर्णन करनेवाली (स्या गीः) वह वाणी (नृन्) मानवोंको (त्रि बर्हिषि सदसि) तीन कुशासनोंसे युक्त यज्ञस्थानमें (पिन्वते) पुष्ट करती है । हे (वृषणा) बलशाली अश्विदेवो ! (वां वृषा मेघः) तुम दोनोंके लिये वृष्टि करनेवाला मेघ (मनुषः दशस्यन्) मानवोंको जल देता हुआ (गोः सेके न) गौके दूधके सेचन करनेके समान ही पीपाय) पोषण करता है ॥ ८ ॥

[१९१०] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (पुरन्धिः पूषा इव) बहुतोंका धारण करनेवाला पूषा जिस प्रकार पोषण करता है वैसे ही (हविष्मान्) हवि साथ रखनेवाला यजमान (युवां) तुम दोनोंकी (उषां अग्निं न) उषा तथा अग्निके समान (जरते) स्तुति करता है, (यत् वां वरिवस्या) जो मैं तुम दोनोंकी सेवा करता हुआ (गृणानः हुवे) स्तुति-पूर्वक प्रार्थना करता हूँ, वह इसलिए कि हम लोग (जीरदानुं वृजनं इषं) शीघ्र दान द्वारा बल तथा अन्नको (विद्याम) प्राप्त करें ॥ ९ ॥

[१८२]

[१९११] हे (मनीषिणः) मननशील विद्वानो ! (इदं वयुनं अभूत्) यह ज्ञान हमें हुआ है कि अश्विदेवोंका (वृषण्वान् रथः) बलवान् रथ हमारे पास आ पहुंचा है, इसलिए (मदत) आनन्दित होओ (सु-भूषत) भली-भाँति अलंकृत होओ, क्योंकि वे दोनों अश्विदेव (शुचिव्रता) निर्दोष व्रतका अनुष्ठान करनेवाले (दिवः न-पाता) द्युलोकका पतन न होने देनेवाले, (धिष्ण्या) प्रशंसनीय (विश्पलावसू) विश्पलाको यश देनेवाले; (सुकृते धियं जिन्वा) अच्छे कर्म करनेवालेको सुबुद्धि देनेवाले हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— अश्विदेवोंका वर्णन करनेवाली यह स्तुति यज्ञस्थानमें मनुष्योंकी शक्ति बढाती है। तुम्हारी प्रेरणासे वृष्टि करनेवाला यह मेघ मनुष्योंके लिये जल देकर, गौ दूध देकर पुष्ट करनेके समान, पोषण करता है ॥ ८ ॥

हे अश्विदेवो ! हविष्यान्न साथ लेकर यजमान यज्ञ करता हुआ तुम्हारी प्रार्थना करता है । इससे हमें अतिशीघ्र अन्न, बल और धन प्राप्त हो ॥ ९ ॥

हे मननशील विद्वानों ! हमें पता लगा है कि, अश्विदेवोंका सुदृढ रथ हमारे यज्ञस्थानके पास आ पहुंचा है, उसे देख-कर आनन्दित होवो, अच्छी तरह अलंकृत बनो । वे दोनों अश्विदेव शुद्ध कर्म करनेवाले, द्युलोकको आधार देनेवाले, विश्प-लाकी सहायता करनेवाले, अच्छे कार्यकर्ताको शुभमति देनेवाले, एवं प्रशंसनीय हैं। अपने घर कोई बडा वीर आवे तो उत्तम वेषभूषा धारण करके उसका स्वागत करना योग्य है । बडा उसको कहते हैं कि जो उत्तम कर्म करता है, अनाथकी सहायता करता है, सद्बुद्धि देता है और सबको आधार देता है ॥ १ ॥

१९१२ इन्द्रतमा हि धिष्ण्या मरुत्तमा दस्रा दंसिष्ठा रथ्या रथीतमा ।
पूर्णं रथं वहेथे मध्व आचितं तेन दाश्वांसमुप याथो अश्विना ॥ २ ॥
१९१३ किमत्र दस्रा कृणुथः किमासाथे जनो यः कश्चिदहविर्महीयते ।
अति क्रमिष्टं जुरतं पणेरसुं ज्योतिर्विप्राय कृणुतं वचस्यवे ॥ ३ ॥
१९१४ जम्भयतमभितो राय॑तः शुनो हतं मृधो विदथुस्तान्यश्विना ।
वाचंवाचं जरितू रत्निनीं कृतमुभा शंसं नासत्यावतं मम ॥ ४ ॥
१९१५ युवमेतं चक्रथुः सिन्धुषु प्लवमात्मन्वन्तं पक्षिणं तौग्र्याय कम् ।
येन देवत्रा मनसा निरूहथुः सुपप्तनी पेतथुः क्षोदसो महः ॥ ५ ॥

अर्थ— [१९१२] हे (दस्रा अश्विना) शत्रुविनाशक अश्विदेवो ! तुम दोनों (धिष्ण्या) स्तुतिके योग्य, (इन्द्रतमा मरुत्तमा) इन्द्र एवं मरुतोंके अत्यन्त शुभ गुणोंको धारणकरनेवाले, (दंसिष्ठा) अत्यन्त कार्यशील, (रथ्या रथीतमा हि) रथमें बैठनेवाले और अतीव श्रेष्ठ रथी हो, इसमें संशय नहीं, (मध्वः आचितं) मधुसे भरे हुए (पूर्णं रथं वहेथे) परिपूर्ण रथको लिए हुए तुम दोनों आगे बढ़ते हो और (दाश्वांसं) दानीके प्रति (तेन उपयाथः) उसी रथके साथ आते हो ॥ २ ॥

[१९१३] हे (दस्रा) शत्रुका नाश करनेवाले अश्विदेवो ! (अत्र किं कृणुथः) इधर भला क्या करते हो ? (किं आसाथे) क्यों यहां बैठे हो ? (यः काश्चित्) जो कोई (जनः अहविः महीयते) पुरुष यज्ञ न करता हुआ बड़ा बन बैठा है, उसे (अति क्रमिष्टं) छोड़कर आगे बढ़ो और (पणेः असुं जुरतं) कृपण लोभी व्यापारीके प्राणोंको नष्ट करो, तथा (वचस्यवे विप्राय) स्तुति करनेके इच्छुक ज्ञानी पुरुषके लिए (ज्योतिः कृणुतं) प्रकाश करो ॥ ३ ॥

[१९१४] हे (नासत्या) सत्यके पालक अश्विदेवो ! (शुनः रायतः) कुत्तेके सदृश काटनेको आनेवालोंको (अभितः जम्भयतं) चारों ओरसे तुम विनष्ट करो, (मृधः हतं) लड़नेवालोंको मार डालो, (तानि विदथुः) उन्हें तुम दोनों जानते हो, (जरितुः) स्तुतिकर्ताके (वाचं वाचं) प्रत्येक भाषणको (रत्निनीं कृतं) धनयुक्त करो और (उभा) दोनों (मम शंसं अवतं) मेरे प्रशंसाके भाषणकी रक्षा करो ॥ ४ ॥

[१९१५] (एतं आत्मन्वन्तं) इस निजी शक्तिसे युक्त, (पक्षिणं) पंखोंके तुल्य उड़नेवाले, (प्लवं) नौकाको (सिन्धुषु) समुद्रमें (तौग्र्याय) तुग्रपुत्रके लिए (कं चक्रथुः) सुखकारक ढंगसे बना चुके, (येन) जिससे (सुपप्तनी) अच्छे ढंगसे उड़नेवाले तुम दोनों (मनसा) मनःपूर्वक (देवत्रा) देवोंके मध्य (निः ऊहथुः) ऊपर ऊपर ले चले और (महः क्षोदसः पेतथुः) बड़े भारी जलसमूहके बीच आ गये ॥ ५ ॥

भावार्थ— शत्रुविनाशकर्ता अश्विदेवो ! तुम दोनों प्रशंसायोग्य तथा इन्द्र और मरुतोंके सब शुभगुणोंको धारण करते हो । तुम सदा शुभ कार्योंमें तत्पर, रथ चलानेमें तत्पर, उत्तम रथियोंमें श्रेष्ठ हो । तुम रथपर शहदके घड़े भरकर रखते हो और यज्ञकर्ताके समीप उनके साथ पहुंचकर उसका दान करते हो ॥ २ ॥

हे शत्रुका नाश करनेवाले अश्विदेवो ! तुम इधर उधर न जाओ, विशेषतः यज्ञ न करनेवालेके पास न जाओ, उस लोभीके प्राण जाने दो । तुम सदा यज्ञकर्ताको प्रकाशका मार्ग बताओ । जो सहायता पहुंचानी हो वह श्रेष्ठ सज्जनकी ही प्रथम देनी योग्य है । धर्मशील सन्मार्गवर्तियोंको ही प्रकाशका सरल मार्ग बताना योग्य है ॥ ३ ॥

हे सत्यनिष्ठ अश्विदेवो ! कुत्तेके समान हिंसकोंको नष्ट करो, जो हमपर हिंसा करते हैं उनको मार डालो, इन सबको तुम जानते हो । तुम्हारी स्तुति करनेवालेको प्रत्येक स्तुतिके लिये उसे धन प्राप्त होता रहे, तथा मुझ भक्तकी भी सुरक्षा करो ॥ ४ ॥

तुग्रके पुत्र भुज्युकी रक्षा करनेके लिये तुमने निजशक्तिसे चलनेवाले, पक्षीके समान उड़नेवाले नौका जैसे वाहनोंको बनाया और मनके वेगसे महासागरके मध्यमें जा पहुंचे और भुज्युको बचाया ॥ ५ ॥

१९१६ अवविद्धं तोग्र्यमप्स्व१न्त१रनारम्भणे तमसि प्रविद्धम् ।
चतस्रो नावो जठलस्य जुष्टा उदश्विभ्यामिषिताः पारयन्ति ॥ ६ ॥
१९१७ कः स्विद् वृक्षो निष्ठितो मध्ये अर्णसो यं तौग्र्यो नाधितः पर्यषस्वजत् ।
पर्णा मृगस्य पतरोरिवारभ उदश्विना ऊहथुः श्रोमताय कम् ॥ ७ ॥
१९१८ तद् वां नरा नासत्यावनु ष्याद् यद् वां मानास उचथमवोचन् ।
अस्मादद्य सदसः सोम्यादा विधामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ८ ॥

[१८३]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१९१९ तं युञ्जाथां मनसो यो जवीयान् त्रिवन्धुरो वृषणा यस्त्रिचक्रः ।
येनोपयाथः सुकृतो दुरोणं त्रिधातुना पतथो विर्न पर्णैः ॥ १ ॥

अर्थ— [१९१६] (अप्सु अन्तः) जलोंके मध्य (अवविद्धं) गिराये हुए (अनारम्भणे तमसि) आश्रयरहित अंधेरेमें (प्रविद्धं तौग्र्यं) पीडित हुए तुग्रके पुत्रको (जठलस्य जुष्टाः) समुद्रके मध्यतक पहुंची हुई और (अश्विभ्यां इषिताः) अश्विदेवोंसे प्रेरित हुई (चतस्रः नावः) चार नौकाएँ (उत् पारयन्ति) ऊपर उठाकर पार पहुंचा देती हैं ॥ ६ ॥

[१९१७] (अर्णवः मध्ये) जलके बीच (कः स्वित् वृक्षः निष्ठितः) भला कौनसा वृक्ष अर्थात् वृक्षसे निर्मित रथ स्थिर रहा है (यं) जिसे (नाधितः तौग्र्यः) प्रार्थना करता हुआ तुग्रका पुत्र भुज्यु (पर्यषस्वजत्) लिपटने लगा, आश्रित होने लगा; (पतरोः मृगस्य आरभे) पतनशील मृगके आलंबनके लिए (पर्णा इव) पत्तों या पंखोंके समान (अश्विनौ श्रोमताय) अश्विदेव कीर्ति पानेके लिए (कं) सुखकारक ढंगसे उसको (उत् ऊहथुः) ऊपर उठा चुके ॥ ७ ॥

[१९१८] हे (नासत्यौ नरा) सत्यके पालक, नेता अश्विदेवो ! (यत् मानासः) जो सम्माननीय लोग (वां) तुम दोनोंके लिए (उचथं अवोचन्) स्तोत्र कह चुके, (तत् वां अनु स्यात्) वह तुम्हें अनुकूल हो, (अद्य) आज (अस्मात् सोम्यात् सदसः) इस सोमयागके यज्ञस्थानसे (जीरदानुं वृजनं) विजयी, दान, बल और (इषं विद्याम) अन्नको हम प्राप्त करें ॥ ८ ॥

[१८३]

[१९१९] हे (वृषण !) बलवान् अश्विदेवो ! (यः त्रिचक्रः) जो तीन पहियोंवाला (त्रिवन्धुरः) तीन बैठनेके युक्त रथ है, (यः) जो (मनसः जवीयान्) मनसे भी अधिक वेगवान् है, (तं युञ्जाथां) उसे जोडकर तैयार करो; (येन त्रिधातुना) जिस तीन धातुओंसे बनाये रथरसे (सुकृतः दुरोणं उपयाथः) शुभ कार्यकर्ताके घर तुम दोनों जाते हो, और (विः पर्णैः न) पंछी डैनोंसे जिस प्रकार उडता है, वैसेही (पतथः) तुम अन्तराळमें उडने लगते हो ॥ १ ॥

भावार्थ— समुद्रके बीचमें आश्रयरहित और अंधेरे जलस्थानमें पडे तुग्रपुत्र भुज्युको छुडानेके लिये अश्विदेवोंने चार नौकाएँ चलाईं और उसको समुद्रके पार पहुंचा दिया ॥ ६ ॥

अश्विदेवोंका सुदृढ रथ समुद्रके बीचमें खडा रहा, इसपर तुग्रका पुत्र भुज्यु चलने लगा। जिस तरह गिरनेवाले पक्षीको पंखोंका सहारा मिल जाय, उस तरह भुज्युको उस रथका आश्रय मिला और उसी समय अश्विदेवोंने भुज्युको अच्छी तरह ऊपर बठाया और रथमें बिठाया। इससे अश्विदेवोंकी कीर्ति बहुत हुई ॥ ७ ॥

हे सत्यके पालक अश्विदेवो ! स्तोता लोगोंने जो तुम्हारे स्तोत्र गाये हैं उनसे तुम प्रसन्न हो जाओ और इस यज्ञसे विजय देनेवाला धन, बल और अन्न हमें प्राप्त हो ॥ ८ ॥

हे बलवान् अश्विदेवो ! तुम्हारा तीन पहियोंवाला, तीन बैठकोंके स्थानोंवाला, अत्यंत वेगवान् रथ जोतकर तैयार करो, इस तीन धारक शक्तियोंसे युक्त रथपर बैठकर यज्ञकर्ताके घरपर आओ। तुम तो पक्षियोंके समानही आकाशसे उडकर जाते हो ॥ १ ॥

१९२० सुवृद् रथो वर्तते यन्नभि क्षां यत् तिष्ठथः क्रतुमन्तानु पृक्षे ।
वपुर्वपुष्या संचतामियं गी—र्दिवो दुहित्रोषसा सचेथे ॥ २ ॥
१९२१ आ तिष्ठतं सुवृतं यो रथो वा—मनु व्रतानि वर्तते हविष्मान् ।
येन नरा नासत्येपयज्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥ ३ ॥
१९२२ मा वां वृको मा वृकीरा दधर्षी—न्मा परि वर्क्तमुत माति धक्तम् ।
अयं वां भागो निहित इय गी—र्दस्राविमे वां निधयो मधूनाम् ॥ ४ ॥
१९२३ युवां गोतमः पुरुमीळ्हो अत्रि—र्दस्रा हवतेऽवसे हविष्मान् ।
दिशं न दिष्टामृजुयेव यन्ता मे हवं नासत्योप यातम् ॥ ५ ॥

अर्थ—[१९२०] (क्रतुमन्ता) कार्यसे युक्त हुए तुम दोनों (पृक्षे अनु) हविष्य अन्नके पीछे जानेके लिए (यत् तिष्ठथः) जहां ठहरते हो, वह (क्षां यन्) पृथ्वीपर घूमनेवाला तुम्हारा (सुवृत् रथः) सुन्दर रथ (अभि वर्तते) यज्ञभूमिके पास जाता है, (वपुष्या इयं गीः) यह सुंदर रसमयी स्तुतिरूपी वाणी (वपुः सचतां) तुम्हारी रसमयी वृत्तिको प्राप्त हो जाए– तुम्हें आनंद देवे (दिवः दुहित्रा उषसा) द्युलोककी कन्या उषासे (सचेथे) तुम दोनों युक्त होते हो ॥ २ ॥

[१९२१] हे (नासत्या नरा) सत्यके पालक नेता अश्विदेवो ! (यः हविष्मान् रथः) जो हविर्भागसे पूर्ण रथ (वां) तुम दोनोंको (व्रतानि वर्तते) कार्योंको चलानेके लिए ले जाता है, उस (सुवृतं आतिष्ठतं) सुन्दर वाहनपर चढकर बैठो; (येन) जिसपरसे (तनयाय त्मने च) पुत्रको और उसको (इषयध्यै) यज्ञकी प्रेरणा करनेके लिये ही उनके (वर्ति याथः) घर चले जाते हो ॥ ३ ॥

[१९२२] हे (दस्रौ) शत्रुविनाशकर्ता अश्विदेवो ! (वां) तुम दोनोंके लिए (अयं भागः निहितः) यह भाग रखा है, (इयं गीः) यह स्तुति तैयार है, (मधूनां इमे निधयः) शहदोंके ये भण्डार (वां) तुम्हारे लिए हैं; (मा परि वर्क्तं) हमें न छोड दो (उत) और (मा अति धक्तं) न हमसे अन्य दूसरेको दान दो, (वां) तुम्हारी कृपासे (मा वृकीः मा वृकः) मुझे वृकियाँ तथा भेडिया न (आ दधर्षीत्) आक्रान्त करें ॥ ४ ॥

[१९२३] हे (दस्रा नासत्या) शत्रुविनाशक और सत्यसे युक्त अश्विदेवो ! (हविष्मान्) हवि साथ लेकर (गोतमः अत्रिः पुरुमीळहः) गोतम, अत्रि और पुरुमीळह (अवसे) रक्षाके लिए (युवां हवते) तुम दोनोंको बुलाते हैं, (ऋजूया इव यन्ता) सरल मार्गसे जानेवाला जैसे (दिष्टां दिशं न) दर्शायी हुई दिशाकी ओर जाता है वैसे ही (मे हवं) मेरी पुकार सुनकर मेरे (उप यातं) समीप आ जाओ ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे अश्विदेवो ! तुम सदा सत्कर्ममें तत्पर रहते हो तुम हवनके यज्ञस्थानपर आनेके लिये अपने सुन्दर रथपर चढते हो और वह रथ यज्ञके स्थानपर चला जाता है । तुम्हारा वर्णन करनेवाली यह स्तुति सुननेसे तुम्हें आनन्द हो, तुम तो उषाके साथ ही अर्थात् सवेरेही रथपर चढते हो ॥ २ ॥

हे सत्यके पालक अश्विदेवो ! हविर्द्रव्योंसे भरपूर भरा हुआ तुम्हारा रथ तुम दोनोंको अपने कार्य करनेके लिये ले जाता है, उसपर तुम बैठो और यजमानको तथा उसके बालबच्चोंको यज्ञकी प्रेरणा करनेके लिये उनके यज्ञस्थानके प्रति जाओ ॥ ३ ॥

हे शत्रुविनाशकर्ता अश्विदेवो ! आपके लिये यह हविर्भाग रखा हुआ है, यह स्तुति तुम्हारे लिये ही है, ये शहदके पात्र तुम्हारे लिये ही तैयार रखे हैं, तुम हमें न छोडो, न दूसरेके पास जाओ । भेडी या भेडिया हमारे ऊपर हमला न करें ॥४॥

हे शत्रुविनाशक सत्यके पालक अश्विदेवो ! हवि लेकर गोतम, अत्रि और पुरुमीढ ये ऋषि अपनी सुरक्षाके लिये तुम्हारी प्रार्थना करते हैं । सरल मार्गसे जानेवाला इष्ट स्थानको सहज हीसे पहुंचता है; उस तरह मेरी प्रार्थना सुनकर सरल मार्गसे शीघ्र ही मेरे पास पहुंच जाओ । मनुष्य अपनी सुरक्षाका यत्न करे । सरल मार्गसे चले और निर्विघ्न इष्ट स्थानको पहुंचे ॥ ५ ॥

१९२४ अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।
एह यातं पथिभिर्देवयानै—र्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥

[१८४]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१९२५ ता वामद्य तावपरं हुवेमो—च्छन्त्यामुषसि बर्हिरुक्थैः ।
नासत्या कुह चित् सन्तावर्यो दिवो नपाता सुदास्तराय ॥ १ ॥
१९२६ अस्मे उ षु वृषणा मादयेथा—मुत् पणीँर्हतमूर्म्या मदन्ता ।
श्रुतं मे अच्छोक्तिभिर्मतीना—मेष्टा नरा निचेतारा च कर्णैः ॥ २ ॥
१९२७ श्रिये पूषन्नृभुक्रतेव देवा नासत्या वहतुं सूर्यायाः ।
वच्यन्ते वां ककुहा अप्सु जाता युगा जूर्णेव वरुणस्य भूरेः ॥ ३ ॥

अर्थ— [१९२४] (अस्य तमसः) इस अँधेरेके (वां अतारिष्म) पार हम चले गये, हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (वां प्रति) तुम दोनोंके लिए (स्तोमः अधायि) स्तोत्र तैयार कर दिया है, (देवयानैः पथिभिः) देवतागण जिस परसे चलते हैं ऐसे मार्गोंसे (इह आयातं) इधर आओ (जीरदानुं इषं वृजनं विद्याम) शीघ्र विजय अन्न तथा बल हमें मिले ॥ ६ ॥

[१८४]

[१९२५] हे (दिवः न पाता) द्युलोकको न गिरानेवाले (नासत्या) सत्यके पालक अश्विदेवो ! (अद्य) आज (ता वां) उन विख्यात तुम दोनोंको (अरं) दूसरे दिन भी (नो हुवेम) उन्हें ही तुम्हें, हम बुलाते हैं, (उच्छन्त्यां उषसि) अँधियारी हटानेवाली उषावेलाके समीप आनेपर (उक्थैः बर्हिः) स्तोत्रोंका पाठ करते करते अग्नि प्रज्वलित किया है, (कुह चित् सन्तौ) कहीं भी तुम विद्यमान रहो, पर (सुदास्तराय) उत्तम दानीके पास इधर आओ, ऐसी (अर्यः) प्रगतिशील मानवकी प्रार्थना है ॥ १ ॥

[१९२६] हे (नरा वृषणा) नेता तथा बलवान् अश्विदेवो ! (अस्मे उ) हमें ही (सु मादयेथां) भली भाँति हर्षित करो । (ऊर्म्या मदन्ता) सोमपानसे आनन्दित होते हुए तुम (पणीन् उत् हतं) पणियोंका समूल वध करो, और (मे अच्छोक्तिभिः) मेरी निर्मल उक्तियोंसे उत्पन्न (मतीनां) मननीय स्तोत्रोंको (कर्णैः श्रुतं) अपने कानोंसे सुनलो, क्योंकि तुम दोनों (एष्टा निचेतारा च) ढूँढनेवाले और संग्रह करनेवाले हो ॥ २ ॥

[१९२७] हे (देवा) दानी ! (नासत्या) सत्यके पालक अश्विदेवो ! (हे पूषन्) पोषणकर्ता ! (सूर्यायाः वहतुं) सूर्यकन्याको रथपर बिठाकर (श्रिये) यश-पानेके लिए तुम दोनों (इषुकृता इव) बाणकी तरह सीधे चले जाते हो; (अप्सु जाताः) सागरसे प्राप्त या उत्पन्न (ककुहाः) घोडे (भूरेः वरुणस्य) अत्यन्त विशाल वरुणके (जूर्णा इव युगा) प्राचीन समयके रथोंके समान ही (वां वच्यन्ते) तुम दोनोंके भी प्रशंसित होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— इस अन्धेरे स्थानसे हम पार हो चुके । तुम्हारे लिये यह स्तवन किया है । देवोंके आनेके मार्गसे यहां हमारे पास आओ । हमें विजय, अन्न तथा बल मिले । अन्धेरेका मार्ग शीघ्र समाप्त करो, प्रकाशमें शीघ्र आओ । जिन मार्गोंसे श्रेष्ठ लोग आते जाते हैं, उन मार्गोंसे ही आओ । शीघ्र ही विजय अन्न और बल प्राप्त करो ॥ ६ ॥

हे द्युलोकको आश्रय देनेवाले अश्विदेवो ! हम तुम्हें जैसा आज बुलाते हैं वैसे कल भी बुलावेंगे । हम प्रातःकालमें अग्निको प्रदीप्त करते हैं और तुम्हारे स्तोत्र गाते हैं । श्रेष्ठ पुरुष, तुम कहीं भी रहो तो, तुम्हें ही अपने पास बुलावेगा ॥ १ ॥

हे बलवान् नेता अश्विदेवो ! तुम हम सबको सुखी करो । तुम सोमपानसे आनंदित होकर पणियोंका नाश करो । मेरी स्तुतिका श्रवण करो । तुम अच्छे मनुष्यको ढूंढते हैं और उसीको अपना आश्रय देते हो ॥ २ ॥

हे दानी सत्यपालक, पोषणकर्ता अश्विदेवो ! सूर्यकी पुत्रीको अपने रथपर बिठानेका यश प्राप्त करनेके लिये बाणके वेगसे तुम दोनों गये । इस समय समुद्रसे प्राप्त महान् वरुणदेवके प्राचीन रथके घोडोंके समान ही तुम्हारे घोडोंकी स्तुति होती है ॥ ३ ॥

१९२८ अस्मे सा वां माध्वी रातिरस्तु स्तोमं हिनोतं मान्यस्य कारोः ।
अनु यद् वां श्रवस्या सुदानू सुवीर्याय चर्षणयो मदन्ति ॥ ४ ॥
१९२९ एष वां स्तोमो अश्विनावकारि मानेभिर्मघवाना सुवृक्ति ।
यातं वर्तिस्तनयाय त्मने चागस्त्ये नासत्या मदन्ता ॥ ५ ॥
१९३० अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥

[१८५]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- द्यावापृथिवी । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१९३१ कतरा पूर्वा कतरापरायोः कथा जाते कवयः को वि वेद ।
विश्वं त्मना बिभृतो यद्ध नाम वि वर्तेते अहनी चक्रियेव ॥ १ ॥

अर्थ— [१९२८] हे (सुदानू माध्वी) अच्छे दान देनेवाले मधुर सोमरस पीनेवाले अश्विदेवो ! (वां) तुम दोनोंकी (सा रातिः) वह देन (अस्मे अस्तु) हमारे लिए ही रहे, (मान्यस्य कारोः) माननीय और कार्यशीलके (स्तोमं हिनोतं) स्तोत्रको चारों ओर तुम प्रेरित करो, (यत्) निश्चयसे (वां अनु) तुम दोनोंके अनुकूलतामें रहकर (श्रवस्या) यश पानेके लिए (चर्षणयः) सब लोग (सुवीर्याय मदन्ति) उत्तम पराक्रम करनेके लिये ही आनंदित होते हैं ॥ ४ ॥

[१९२९] हे (मघवाना) ऐश्वर्यसंपन्न ! सत्यपालक अश्विदेवो ! (एषः) यह (वां स्तोमः) तुम दोनोंका स्तोत्र (सुवृक्ति अकारि) भलीभाँति तैयार किया है, इसलिए (तनयाय त्मने च) पुत्रके एवं अपने लाभके लिए (मदन्ता) हर्षित होते हुए (अगस्त्ये) अगस्त्यके (वर्तिः यातं) घर आओ ॥ ५ ॥

[१९३०] (अस्य तमसः) इस अंधेरेके (पारं अतारिष्म) पार हम चले गए । हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (वां प्रति) तुम दोनोंके लिए (स्तोमः अधायि) स्तोत्र तैयार कर दिया है । (देवयानैः पथिभिः) देवतागण जिसपरसे चलते हैं, ऐसे मार्गोंसे (इह आयातं) इधर आओ । (जीरदानुं इषं वृजनं विद्याम) शीघ्र विजय, अन्न, तथा बल हमें मिले ॥ ६ ॥

[१८५]

[१९३१] (अयोः) इन द्यावापृथ्वीमें (कतरा पूर्वा कतरा अपरा) कौन पहले और कौन बादमें हैं, (कथा जाते) ये दोनों किस प्रकार उत्पन्न हुईं, हे (कवयः) ज्ञानी जन ! (कः वि वेद) इन बातोंको कौन जानता है ? (यत् ह) चूंकि ये दोनो (त्मना) अपनी शक्तिसे (विश्वं नाम बिभृतः) सभी विश्वको धारण करती हैं, अतः (अहनी) दिन रातको बनानेवाली ये दोनों (चक्रिया इव) चक्रके समान (वि वर्तते) घूमती रहती हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— हे उत्तम दान देनेवाले, मधुर रस पीनेवाले अश्विदेवो ! तुम दोनोंका दान हमें प्राप्त होता रहे । सम्मानीय कुशल कारीगरका या कविका स्तोत्र सुनो और उसका यश चारों ओर बढाओ । सब लोग तुम्हारी सहायतासे उत्तम पराक्रम करके श्रेष्ठ यश पानेको ही आनंदसे इच्छा करते हैं ॥ ४ ॥

हे ऐश्वर्यसंपन्न और सत्यपालक अश्विदेवो ! तुम्हारा स्तोत्र मैंने किया है । इससे आनंदित होकर तुम दोनों मुझ अगस्त्यके घर आओ और मेरे पुत्रोंका तथा मेरा भला करो ॥ ५ ॥

इस अन्धेरे स्थानसे हम पार हो चुके । तुम्हारे लिए यह स्तवन किया है । देवोंके आनेके मार्गसे यहां हमारे पास आओ । हमें विजय, अन्न तथा बल मिले ॥ ६ ॥

ये दोनों द्यु और पृथ्वी लोक कहांसे और किस प्रकार पैदा हुए और इन दोनोंमें कौन पहले पैदा हुआ और कौन बादमें पैदा हुआ, यह कौन जानता है । यह सब रहस्यमय है । पर इतना अवश्य ज्ञात होता है कि ये दोनों लोक सभी संसारको धारण कर रहे हैं और इन्हींके कारण दिन रात उत्पन्न होते हैं, तथा चक्रके समान घूम रहे हैं ॥ १ ॥

१९३२ भूरिं द्वे अचरन्ती चरन्तं पदुन्तं गर्भमपदी दधाते ।
नित्यं न सूनुं पित्रोरुपस्थे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ २ ॥
१९३३ अनेहो दात्रमदितेरनर्वं हुवे स्वर्वदवधं नमस्वत् ।
तद् रोदसी जनयतं जरित्रे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ३ ॥
१९३४ अतप्यमाने अवसावन्ती अनु ष्याम रोदसी देवपुत्रे ।
उभे देवानामुभयेभिरह्वा द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ४ ॥
१९३५ संगच्छमाने युवती समन्ते स्वसारा जामी पित्रोरुपस्थे ।
अभिजिघ्रन्ती भुवनस्य नाभिं द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ५ ॥

अर्थ— [१९३२] (द्वे अपदी अचरन्ती) ये दोनों द्यावापृथिवी बिना पैरोंके तथा न चलनेवाली होती हुई भी (भूरि चरन्तं पदुन्तं गर्भं दधाते) बहुतसे चलनेवाले और पैरोंवाले प्राणियोंका धारण करती हैं। (पित्रोः उपस्थे सूनुं नित्यं न) जिस प्रकार मातापिताके पास रहनेवाले पुत्रकी ये दोनों हमेशा रक्षा करते हैं, उसी तरह (द्यावा पृथिवी नः अभ्वात् रक्षतं) द्यु और पृथ्वी हमारी बडे बडे संकटोंसे रक्षा करें ॥ २ ॥

१ अपदी अचरन्ती चरन्तं पदुन्तं दधाते— पैरोंसे रहित व न चलनेवाली ये द्यावापृथिवी चलनेवाले व पैरवाले प्राणियोंको धारण करती हैं।

[१९३३] (अदितेः) अदितिके (अनेहः अनर्वं) पापसे रहित, क्षीण न होनेवाले (स्वर्वत् अवधं नमस्वत् दात्रं) तेजस्वी, अहिंसनीय और नम्रता प्रदान करनेवाले धनको (हुवे) मैं मांगता हूँ। (तत्) उस धनको (रोदसी) द्यावा पृथिवी (जरित्रे जनयतं) स्तोताके लिए उत्पन्न करें (द्यावा पृथिवी) द्युलोक और पृथ्वीलोक (अभ्वात् नः रक्षतं) पापसे हमारी रक्षा करें ॥ ३ ॥

[१९३४] (देवपुत्रे रोदसी) देवोंको उत्पन्न करनेवाले द्यावा पृथ्वी (अतप्यमाने) पीडित न होते हुए (अवसा अवन्ती) अपने रक्षणके साधनोंसे लोगोंकी रक्षा करती हैं। (देवानां अन्हां उभयेभिः) दिव्य दिन और रातके साथ हम (उभे अनु स्याम) इन दोनोंके अनुकूल रहें और (द्यावापृथिवी अभ्वात् नः रक्षतं) द्यावा पृथिवी पापसे हमारी रक्षा करें ॥ ४ ॥

[१९३५] (संगच्छमाने) साथ साथ चलनेवाली (युवती) तरुणियां (समन्ते स्वसारा) एक दूसरेके साथ सम्बद्ध, बहिनें तथा (जामी) एक दूसरेकी सहायता करनेवाली ये द्यावापृथ्वी पित्रोः उपस्थे) पिताके समीप रहकर (भुवनस्य नाभिं अभि जिघ्रन्ती) भुवनकी नाभिको सूंघती हैं। ऐसी (द्यावा पृथिवी नः अभ्वात् रक्षतं) द्यावा पृथ्वी हमारी पापसे रक्षा करें ॥ ५ ॥

भावार्थ— स्वयं यद्यपि पैरोंसे रहित होनेके कारण चलनेमें असमर्थ हैं, फिर भी पैरोंसे युक्त होनेके कारण चलने फिरनेमें समर्थ प्राणियोंको धारण करती हैं। ये दोनों प्राणियोंकी उसी तरह रक्षा करती है जिस प्रकार पिता पासमें बैठे हुए अपने पुत्रकी रक्षा करता है ॥ २ ॥

हम अखण्डनीय पृथ्वीसे पापसे रहित, अहिंसनीय तेजस्वी और नम्रता प्रदान करनेवाला धन मांगते हैं। धन उत्तम मार्गसे कमाया जाए, छल कपटसे कमाया गया धन पापका होता है। उत्तम रीतिसे कमाया गया धन नम्रता प्रदान करनेवाला होता है। धन पाकर मनुष्य घमंडी और उद्धत न हो, अपितु नम्र ही रहे ॥ ३ ॥

ये द्यावापृथिवी देवोंको उत्पन्न करनेवाली हैं, इसीलिए इन्हें कोई कष्ट नहीं दे सकता। जितने भी देव इस ब्रह्माण्डमें हैं, वे सब द्यु और पृथ्वीके बीचमें हैं, इसलिए इन दोनोंको देवोंकी माता कहा है। जो इन दोनोंके अनुकूल आचरण करता हैं, उसकी ये हर तरहसे रक्षा करते हैं ॥ ४ ॥

ये द्यावापृथ्वी सदा साथ साथ रहते हैं, एक दूसरेकी सहायता करते हैं और सारे संसारका पोषण करते हैं ॥ ५ ॥

१९३६ उर्वी सदनी बृहती ऋतेना हुवे देवानामवसा जनित्री ।
दुधाते ये अमृतं सुप्रतीके द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ६ ॥

१९३७ उर्वी पृथ्वी बहुले दूरेअन्ते उप ब्रुवे नमसा यज्ञे अस्मिन् ।
दुधाते ये सुभगे सुप्रतूर्ती द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ७ ॥

१९३८ देवान् वा यच्चकृमा कच्चिदागः सखायं वा सदमिज्जास्पतिं वा ।
इयं धीर्भूया अवयानमेषां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ८ ॥

१९३९ उभा शंसा नर्या मामविष्टा मघोनी मामुती अवसा सचेताम् ।
भूरिं चिदर्यः सुदास्तरायेषा मदन्त इषयेम देवाः ॥ ९ ॥

अर्थ— [१९३६] (ये सुप्रतीके) जो उत्तम रूपवाली द्यावापृथ्वी (अमृतं दधाते) अमृतको धारण करती हैं, उन (उर्वी) विस्तीर्ण (सदनी) निवासके आधार भूत (बृहती) महान् (जनित्री) सबको उत्पन्न करनेवाली द्यावा-पृथ्वीको (देवानां अवसा) देवोंके संरक्षणके लिए (ऋतेन हुवे) सत्यवाणीसे बुलाता हूँ (द्यावापृथिवी नः अभ्वात् रक्षतं) द्यावापृथ्वी हमें पापोंसे सुरक्षित रखें ॥ ६ ॥

[१९३७] (ये सुभगे सु प्रतूर्ती दधाते) जो सुन्दर रूपवाली और उत्तम दान देनेवाली द्यावापृथ्वी सबको धारण करते हैं, ऐसे (उर्वी, पृथ्वी बहुले दूरे अन्ते) विशाल, विस्तृत अनेकों आकारवाले तथा जिनका अन्त बहुत दूर है अर्थात् अनन्त ऐसे द्यावापृथ्वीकी मैं (अस्मिन् यज्ञे नमसा उप ब्रुवे) इस यज्ञमें स्तोत्रसे तुम्हारी स्तुति करता हूँ । वे (द्यावापृथिवी नः अभ्वात् रक्षतं) द्यावापृथिवी हमें पापसे सुरक्षित रखें ॥ ७ ॥

[१९३८] (देवान् यत् कच्चित् आगः चकृम) देवोंके प्रति कोई पाप यदि हमने किया हो, (सखायं वा) मित्रके प्रति पाप किया है (सदं इत् जास्पतिं) अथवा इन सब उत्पन्न हुए पदार्थोंके स्वामी प्रभुके प्रति पाप किया हो, तो (एषां अवयानं) उन पापोंको नष्ट करनेके लिए (इयं धीः भूयाः) यह बुद्धि समर्थ हो और (द्यावापृथिवी नः अभ्वात् रक्षतं) द्यावापृथ्वी भी हमारी पापसे रक्षा करें ॥ ८ ॥

[१९३९] (शंसा नर्या) प्रशंसनीय तथा मनुष्योंका हित करनेवाली (उभा) दोनों द्यावापृथ्वी (मा अविष्टा) मुझे सुरक्षित करें । (ऊती उभे) संरक्षण करनेवाली दोनों द्यावापृथ्वी हमें (अवसा सचेतां) संरक्षणके साधनोंसे संयुक्त करें । हे (देवाः) देवो (अर्यः) श्रेष्ठ हम (इषा मदन्तः) अन्नसे आनन्दित होते हुए (सुदास्तराय) उत्तम दान देनेके लिए (भूरि चित् इषयेम) बहुतसा धन चाहते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ— द्यावापृथ्वी दोनों उत्तम रूपवाले और जलको धारण करनेवाले हैं । ऐसे विशाल और सबको निवास करानेवाले सबके उत्पादक द्यावापृथ्वीको मैं यज्ञमें बुलाता हूँ ॥ ६ ॥

मैं सुन्दर रूपवाले विशाल विस्तृत और अनन्त द्यावापृथ्वीको यज्ञमें बुलाता हूँ, वे आकर हमारी पापोंसे रक्षा करें ॥ ७ ॥

यदि हमने कभी प्रमादवश देव विद्वानोंके प्रति, मित्रके प्रति और समस्त उत्पन्न जगत्के स्वामी प्रभुके प्रति कोई पाप किया हो, तो उस पापको हम अपनी उत्तम बुद्धिसे विनष्ट करनेमें समर्थ हों और द्यावापृथ्वी भी हमें सब पापोंसे सुरक्षित रखें ॥ ८ ॥

द्यावापृथ्वी दोनों संरक्षणके अनेक तरहके साधनोंसे युक्त हैं, अतः वे हमें हर तरहसे सुरक्षित रखें । हम भी श्रेष्ठ बनकर अन्नसे आनन्दित होकर उत्तम रूपसे दान देनेके लिए बहुतसे धनको प्राप्त करें ॥ ९ ॥

१९४० ऋतं दिवे तदवोचं पृथिव्या अभिश्रावाय प्रथमं सुमेधाः ।
पातामवद्याद् दुरितादभीके पिता माता च रक्षतामवोभिः ॥ १० ॥
१९४१ इदं द्यावापृथिवी सत्यमस्तु पितर्मातर्यदिहोपब्रुवे वाम् ।
भूतं देवानामवमे अवोभिर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ११ ॥

[१८६]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१९४२ आ न इळाभिर्विदथे सुशस्ति विश्वानरः सविता देव एतु ।
अपि यथा युवानो मत्सथा नो विश्वं जगदभिपित्वे मनीषा ॥ १ ॥
१९४३ आ नो विश्व आस्क्रा गमन्तु देवा मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः ।
भुवन् यथा नो विश्वे वृधासः करन्त्सुषाहा विथुरं न शवः ॥ २ ॥

अर्थ— [१९४०] (सुमेधाः) उत्तम बुद्धिवाला मैं (पृथिव्या दिवे अभिश्रावाय) पृथिवी और द्युलोकको सुनानेके लिए (प्रथमं तत् ऋतं) सर्वश्रेष्ठ उस ऋतको (अवोचं) बोलता हूँ । (अभीके) पासमें रहनेवाले वे दोनों (अवद्यात् दुरितात् पातां निन्दनीय पापोंसे हमारी रक्षा करें । (पिता माता च) पालन करनेवाला द्युलोक और उत्पन्न करनेवाली पृथ्वी (अवोभिः रक्षतां) संरक्षणके साधनोंसे हमारी रक्षा करें ॥ १० ॥

[१९४१] हे (पितः मातः) पिता और माता द्यु एवं पृथिवी ! (वां) तुम दोनोंके लिए (इहे) इस यज्ञमें (यत् उप ब्रुवे) जो स्तुति करता हूँ, हे (द्यावापृथिवी) द्यावापृथिवी ! (इदं सत्यं अस्तु) वह यह स्तुति सत्य हो । (देवानां अवमे) हम विद्वानोंके पास तुम दोनों (अवोभिः भूतं) संरक्षणके साधनोंसे युक्त होकर रहो, हम भी (इषं वृजनं जीरदानुं विद्याम) अन्न, बल और दीर्घजीवन प्राप्त करें ॥ ११ ॥

[१८६]

[१९४२] (विश्वानरः सविता देवः) सबका कल्याण करनेवाला सवितादेव (सुशस्ति) अच्छी तरह प्रशंसित होकर (नः विदथे) हमारे यज्ञमें (इळाभिः आ एतु) अन्नसे युक्त होकर आवे । (युवानः) हे वरुणो ! (अभि पित्वे) हमारे यज्ञमें आकर तुम (मनीषा) अपनी कृपासे (नः विश्वं जगत् अपि) हमें और सम्पूर्ण विश्वको भी (यथा) जैसे हो वैसे (मत्सथः) आनन्दित करो ॥ १ ॥

[१९४३] (सजोषाः मित्रः वरुणः अर्यमा) परस्पर प्रीति करनेवाले मित्र, वरुण और श्रेष्ठ अर्यमा ये (विश्वे आस्क्राः देवाः) सभी शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाले देव (नः आगमन्तु) हमारे पास आवें और (यथा) जिस प्रकार हो सके उस प्रकार (विश्वे नः वृधासः भुवन्) वे सब हमें बढानेवाले हों तथा (सुषाहा) शत्रुओंको हरानेकी शक्तिसे युक्त होकर वे (शवः विथुरं न करन्) हमारी शक्तिको नष्ट न करें ॥ २ ॥

भावार्थ— उत्तम बुद्धिवाला मैं द्युलोक और पृथ्वीलोकको अपनी सर्वश्रेष्ठ ऋचा सुनाता हूँ । वे मेरी स्तुतिसे प्रसन्न होकर निन्दनीय पापोंसे हमारी सुरक्षा करें ॥ १० ॥

द्यावापृथ्वीके लिये यज्ञमें हम जो स्तुति करते हैं, वह कभी व्यर्थ न हो अर्थात् उसका श्रेष्ठ फल हमें अवश्य मिले और दोनों हमारी स्तुतियोंसे प्रसन्न होकर हमारी हर तरहसे रक्षा करें । हम भी सुरक्षित होकर अन्न, बल आदि प्राप्त करें ॥ ११ ॥

सब लोकोंका कल्याण करनेवाला देव हमारी स्तुतियोंसे प्रसन्न होकर हमारे यज्ञमें अन्नसे युक्त होकर आवे । सभी देव तरुण हैं, वे कभी वृद्ध नहीं होते । वे सभी देव अपनी कृपासे हमें तथा सम्पूर्ण विश्वको आनन्दित करें ॥ १ ॥

हित एवं स्नेह करनेवाले वरणीय श्रेष्ठ देव शत्रुको विनष्ट करते हुए हमारे पास आवें और हमें हर तरहसे बढावें और कभी भी हमारी शक्तिको क्षीण न करें ॥ २ ॥

१९४४ प्रेष्ठं वो अतिथिं गृणीषे ऽग्निं शस्तिभिस्तुर्वणिः सजोषाः ।
असद् यथा नो वरुणः सुकीर्ति—रिषश्च पर्षदरिगूर्तः सूरिः ॥ ३ ॥
१९४५ उप व एषे नमसा जिगीषो—षासानक्ता सुदुघेव धेनुः ।
समाने अहन् विमिमानो अर्कं विषुरूपे पयसि सस्मिन्नूधन् ॥ ४ ॥
१९४६ उत नोऽहिर्बुध्न्यो३ मयस्करः शिशुं न पिप्युषीव वेति सिन्धुः ।
येन नपातमपां जुनाम मनोजुवो वृषणो यं वहन्ति ॥ ५ ॥
१९४७ उत न ईं त्वष्टा गन्त्वच्छा स्मत् सूरिभिरभिपित्वे सजोषाः ।
आ वृत्रहेन्द्रश्चर्षणिप्रा—स्तुविष्टमो नरां न इह गम्याः ॥ ६ ॥

अर्थ— [१९४४] जो (तुर्वणिः सजोषाः) शत्रुओंका विनाशक और सबके साथ प्रेमपूर्वक रहनेवाला है, ऐसे (वः प्रेष्ठं अतिथिं अग्निं) तुम्हारे अत्यन्त प्रिय और अतिथिके समान पूज्य अग्निकी (शस्तिभिः) स्तोत्रोंसे (गृणीषे) स्तुति करता हूँ । (यथा वरुणः नः सुकीर्तिः असत्) जिस प्रकार वरुण हमें उत्तम कीर्तिको देनेवाला हो तथा (अरिगूर्तः सूरिः शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाला और विद्वान् वह वरुण (इषः च पर्षत्) हमें अन्नसे पूर्ण करे ॥ ३ ॥

[१९४५] (सस्मिन् ऊधन् विषुरूपे पयसि) सभी थनोंसे उत्पन्न होनेवाले अनेक प्रकारके दूधमें (समाने अहन् अर्कं विमिमानः) सभी दिन तेजका देखता हुआ मैं हे देवो ! (जिगीषा) शत्रुओंको जीतनेकी शक्तिको पानेकी इच्छासे (वः उप) तुम्हारे पास (नमसा) नम्रतापूर्वक (उषासानक्ता) दिन और रातके समय (एषे) उसी प्रकार आता हूँ, जिस प्रकार सुदुघा धेनुः इव) उत्तम दुधारु गाय दिन और रातके समय ग्वालेके पास आती है ॥ ४ ॥

[१९४६] (उत) और (अहिर्बुध्न्यः) अहिर्बुध्न्य देव (नः मयः करः) हमें सुखी करे, और (शिशुं न) जिस प्रकार माता अपने बच्चेको तृप्त करती है, उसी प्रकार (पिप्युषी सिन्धुः वेति) जलसे तृप्त करनेवाली नदी हमारे पास आवे । (मनोजुवः वृषणः यं वहन्ति) मनके समान वेगवान् तथा बलशाली घोड़े जिसे ले जाते हैं, ऐसे (अपां नपातं) जलोंको न गिरानेवाले अग्निका (येन जुनाम) जिससे हम सेवा कर सकें ॥ ५ ॥

[१९४७] (ईं अभिपित्वे) इस यज्ञमें आकर (सूरिभिः सजोषा) विद्वानोंके साथ प्रेमसे मिलकर रहनेवाला (त्वष्टा) त्वष्टा देव (नः अच्छ आ गन्तु स्मत्) हमारे पास सीधे आवे । (उत) और (चर्षणिप्राः तुविस्तमः वृत्रहा इन्द्रः) मनुष्योंको तृप्त करनेवाला, बहुतोंसे प्रशंसित तथा वृत्रको मारनेवाला इन्द्र (नः नरां इह आ गम्याः) हम मनुष्योंके इस कर्ममें आवे ॥ ६ ॥

भावार्थ— यह अग्नि शत्रुओंका नाशक होने और सबके साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार करनेके कारण अतिथिके समान पूज्य है । उसकी हम हर तरहसे स्तुति करते हैं । वरुण हमें उत्तम यश प्रदान करे और अन्नसे पूर्ण करे ॥ ३ ॥

सभी थनोंसे निकलनेवाले गायके दूधमें सभी तरहका अन्न और तेज रहता है । दूध एक उत्तम अन्न है, जो उत्तम तेज प्रदान करता है । ऐसे उत्तम तेजसे युक्त होकर मैं शत्रुओंको जीतनेकी इच्छासे नम्रतापूर्वक देवोंके पास जाता हूँ ॥ ४ ॥

यह अग्नि बिजलीका रूप धारण कर मेघोंमें जलोंको इकट्ठा करता है । इसकी किरणें मनसे भी वेगवान् हैं और जल बरसानेवाली हैं । यह विद्युत् रूप अग्नि अन्तरिक्षमें रहकर अहि अर्थात् मेघका विनाशक है । मेघोंको मारकर पानी बरसाता है, उससे पानी पृथ्वी पर आता है और नदियाँ जलसे भरपूर होकर बहने लगती हैं और वे नदियाँ सब अन्नादि उत्पन्न करके मनुष्योंको तृप्त करती हैं ॥ ५ ॥

विद्वानोंसे प्रेमपूर्वक व्यवहार करनेवाला यह त्वष्टा देव तथा मनुष्योंको तृप्त करनेवाला तथा शत्रुओंको विनष्ट करनेवाला इन्द्र हमारे पास आकर हमारे कार्योंमें सहायक हों ॥ ६ ॥

१९४८ उत नं ईं मतयोऽश्वयोगाः शिशुं न गावस्तरुणं रिहन्ति ।
तमीं गिरो जनयो न पत्नीः सुरभिष्टमं नरां नसन्त ॥ ७ ॥

१९४९ उत नं ईं मरुतो वृद्धसेनाः स्मद् रोदसी समनसः सदन्तु ।
पृषदश्वासोऽवनयो न रथा रिशादसो मित्रयुजो न देवाः ॥ ८ ॥

१९५० प्र नु यदेषां महिना चिकित्रे प्र युञ्जते प्रयुजस्ते सुवृक्ति ।
अध यदेषां सुदिने न शरु—र्विश्वमेरिणं प्रुषायन्त सेनाः ॥ ९ ॥

१९५१ प्रो अश्विनाववसे कृणुध्वं प्र पूषणं स्वतवसो हि सन्ति ।
अद्वेषो विष्णुर्वात ऋभुक्षा अच्छा सुम्नाय वयृतीय देवान् ॥ १० ॥

अर्थ— [१९४८] (नः अश्वयोगाः मतयः) हमारी चारों ओर गति करनेवाली बुद्धियां (ईं तरुणं रिहन्ति) इस तरुण इन्द्रको उसी तरह प्यार करती हैं, ((गावः शिशुं न) जिस प्रकार गायें अपने बछडोंको प्यारसे चाटती हैं । (उत) और (तं सुरभिस्तमं ईं) उस अत्यन्त यशस्वी इस इन्द्रको (नः नरां गिरः) हम मनुष्योंकी वाणियां (नसन्तः) उसी तरह घेरती हैं, (जनयः पत्नीः न) जिस प्रकार सन्तानको उत्पन्न करनेवाली स्त्रियां पतियोंको ॥ ७ ॥

[१९४२] (रथाः अवनयः न रिशादसः) रथों पर बैठे हुए रक्षकगणोंकी तरह शत्रुओंको खा जानेवाले (मित्रयुजः न देवाः) मित्रके समान सबसे मिलजुल कर रहनेवाले, तेजस्वी (पृषदश्वासः) चित्र विचित्र घोडोंवाले (समनसः) समान मनो भावोंवाले (वृद्धसेनाः) महती शक्तियोंवाले (मरुतः) मरुत् तथा (रोदसी) द्यावापृथ्वी (नः ईं सदन्तु) हमारे इस यज्ञमें आकर बैठें ॥ ८ ॥

[१९५०] (यत्) जब (सुवृक्ति) उत्तम स्तुति होने पर (ते) वे मरुद्गण (प्रयुजः युंजते) घोडोंको अपने रथमें जोडते हैं, (अध) इसके बाद (सुदिने शरुः न) मेघसे रहित दिनमें जिस प्रकार सूर्य अपने प्रकाशसे सब स्थानोंको सींचता है, उसी प्रकार (एषां सेनाः) इन मरुतोंकी सेना (विश्वं इरिणं प्रुषायन्तः) सभी ऊसर जमीनको जलसे सींचते हैं, तब (एषां महिना प्र चिकित्रे) इनकी कीर्ति और बढ जाती है ॥ ९ ॥

[१९५१] (अश्विनौ) अश्विनीकी (पूषणं) पूषाकी, (स्वतवसः हि सन्ति) जो देव अपनी शक्तिसे सम्पन्न है, (अद्वेषः विष्णुः) जो द्वेष न करनेवाला विष्णु है, (वातः) वायु है (ऋभुक्षा) सबका पति इन्द्र है, उन सबकी (अवसे) अपने रक्षकके लिए (प्र कृणुध्वं) अच्छीतरह स्तुति करो । मैं भी (सुम्नाय) सुख पानेके लिए (देवान् अच्छ वयृतीय) इन देवोंकी अच्छीतरह प्रशंसा करूं ॥ १० ॥

भावार्थ— जिस प्रकार गायें अपने बछडोंको प्यारसे चाटती हैं, उसी प्रकार हमारी बुद्धियां इस इन्द्रको प्यार करती हैं और उससे हमारी स्तुतियां उसी तरह संयुक्त होती हैं, जिस प्रकार सन्तान उत्पन्न करनेकी इच्छावाली स्त्री अपने पतिसे संयुक्त होती है ॥ ७ ॥

रथों पर बैठे हुए रक्षकगणोंकी तरह शत्रुओंको विनष्ट करनेवाले तथा मित्रोंके समान परस्पर स्नेहपूर्वक रहनेवाले तथा समान मनवाले ये मरुत् तथा द्यावापृथ्वी हमारे यज्ञमें आकर बैठें ॥ ८ ॥

मरुद्गण वायु हैं, जब ये शक्तिका उपयोग करते हैं तब मेघोंसे जल बरसाते हैं । और उन जलोंसे ये ऊसर जमीनको भी सींचकर उपजाऊ बनाते हैं । यह काम इन मरुतोंकी कीर्तिको बढानेवाला है ॥ ९ ॥

अश्विना, पोषण करनेवाले, अपनी शक्तिके आश्रयसे रहनेवाले, किसीसे द्वेष न करनेवाले व्यापक देव, वायु और इन्द्र इन सब देवोंकी मनःपूर्वक स्तुति करनी चाहिए । इनकी स्तुति करनेसे हर तरहके सुख मिलते हैं ॥ १० ॥

१९५२ इयं सा वो अस्मे दीधितिर्यजत्रा अपिप्राणी च सदनी च भूयाः ।
नि या देवेषु यतते वसूयु—र्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ११ ॥

[१८७]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- अन्नम् । छन्दः- १ अनुष्टुब्गर्भा उष्णिक्; ३, ५-७, ११ अनुष्टुप्, ११ बृहती वा; २, ४, ८-१० गायत्री ।)

१९५३ पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम् ।
यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत् ॥ १ ॥

१९५४ स्वादो पितो मधो पितो वयं त्वा ववृमहे । अस्माकमविता भव ॥ २ ॥

१९५५ उप नः पितवा चर शिवः शिवाभिरूतिभिः ।
मयोभुरद्विषेण्यः सखा सुशेवो अद्वयाः ॥ ३ ॥

अर्थ— [१९५२] हे (यजत्राः) पूजाके योग्य देवो ! (वसूयूः या देवेषु यतते) ऐश्वर्यको प्राप्त करानेवाली जो दीप्ति देवोंको प्रेरित करती है, (सा वः अपिप्राणी सदनी) वह तुम्हारी मनुष्योंकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाली तथा उनको निवास करानेवाली (सा दीधितिः) वह दीप्ति (अस्मे भूयाः) हमारे अन्दर हो, ताकि हम (इषं वृजनं जीरदानुं विद्याम) अन्न, बल और दीर्घायु प्राप्त करें ॥ ११ ॥

[१८७]

[१९५३] (यस्य ओजसा) जिसके ओजसे (त्रितः) तीनों लोकोंमें यशस्वी इन्द्रने (वृत्रं विपर्वं) वृत्रके अंग प्रत्यंग काट काटकर (अर्दयत्) उसे मार दिया, उस (महः धर्माणं तविषीं) महान्, सबको धारण करनेवाले तथा शक्तिशाली (पितुं नु स्तोषं) पालक अन्नकी मैं स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

[१९५४] हे (स्वादो पितो) स्वादयुक्त पालक तथा (मधो पितो) मधुर रसके पोषक देव ! (वयं त्वा ववृमहे) हम तेरी सेवा करते हैं, (अस्माकं अविता भव) तू हमारी रक्षा करनेवाला हो ॥ २ ॥

[१९५५] हे (पितो) पालक अन्न ! तू (शिवः मयोभुः अद्विषेण्यः) मंगलकारक, सुखकारक, किसीसे भी द्वेष न करनेवाला, (सखा सुशेवः अद्वयाः) मित्रके समान हितकारी, अच्छी तरह सेवनीय और छल कपटसे रहित है, अतः तू (शिवाभिः ऊतिभिः नः उप चर) कल्याणकारक संरक्षणके साधनोंसे युक्त होकर हमारे पास आ ॥ ३ ॥

भावार्थ— देवोंके अन्दर जो तेज है वह विद्वानोंको उत्तम कामोंमें प्रेरित करता है और वह मनुष्योंकी सब कामनाओंको पूर्ण करके उनका जीवन उत्तम और श्रेष्ठ बनानेवाला है। उसे प्राप्त करनेवाला मनुष्य उत्तम अन्न, उत्तम बल और दीर्घायुसे युक्त होता है ॥ ११ ॥

इस अन्नके बलसे इन्द्रने वृत्रके सब अंग काट काटकर उसे नष्ट किया । अन्नरूप इन्द्र अर्थात् सूर्यने प्रकाशको रोकनेवाले अन्धकारका नाश किया । यह अग्नि महान् और धारक होनेसे तनूनपात् अर्थात् शरीरको न गिरानेवाला है अर्थात् शरीरको शक्तिशाली बनाता है ॥ १ ॥

यह अन्न स्वादिष्ट और मधुर रसोंका पोषक है, यह मनुष्योंको पुष्ट करता है और इस प्रकार उनकी रक्षा करता है ॥ २ ॥

इस मंत्रका देवता इळः अर्थात् अन्न है । यह अन्न कल्याणकारक, सुखकारक सबको समान रूपसे पुष्ट करनेवाला और हितकारी है, इसीलिए इस अन्नका आदर करना चाहिए ॥ ३ ॥

१९५६ तव त्ये पितो रसा रजांस्यनु विष्ठिताः । दिवि वाता इव श्रिताः ॥ ४ ॥

१९५७ तव त्ये पितो ददतस्तव स्वादिष्ठ ते पितो ।
प्र स्वाध्यानो रसानां तुविग्रीवा इवेरते ॥ ५ ॥

१९५८ त्वे पितो महानां देवानां मनो हितम् ।
अकारि चारु केतुना तवाहिमवसावधीत् ॥ ६ ॥

१९५९ यदुदो पितो अजगन् दिवस्पर्वतानाम् ।
अत्रा चिन्नो मधो पितोऽरं भक्षाय गम्याः ॥ ७ ॥

१९६० यदुपामोषधीनां परिशमारिशामहे । वातापे पीव इद् भव ॥ ८ ॥

अर्थ—[१९५६] हे (पितो) पालक अन्न ! (तव त्ये रसाः) तेरे वे रस (रजांसि अनु विष्ठिताः) लोकोंमें उसी तरह प्रतिष्ठित हैं, जिस तरह (दिविः श्रिताः वाताः इव) अन्तरिक्षमें वायु प्रतिष्ठित हैं ॥ ४ ॥

[१९५७] हे (पितो) पालक अन्न ! (तव त्ये ददतः) तेरे वे उपासक तेरा दान करते हैं, हे (स्वादिष्ठ पितो) मधुरतासे परिपूर्ण पिता अन्न देव ! (ते तव) ये तेरा पोषण ही करते हैं । (रसानां स्वाध्यानः) अन्नके रसोंको खानेवाले (तुविग्रीवाः इव ईरते) मोटी गर्दनवाले होकर चलते हैं ॥ ५ ॥

[१९५८] हे (पितो) सबके पालक अन्न देव ! (महानां देवानां मनः) बडे बडे देवोंका मन भी (त्वे हितं) तुझमें लगा रहता है । इन्द्रने (तव चारु केतुना) तेरे उत्तम बल एवं (अवसा) रक्षणशक्तिसे युक्त होकर (अहिं अवधीत्) अहि राक्षसको मारा और यह बडा कार्य (अकारि) किया ॥ ६ ॥

[१९५९] हे (पितो) पालक अन्न ! (यत्) जब (दिवस्पर्वतानां) जलयुक्त मेघोंका (अदः) यह शुभ जल (अजगन्) तेरे पास पहुंचता है, तब (मधो पितो) हे स्वादिष्ट अन्न ! (अत्र चित्) इस संसारमें (भक्षाय अरं गम्याः) हमारे खानेके लिए तू हमें पर्याप्त प्राप्त हो ॥ ७ ॥

[१९६०] (यत्) जब हम (अपां ओषधीनां) जलों औषधियोंसे उत्पन्न (परिशं) चारों ओरसे सुखकारक अन्नको (आरिशामहे) खाते हैं, तब (वातापे) हे शरीर ! तू (पीवः इत् भव) मोटा-हृष्टपुष्ट हो ॥ ८ ॥

वातापिः— शरीर- " वातेन प्राणेन आप्नोति स्वनिर्वाहं– जो प्राणसे अपना निर्वाह चलाता है । सायण)

भावार्थ— जिस प्रकार अन्तरिक्षमें अनेक तरहके वायु संचार करते हैं, उसी प्रकार इस अन्नके सभी तरहके रस इन लोकोंमें प्रतिष्ठित हैं अथवा रज अर्थात् धूलीसे भरी इस पृथ्वीमें सभी तरहके रस विद्यमान हैं ॥ ४ ॥

अन्नका दान करना ही अन्नका पोषण है । जो अकेला ही खाता है, वह पाप खाता है और अन्नकी हिंसा करता है, अतः हमेशा अन्नका दान करके ही खाना चाहिए । जो इस प्रकार अन्नका दान करते हुए खाते हैं, वे मोटी गर्दनवाले अर्थात् हृष्टपुष्ट शरीरवाले होकर सर्वत्र विचरते हैं ॥ ५ ॥

यह अन्न इतना महत्त्वपूर्ण है कि बडे बडे देव भी अमृतको छोडकर अन्न प्राप्त करनेकी कोशिश करते हैं। इस अन्नकी शक्तिसे परिपुष्ट होकर राजागण अपने शत्रुविनाशरूपी बडे बडे कार्योंको करते हैं ॥ ६ ॥

जब पानीसे भरे हुए बादलोंका शुभ जल अन्नके पास पहुंचता है अर्थात् जब जलवृष्टिके कारण फसल अच्छी होती है, तब मनुष्योंके खानेके लिए अन्न पर्याप्त मात्रामें मिलता है ॥ ७ ॥

जलसे औषधियां उत्पन्न होती हैं और ओषधिसे अन्न । अतः जब जल और ओषधियोंसे उत्पन्न अन्नका हम भक्षण करेंगे, तब हमारा शरीर हृष्टपुष्ट होगा ॥ ८ ॥

१९६१ यत् ते सोम गवाशिरो यवाशिरो भजामहे । वातापे पीव इद् भव ॥ ९ ॥
१९६२ कुरम्भ ओषधे भव पीवो वृक्क उदारथिः । वातापे पीव इद् भव ॥ १० ॥
१९६३ ते त्वा वयं पितो वचोभिर्गावो न हव्या सुषूदिम ।
देवेभ्यस्त्वा सधमादमस्मभ्यं त्वा सधमादम् ॥ ११ ॥

[१८८]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- आप्रीसूक्तं= [१ इध्मः समिद्धोऽग्नेर्वा, २ तनूनपात्, ३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीर्द्वारः, ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः] । छन्दः- गायत्री ।)

१९६४ समिद्धो अद्य राजसि देवो देवैः सहस्रजित् । दूतो हव्या कविर्वह ॥ १ ॥
१९६५ तनूनपाद्रतं यते मध्वा यज्ञः समज्यते । दधत् सहस्रिणीरिषः ॥ २ ॥

अर्थ— [१९६१] हे (सोम) सुखकारक अन्न ! (यत्) अब (गवाशिरः यवाशिरः ते भजामहे) गौके दूध घृतादिसे मिश्रित एवं जौ गेहूं आदिसे युक्त अन्न खाते हैं, तब (वातापे पीवः इत् भव) हे शरीर ! तू हृष्ट पुष्ट हो ॥ ९ ॥

[१९६२] हे (कुरंभ ओषधे) पके हुए अन्न ! तू (पीवः वृक्कः उदारथिः भव) पुष्टिकारक, रोगोंका नाशक एवं इन्द्रियोंको उन्नत करनेवाला हो । हे (वातापे पीवः इत् भव) शरीर तू पुष्ट हो ॥ १० ॥

[१९६३] हे (पितो) पालक अन्न ! (देवभ्यः सधमादं) देवोंको आनन्द देनेवाले तथा (अस्मभ्यं सधमादं) हमें आनन्द देनेवाले (तं त्वां) उस तुझे (वचोभिः सुषूदिम) स्तुतियोंके सहित उसी प्रकार निचोडते हैं, जिस तरह (गावः हव्या न) गायें हविके योग्य घी दूधको निचोडती हैं ॥ ११ ॥

[१८८]

[१९६४] हे (सहस्रजित्) हजारों शत्रुओंको जीतनेवाले अग्ने ! (देवैः समिद्धः देवः) देवोंके द्वारा प्रज्वलित तेजस्वी तू (अद्य राजसि) आज प्रदीप्त हो रहा है । (दूतः कविः) दूत और ज्ञानी तू (हव्या वह) हमारी हवियोंको देवोंके पास पहुंचा ॥ १ ॥

[१९६५] (तनूनपात् यज्ञः) शरीरको न गिरानेवाला पूज्य यह अग्नि (सहस्रिणीः इषः दधत्) हजारों तरहके अन्नोंको धारण करता हुआ (ऋतं यते) यज्ञमें जाता है और वहां (मध्वा समज्यते) मधुर हवियोंसे संयुक्त होता है ॥ २ ॥

भावार्थ— जब अन्नमें जौ आदि पदार्थ एवं गायके दूध, घृत आदि पुष्टिकारक पदार्थ खाये जाते हैं, तब शरीर पुष्ट होता है ॥ ९ ॥

हमेशा पका हुआ अन्न ही खाना चाहिए । ऐसा अन्न पुष्टिकारक, रोगोंका नाशक और इन्द्रियोंके लिए पोषक होता है । कच्चा अन्न अनेक रोगोंका कारण होता है । पके अन्न खानेसे शरीर पुष्ट होता है ॥ १० ॥

यह अन्न देवोंको और मनुष्योंको आनन्द देते हैं । जिस प्रकार एक ग्वाला बडे प्रेमसे मीठे वचन बोलता हुआ गायका दूध दुहता है उसी तरह बडे प्रेमसे अन्नका रस निकालना चाहिए । इस प्रकार प्रेमसे निकाला गया एवं प्रेमसे खाया गया अन्न रस पोषक होता है ॥ ११ ॥

अन्य देवों द्वारा प्रदीप्त किया गया अग्नि अत्यन्त तेजस्वी दिखाई देता है । यह अनेकों अन्नोंको धारण करता है और यज्ञमें मधुर हवियोंसे संयुक्त होता है ॥ १-२ ॥

१९६६ आजुह्वानो न ईड्यो देवाँ आ वक्षि यज्ञियान् । अग्ने सहस्रसा असि ॥ ३ ॥
१९६७ प्राचीनं बर्हिरोजसा सहस्रवीरमस्तृणन् । यत्रादित्या विराजथ ॥ ४ ॥
१९६८ विराट् सम्राड्विभ्वीः प्रभ्वी—र्बह्वीश्च भूयसीश्च याः । दुरो घृतान्यक्षरन् ॥ ५ ॥
१९६९ सुरुक्मे हि सुपेशसा ऽधि श्रिया विराजतः । उषासावेह सीदताम् ॥ ६ ॥
१९७० प्रथमा हि सुवाचसा होतारा दैव्या कवी । यज्ञं नो यक्षतामिमम् ॥ ७ ॥
१९७१ भारतीळे सरस्वति या वः सर्वा उपब्रुवे । ता नश्चोदयत श्रिये ॥ ८ ॥

अर्थ—[१९६६] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (सहस्रसा असि) हजारों तरहके ऐश्वर्यसे युक्त है, इसलिए (ईड्यः) पूज्य तू (नः आजुह्वानः) हमारे द्वारा बुलाया जाता हुआ (यज्ञियान् देवान् आ वक्षि) पूजाके योग्य देवोंको ले आ ॥ ३ ॥

[१९६७] (प्राचीनं सहस्रवीरं बर्हिः) प्राचीन और हजारों वीर जिस पर बैठते हैं ऐसे आसनको मनुष्य (ओजसा) अपने बलसे (अस्तृणन्) बिछाते हैं। हे (आदित्याः) सूर्यके समान तेजस्वी वीरो ! (यत्र विराजथ) जहां तुम बैठते हो ॥ ४ ॥

[१९६८] (विराट् सम्राट् विभ्वीः) विशेष तेजस्वी, अच्छी तरहसे प्रकाशित अनेक प्रकारके (प्रभ्वीः बह्वीः भूयसीः च याः दुरः) विशेष शोभायमान् अनेकों जो द्वार हैं, वे (घृतानि अक्षरन्) पानी बहाते हैं ॥ ५ ॥

[१९६९] (सुरुक्मे सुपेशसा) उत्तम तेजवाले तथा उत्तम रूपवाले उषा और रात्रि (अधि श्रिया विराजतः) और अधिक शोभासे युक्त होते हैं। हे (उषासौ) उषा और रात्रि ! तुम दोनों (इह सीदतां) यहां आकर बैठो ॥ ६ ॥

[१९७०] (प्रथमा सुवाचसा) मुख्य श्रेष्ठ उत्तम वाणीसे युक्त (दैव्या कवी होतारा) तेजस्वी और ज्ञानी होता (नः इमं यज्ञं यक्षतां) हमारे इस यज्ञको सम्पूर्ण करें ॥ ७ ॥

[१९७१] हे (भारति इळे सरस्वति) भारति, इळा और सरस्वती ! (याः वः सर्वाः उप ब्रुवे) जिन तुम सबको मैं बुलाता हूँ, (ताः) वे तुम सब (नः श्रिये चोदयत) हमें ऐश्वर्यकी तरफ प्रेरित करो ॥ ८ ॥

भावार्थ— यह अग्नि हजारों तरहके ऐश्वर्य धारण करता है। अतः हम उसकी प्रार्थना करते हैं, वह अनेकों देवोंको हमारे यज्ञमें बुलाकर लावे ॥ ३ ॥

यज्ञमें हजारों वीर जिस पर बैठ सकते हैं, ऐसे आसन बिछाते हैं, जिस पर सूर्यके समान तेजस्वी जन बैठते हैं ॥ ४ ॥

यज्ञके द्वार अनेक तरहसे सजाए जानेके कारण विशेष तेजस्वी दीख पडते हैं और यज्ञमें अनेकों द्वार बनाये जाते हैं, वे सब द्वार मानों तेजस्वी पदार्थ प्रदान करते हैं ॥ ५ ॥

उषा और रात्रि ये दोनों प्रथम ही उत्तम तेजस्वी और सुन्दर रूपवाली हैं, पर जब इन कालोंमें यज्ञ किए जाते हैं, तब ये दोनों और ज्यादा तेजसे युक्त हो जाती हैं ॥ ६ ॥

दिव्य और उत्तम श्रेष्ठ ज्ञानी होता उषासानक्ता हमारे इस यज्ञको सम्पूर्ण करें। दिन और रात्रिमें यज्ञ होनेके कारण ये दोनों होता हैं, जो यज्ञको पूर्ण करते हैं ॥ ७ ॥

मातृभूमि, मातृभाषा और मातृसंस्कृति इन तीनोंकी सदा उपासना करनी चाहिए। इन तीनोंका सदा सम्मान करना चाहिए, क्योंकि ये सदा ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली होती हैं। जो इनकी उपासना करता है, वह ऐश्वर्यशाली होता है ॥ ८ ॥